लोकनायक माननीय श्रीजयनारायणजी व्यास, मुख्य मंत्री,
राजस्थान राज्य, और उनके अन्य सहयोगी माननीय
मंत्रियों तथा हमारे सम्मान्य शुभैषियों के

सन्देश :—

लोकनायक माननीय श्रीजयनारायणजी व्यास,
मुख्य मंत्री, राजस्थान राज्य

खाण्डलविप्र इतिहास पढ़ा। प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक का वर्णन इस ग्रन्थ में है। इतिहास की दृष्टि से यह पुस्तक सम्पूर्ण है। पर इतिहास लिखने में भी लक्ष्य होता है—समाज की प्रगति के लिये प्रेरणा। यह समाज वर्तमान वातावरण में देश के अङ्गभूत अंश के तौर पर किस प्रकार आगे बढ़े—इस आवश्यक अध्याय की ओर विशेष ध्यान देने की मेरी सम्मति है।

जयनारायण व्यास

माननीय श्रीटीकारामजी पालीवाल,
राजस्व मंत्री, राजस्थान राज्य

खाण्डलविप्र इतिहास को मैंने देखा। पुस्तक को पूरा पढ़ना मेरे लिये संभव नहीं था किन्तु विषयानुक्रमणिका एवं सहायक ग्रन्थों की

सूची आदि के देखने से अनुमान होता है कि लेखक ने अपने विषय के प्रतिपादन एवं उसकी खोज में खूब परिश्रम किया है। किसी भी जाति को अपने उज्ज्वल अतीत के ज्ञान से भविष्य के लिये सद्प्रेरणा मिलनी चाहिये। मुझे आशा है इस उद्देश्य की प्राप्ति में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी।

टीकाराम पालीवाल

माननीय श्रीब्रजसुन्दरजी शर्मा,

वित्त मंत्री, राजस्थान राज्य.

पण्डित गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया द्वारा लिखित खाण्डलविप्र इतिहास को मैंने देखा। पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है। इसके पढ़ने से ब्राह्मण समाज को प्रेरणा मिलेगी और वह अपनी परम्परा को निभायेगा।

ब्रजसुन्दर शर्मा

माननीय श्रीजुगलकिशोरजी चतुर्वेदी,

सार्वजनिक निर्माण मंत्री, राजस्थान राज्य.

श्री पं० गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया द्वारा लिखित खाण्डलविप्र इतिहास देखने [illegible] प्राप्त हुआ। पुस्तक अपने ढंग की उपयोगी व

सामयिक प्रतीत होती है परन्तु आज देश की आवश्यकता को देखते हुए अच्छा हो, ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत समस्त समुदाय मिलकर एक ऐसे इतिहास का निर्माण करें जो सबको पृथकता से हटाकर एकता व संगठन की ओर ला सके। एक ही वर्ण का अनेक जाति उपजातियों में विभक्त होजाना उसको सुदृढ़ न बना कर निर्बल ही बनाता है। अतः उक्त वर्ण के अन्तर्गत समस्त समुदायों का यह सम्मिलित प्रयत्न होना चाहिये कि वे सब पृथक् पृथक् शाखाओं से उठकर एक मूल की ओर अग्रसर हों।

आशा है खाण्डलविप्र इतिहास के योग्य लेखक व उनके सहयोगी तथा सहायक इस भावना से प्रेरित होकर आगे प्रयत्न करेंगे और इस प्रकार न केवल ब्राह्मण वर्ण अपितु समस्त हिन्दु जाति और अपने देश के लिये एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित करेंगे। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं इस ग्रन्थ के प्रति अपनी शुभ कामना अर्पित करता हूँ।

जुगलकिशोर चतुर्वेदी

माननीय श्रीनरोत्तमलालजी जोशी,

न्यायमंत्री, राजस्थान राज्य

मैंने, श्री. मुरलीधरजी, व्यास, एम्. ए. 'खाण्डलविप्र इतिहास' देखा। इस प्रकार के जातीय इतिहासों का हमारे आधुनिक राष्ट्रीय जीवन मे बहुत कम महत्व रहगया है फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार

नहीं किया जासकता कि महापुरुषों के जीवन से हमें प्रेरणा मिलती है और हम उनके त्याग, दया, वीरता, पाण्डित्य, सेवा परायणता आदि गुणों से अनुप्राणित होते रहते हैं। मुझे आशा है कि समाज के युवक इस प्रयास से अनुप्राणित होकर संकुचित परिधियों से ऊंचे उठकर अपनी प्रतिभा राष्ट्रीयता के क्षेत्र में अपने पूर्वजों की भांति देदिप्यमान करेंगे। मैं श्री सुन्दरियाजी के इस प्रयास के लिये शुभ कामना करता हूँ।

नरोत्तमलाल जोशी

श्रीयुत् सेठ रघुनाथदासजी बांगड़

मैंने खाण्डलविप्र इतिहास को पढ़ा। इतिहास की दृष्टि से पुस्तक बहुत सुन्दर है। प्रधानतया हिन्दू धर्म और संस्कृति के निर्माता ऋषियों की सन्तान ब्राह्मण जाति ने बहुत समय तक अपने पूर्वजों के पद चिन्हों पर चलकर गौरव की रक्षा की किन्तु अब केवल अतीत को ही देखने से कार्य नहीं चल सकता। वर्तमान को दृष्टि में रखकर आगे बढ़ना चाहिये और "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त की ओर अग्रसर होना चाहिये।

रघुनाथदास बांगड़



परशुराम का विष्णुयाग

पृष्ट ६३ देखिये

खाण्डलविप्र इतिहास

पण्डित गोविन्दप्रसाद सुन्दरिया

रत्नाकर प्रेस एण्ड पब्लिकेशन
सवाई मानसिंह हाईवे जयपुर सिटी

प्रथम प्रकाशन – श्रावणी २००८ वि०

मुद्रक और प्रकाशक—
मदनलाल सेखसरिया,
अध्यक्ष – रत्नाकर प्रेस एण्ड पब्लिकेशन,
सवाई मानसिंह हाईवे : : जयपुर सिटी

जाति-बन्धुओं की सेवा मे

ईश्वर ने मनुष्य की प्रकृति मे यह गुण दिया है कि वह अपने ज्ञान के अनुसार अपने देश और जाति तथा वश के विषय में जहा तक सभव हो जानने और खोजने की इच्छा करता है। नीतिकारों ने इस इच्छा को मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य बताते हुए कहा है कि—

'कस्याह का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

अर्थात्—यह अच्छे प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि हमारी वश-परम्परा क्या है। भारत के आर्षकाल मे ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों की वंश-परम्परा के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिये 'पुराणेतिहास-पचम वेद'* की सृष्टि हुई थी। अष्टादश पुराणों के वश और पाच विषयों मे वंशावलि-वर्णन एक प्रधान विषय रक्खा गया है। इसी प्रकार ब्राह्मणों के प्रसिद्ध पर्व श्रावणी उपाकर्म के समय, ऋषि वंशावलि का उच्चारण इसी अभिप्राय से किया जाता है कि हमे हमारी वश-परम्परा और उसका इतिहास अक्षुण्ण रूप से स्मरण रहे। महाभारत काल से पहिले भी आर्यों की वंश-परम्परा को सुरक्षित रखने का कार्य सूतों और पौराणिकों के जिम्मे था। आजकल के भाट, चारण, बडवा इसी पेशे के लोग हैं, जिन्होंने अशिक्षित होते हुए भी जातियों के वंशेतिहास सुरक्षित रखने में बड़ा महत्त्व पूर्ण योग दिया है। मनुष्य को अपने वंश के इतिहास से उन्नति की प्रेरणा मिलती है। हम कौन हैं। हमारा उद्गम कहा से है। हमारा कुल कैसा है। हमारे पूर्वजों ने देश में कैसी कीर्त्ति फैलाई और देश तथा समाज की क्या क्या सेवायें की। इन सब बातों के जाने बिना अपने कुल-गौरव एव वंश-मर्यादा की प्रभुता का अँकुर हृदय में उत्पन्न ही नहीं होता। जिसे अपने कुल-गौरव, कुल-मर्यादा और वंश-परम्परा का ज्ञान नहीं, उससे किसी प्रकार की उन्नति की

*'इतिहासपुराणानां पञ्चमो वेद उच्यते'।

आशा करना व्यर्थ है। अतएव वंश-परम्परा और वंशेतिहास का जानना एक अत्यावश्यक विषय रखकर इसे पांचवें वेद का विशेषण दिया गया है, यही क्यों उसे याद रखने के निमित्त, यह नित्य शिक्षा भी दी गई है कि 'स्वाध्यायान्माप्रमदितव्यम् ।'

खाण्डलविप्र समाज के उदीयमान युवकरत्न पण्डित गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया ने 'खाण्डलविप्र इतिहास' जिसमें सभी सामयिक आवश्यकतायें समाविष्ट है, लिखकर जहां एक बड़े अभाव की पूर्ति की है, वहां इस दिशा में प्राचीन आर्षकाल से प्रचलित वंश-स्मृति-रक्षण की पुरानी परम्परा का भी पुनरुद्धार किया है। खाण्डलविप्रों के वंशानुक्रम को उपस्थित करने में इससे पूर्व भी आयोजन हुआ। स्वर्गीय पण्डित रामजीलालजी माटोलिया आदि ने खाण्डलविप्रों की वंशावलि तथा उनके सासनों के विषय में संक्षिप्त बातें प्रकाशित की थीं जिसमें खाण्डलविप्रों के सासनों की व्याख्या तथा अपभ्रंशों का वर्णन मात्र था, जिसे आज के प्रकाशपूर्ण अन्वेषण युग के लिये पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्र के 'सारस्वत सर्वस्व' पण्डित श्रीपतिप्रसादजी शास्त्री के 'पारीक वंश परिचय', पण्डित सुन्दरलालजी मिश्र के 'दाधीच दर्पण', पण्डित मीठालालजी व्यास के 'पुष्करणा जाति का इतिहास' तथा सिखवालों और गुर्जर गौड़ों के बड़े बड़े जातीय इतिहास प्रकाशित हो जाने के बाद समकक्षता की दृष्टि से खाण्डलविप्रों के सभी सामयिक आवश्यकताओं से गुम्फित सर्वांगपूर्ण बृहद् इतिहास की बड़ी आवश्यकता थी। इस खटकने योग्य पूर्ति के लिये समयज्ञ सुन्दरियाजी की सूझ बूझ ने जो कार्य 'खाण्डलविप्र इतिहास' के रूप में कर दिखाया, वह न केवल खाण्डलविप्रों के लिये, बल्कि सभी ब्राह्मण वर्गों के लिये इस कारण अध्ययन और मनन की वस्तु है कि लेखक ने पहले के कतिपय ब्राह्मण जातीय इतिहास लेखकों की तरह, जिनकी भर्त्सना स्वर्गीय पण्डित छोटे-

लालजी शर्मा श्रोत्रिय फुलेरा ने अपने 'ब्राह्मण निर्णय ग्रन्थ में की है,' दूसरी जातियों पर किसी प्रकार के आक्षेप नहीं किये हैं और न उनको हेयकोटि की सिद्ध करने की सकीर्ण मनोवृत्ति ही दिखाई है बल्कि श्री सुन्दरियाजी ने सभी ब्राह्मण जातियों में समन्वय सम्पादन करने की स्तुत्य प्रवृत्ति का परिचय देकर एक नई भ्रातृभाव वद्धक तथा सामयिक परम्परा की सृष्टि की है।

श्रीसुन्दरियाजी के इस प्रयत्न को, अपने जातीय इतिहास की रक्षा करते हुए संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठकर सार्वभौम ब्राह्मणत्व के संगठन की भूमिका का आरम्भ अथवा राजस्थान की समस्त ब्राह्मण जातियों को अवान्तर भेद भाव से ऊपर उठकर एक दूसरी के निकट आने का सद्भावना गुम्फित निमन्त्रण कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी। राष्ट्रीय एकता के निर्माण के समय ऐसे प्रयत्नों का होना शुभमय भविष्य का परिचायक है।

प्रस्तुत पुस्तक में कर्मठ और विद्वान् लेखक ने जहा खाण्डलविप्रों की उत्पत्ति तथा विस्तार का प्रामाणिक प्राचीन तथा मध्ययुगीन इतिहास उपस्थित किया है, वहा आधुनिक युग के सम्भावित खाण्डलविप्रों के गणनीय कार्य-कलापों का भी प्रेरणा-प्रद वर्णन किया है। खाण्डलविप्रों की एक मात्र जातीय संस्था खाण्डलविप्र महासभा के आज तक के जाति हितकर कार्यों और राजस्थान तथा शेष भारत के खाण्डलविप्र सकुल स्थानों, एवं प्रसिद्ध पुण्य पुरुषों तथा मनस्वी कार्यकर्ताओं के विवरणमय उल्लेख ने पुस्तक को विशेष रूप से उपादेय और संग्रहणीय बना दिया है। खाण्डलविप्र इतिहास भारतव्यापी खण्डेलवाल ब्राह्मणों के प्राचीन-अर्वाचीन-मय विषयों की एक सर्वाङ्गपूर्ण 'डाइरेक्टरी' कहा जा सकता है।

श्रीसुन्दरियाजी द्वारा खाण्डलविप्र जाति का यह साहित्यिक स्मारक ईंट और गारे के विनाश-शील अस्थायी स्मारकों से कहीं अधिक स्थायी और अविनाशी होगा। भावी पीढ़ी खाण्डलविप्रों के इस स्थायी साहित्यिक

स्मारक को पुस्तकाकार में पाकर जहां अपने स्मरणीय पूर्व पुरुषों को सदैव स्मरण कर उनसे प्रेरणा पायेंगी, वहां श्रीसुन्दरियाजी का यह सुन्दर प्रयत्न भी कभी विस्मृत न किया जावेगा।

लछमणगढ़ (सीकर),
२६-७-१९५१ ई०

सम्पत्कुमार मिश्र

अनुक्रमणिका

चित्रानुक्रमणिका



श्री श्री १००८ महन्त श्री वल्लभदासजी महाराज

श्री बलदाऊजी का मन्दिर, जयपुर

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखन में आपकी सद्भावना और शुभाशिर्वाद भी प्रमुख हैं ।

पृष्ठ ३६४ देखिये

शुभाशीर्वाद

'खाण्डलविप्र इतिहास' जैसे अनुपम ग्रन्थ रत्न को श्री गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया ने खाण्डलविप्र जाति को समर्पण कर उसका बड़ा उपकार किया है। ब्राह्मण जाति की उच्च परम्पराओं का पूर्वेतिहास के द्वारा समन्वय करते हुए विद्वान् लेखक ने वैदिक वाङ्मय के अगाध समुद्र में तल स्पर्श करते हुए जिस कौस्तुभ मणि को प्राप्त किया है वह निःसन्देह सनातन पुरुष के मुख से आविर्भूत ब्राह्मण जाति का वक्षोऽलंकरण होगी।

मैं हृदय से इस अनुपम ग्रन्थ का प्रचार चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि प्रत्येक खाण्डलविप्र इसे अपने घर में रख कर भावी पीढ़ी के उद्बोधन के लिये एक निधि सुरक्षित करेगा।

श्री बिहारि मन्दिर,
रामगंज, जयपुर
२८-५१ ई०

राजवैद्य नन्दकिशोर शर्मा

उपोद्घात

येऽप्यासन्निभकुम्भशायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे,
येषामप्यवसन् पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिका ।
ताल्लोकोऽयमवैति लोकतिलकान् स्वप्नेऽप्यजातानिव,
भ्रातः सत्कविकृत्य ! किं स्तुतिशतैरन्धं जगत्त्वां विना ॥ १ ॥

भारतवर्ष के अत्यन्त सुन्दर और प्रकृति के द्वारा सर्वतोभावेन अलङ्कृत मनोरम काश्मीर प्रदेश के अतुलनीय प्रभाव एवं शासननीति के आदर्शभूत नरेशों की स्मृति को जगत् में चिरस्थायिनी बनाये रखने के लिए संस्कृत के महाकवि कल्हण ने उपर्युक्त शब्दों में इतिहास के प्रति मार्मिक रूप से अपनी मानसिक भावना को अत्यन्त सुन्दर प्रकार से राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ के मङ्गलाचरण स्वरूप निबद्ध किया है—वस्तुतः उस महाकवि ने भारतीय संस्कृति के प्रकाशक सनातन इतिहास की एक सुन्दर परिभाषा-सी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करदी है।

इस क्षणभङ्गुर संसार में न मालूम ऐसे कितने व्यक्ति होगये जिनके द्वारा प्रारब्ध की गई महती पुण्य परम्परायें अद्यावधि संसार-स्थिति को यथा-यथित रखने के लिए लोक में एक व्यवस्थित विचारधारा के रूप में प्रवृत्त हुईं। जिसके कारण मानव की उच्छृङ्खल कामनायें सीमित होकर समाज को एकरस बनाने में सहायक हुईं। ऐसी जिस परम्परा के द्वारा समय समय पर यह सब सम्भव हुआ—संसार उसे मर्यादा के नाम से जानता है। इसकी मर्यादा की रक्षा के लिए भगवान् शेषशायी नारायण ने राम के रूप में सारे संसार के सामने एक कल्पनातीत स्वप्न के सदृश सुव्य- निय मित सामाजिक जीवन एवं व्यवस्थित शासननीति का निर्देशन किया, जिसे आज भी लोग रामराज्य के रूप में स्मरण कर भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम जैसे लोकमान्य पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

यह निश्चित है कि—एक मत, एक व्यवस्था, एक नीति, एक विचार-धारा, एक परम्परा चिरस्थायी नहीं रह सकती वारवार इसमें परिवर्त्तन आते हैं क्योंकि 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' के अनुसार भगवान् की अचिन्त्य लीलाशक्ति की रमणीयता इसही रूप में सर्वभुवनमोहिनी है। पर यह भी निश्चित है कि-कोई भी नई कल्पना विना किसी पूर्व संस्कार के नहीं हो सकती। तथा संस्कार किन्ही पूर्वानुभूत विस्मृत चिरसुप्त भावनाओं का पुनरुन्मेष मात्र ही है। इसही सार्वजनीन सिद्धान्त को लक्ष्य कर हम भी इतिहास की आवश्यकता पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि—इतिहास संसार के निर्माण में उन युगान्तरकारी तत्त्ववेत्ताओं को जिनकी कि विचारधारा के अनुरूप तत्तद्युगों की संस्कृति का अविच्छिन्न शुभ परम्पराओं के रूप में जन्म होता है—को एक अद्भुत प्रेरणा एवं अपूर्व वल प्रदान करता है।

भारतीय साहित्य में इस प्रकार के इतिहास का अभाव नहीं है। हमारे महर्षियों ने इस परम्परा को पुराणों के रूप में सनातन काल से निभाया है जिसके कारण स्वभावतः होने वाले युगान्तरकारी तत्तत् परिवर्त्तनों के होते हुए भी हम तथा हमारी संस्कृति अक्षुण्ण रही। हमारी अक्षुण्ण आर्य संस्कृति स्रोतस्विनी की जो दो पुण्यमयी धारायें अपने निरन्तर प्रवाह से आप्लावित कर हमको अद्यावधि जीवित रख पाई हैं—वे हैं—हमारे सनातन वैज्ञानिक ऋषियों द्वारा प्रवर्तित चार वर्ण तथा चार आश्रमों की पुण्यमयी स्थापना। इनही के आधार पर हम आजतक अपनी संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ रहे हैं। हमारा यह वर्णाश्रम धर्म अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से वर्णाश्रमधर्म के गुणदोष का विचार न करके भी यह तो कहा ही जा सकता है कि—हमारे पूर्वज अपने सामाजिक वन्धन के विषय में खूब सावधान थे और इस प्रकार की व्यवस्था प्रवृत्त करने में उन्होंने यथेष्ट स्वाधीन विचार और वुद्धि

का परिचय दिया है, पर निरन्तर परिवर्तनशील देश काल के घात प्रतिघातों से यह दोनों ही व्यवस्थाएँ टूटती जा रही हैं। इन सबका एकमात्र कारण हमारे पुराने इतिवृत्त का वारम्वार अनुशीलन करना ही है, जैसा कि प्रसिद्ध है—

इतिहास पुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामय प्रहरिष्यति ।

इसही प्रयोजन के लिए हमारे यहा पर पुराणों की रचना हुई है। इनही के द्वारा हम अपनी सस्कृति को पहचान सकते हैं। दूसरे शब्दों मे भारतीय सस्कृति के कोषस्वरूप पुराण हैं। इनमें भारतीय संस्कृति के मूल स्तम्भ वर्णाश्रमधर्म को नानाविध उपायों से सुदृढ किया गया है। इनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय सृष्टि विद्या है। यह सृष्टि किस प्रकार हुई, तथा उसके अनुरूप हम लोग किस स्वरूप में अपने आपको समझें, यही प्रमुख विषय है, जिसके द्वारा स्वय को परख कर मनुष्य अपनी सस्कृति की रक्षा करते हुए लोक कल्याण के मार्ग मे प्रवृत्त हो।

सनातन आर्य सस्कृति के अनुसार ब्राह्मण वर्ण सब वर्णों मे श्रेष्ठ है, जैसा कि वेदों से स्पष्ट है—'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् आदि। इस ब्राह्मण वर्ण का ऋषि सन्तान होना सर्वत्र प्रसिद्ध है। वेदो मे ऋषि शब्द का प्रयोग प्राय चार अर्थों मे हुआ है।

१ असल्लक्षण मूल प्राणों मे। २—रोचना लक्षण तारक नक्षत्रादि मे। ३—तत्त्वप्राण द्रष्टाओं मे तथा ४—वक्ताओं में। असल्लक्षण मूल प्राण स्वत अप्रमाण है, अर्थात् असत् हैं। उसकी सत्ता केवल अन्तरात्म-प्रेरित है और यह सृष्टि कहलाती है।

'असद्वा इदमग्रासीत् किं तदसदासीदिति। ऋषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्। के ते ऋषय इति। प्राणा वा ऋषय। (शतपथ ६-१)

रोचनाशील नक्षत्र तारकादिक में—यथा— 'एक द्वे त्रीणि वा चत्वा-

रीति वा नक्षत्राणि । .... अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः । .... अमी हु उत्तरा हि—सप्तर्षयस्स्म हि वै पुरर्क्ष इत्याचक्षते । .... आदि श्रुतियों में ताराओं के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग हुआ है । तृतीय ऋषि शब्द का प्रयोग द्युमण्डलवर्ती प्रकाशमान अग्नि, सोम, सूर्य, वरुण आदि देवताओं के विज्ञान के साक्षात्कर्तृत्व अर्थ में हुआ है । अतएव 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' कहा है ।

'मामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः अन्वैच्छन् देवास्तपसाश्रमेण ।

नमः ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।

चतुर्थ ऋषि शब्द का प्रयोग वेद में वक्ता के रूप में हुआ है । उस मन्त्र सूक्त वा वाक्यांश का वह ऋषि मान्त्रवर्णिक कहलाता है—जैसे आम्भृणी सूक्त में आम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् नामिका ऋषि ने त्रैलोक्यव्याप्त अनादि वाक्तत्त्व की स्तुति की है । प्रस्तुत विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि—चार भिन्न भिन्न अर्थों में ऋषि शब्द का प्रयोग वेद में मिलता है । ऋषियों के तीन विभाग स्पष्ट वर्णित हैं—एक सृष्टि प्रवर्त्तक ऋषि ब्रह्मा हिरण्यगर्भ आदि । दूसरे वेद प्रवर्त्तक ऋषि जिनके द्वारा आधिदैविक तत्तत्प्राण विशेषों का साक्षात्कार हुआ है । इनमें मत्स्यादि ऋषियों का उल्लेख है । तीसरे गोत्रप्रवर्तक ऋषि जिनके मुख्य नाम भृगु अंगिरा ,अत्रि, कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र, और अगस्त्य ये सात हैं । इसमें मतभेद भी मिलता है । सात ऋषियों की सन्तान गोत्रप्रवर्तक होने के कारण असंख्य गोत्र होते हैं । बोधायनादि आचार्यो ने आठ ऋषियों की सन्तान को गोत्रप्रवर्तक कहा है । इनके नाम क्रमशः जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज, अत्रि, कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र और अगस्त्य हैं । बोधायन के मत में भृगु और अङ्गिरा सप्तर्षियों की सन्तान नहीं है, अतः आङ्गिरस और भार्गव गोत्र न कहे जाकर प्रवरों की गणना में आते हैं । एकएव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्त्तते तावत्समान गोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरो गणात् । वस्तुतः बोधायन के मत से क्रमशः जामदग्न्य के २ भेद, भार्गव के ५, गौतम के ७, भारद्वाज,

के ४, आङ्गिरस के ६, आत्रेय के ४, वाशिष्ठ के ४, आगस्त्य के ४, काश्यप के ३ और वैश्वामित्र के १० भेद होने से कुल ४६ गोत्र हैं। एक गोत्र में अवान्तर भेद के सम्पादक अतएव गोत्र व्यावर्त्तक ऋषि प्रवर कहलाते हैं।

इसही आधार पर राजस्थान की प्रमुख ब्राह्मण जातियों में प्रसिद्ध खाण्डलविप्र जाति के विस्तृत इतिहास को भी लिपिबद्ध करने की आवश्यकता का बहुत समय से अनुभव किया जा रहा था। हर्ष का विषय है कि—इस अभाव की पूर्ति के लिए मेरे सम्माननीय सुहृद् पंडित गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया ने जो बहुत समय तक खाण्डल ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतीय खाण्डलविप्र महासभा के मन्त्री तथा प्रचारक एवं उपदेशक भी रहे हैं—अपने चिर सञ्चित ज्ञान को 'खाण्डलविप्र इतिहास' नामक पुस्तक के रूप में उपस्थित कर दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में वैदिक आधार पर अवटंकों के गोत्र प्रवर आदि सब अनुस्यूत कर विस्तृत ब्राह्मणत्व के अभिमान को वंशावली में स्थापित किया गया है। विद्वान् लेखक ने अन्य दूसरे सगृहीताओं के श्रम को बड़े मनन के साथ सोहापोह यहां लिपिबद्ध किया है। अपनी मनगढन्त कल्पना यहां नहीं रक्खी गई है। यह बहुत उचित आधार है।

'खाण्डलविप्र इतिहास' को आद्योपान्त देखकर प्रतीत होता है कि—यह पुस्तक ऐतिहासिक साहित्य में अपना निराला स्थान रखती है। अब तक जो जातीय इतिहास उपलब्ध होते हैं उनमें सामान्यत एक ही प्रकार का दृष्टिकोण उपलब्ध होता है। प्रातिस्विक मूल भावना प्राय लेखक अपनी पहले से ही बना लेते हैं। इससे ऐतिहासिक तथ्य विलीन हो जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में वैज्ञानिक गवेषणा पूर्ण दृष्टिकोण लेखक का होने से ऐतिहासिक तथ्य विलीन नहीं हो पाये हैं। एक प्रकार से ब्राह्मणवर्ग का प्रामाणिक इतिहास स्रोत अविकल रूप से इसमें मिलता है। जाति कल्पना पर जो निराधार आक्षेप होते हैं—उनका निराकरण करने का प्रयत्न भी इसमें

सफल हुआ है।

वैदिक काल से आरम्भ कर पौराणिक काल को अन्तर्गर्भ रखते हुए मध्यकाल तक एक क्रमबद्ध विवेचनात्मक शैली का दिग्दर्शन पाठकों को इसमें मिलेगा तथा मध्यकाल से इस काल तक की एक परम्परा, जिसमें कि इतिहास के विविध स्रोतों का दर्शन होता है—इसकी एक सङ्केतात्मक शृंखला लेखक ने प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त खाण्डलविप्रों ने अपने आपको समुन्नत करने के लिए संक्रमणकाल में किस प्रकार से स्वयं को संघटित किया तथा उनकी सदिच्छाओं ने जो रूप धारण किया—वर्त्तमान में जो कुछ है तथा जो भविष्य में होने जा रहा है उसका एक चित्र श्री सुन्दरियाजी ने इसमें उपस्थित किया है। ग्रन्थ के अन्त में दिया गया स्कन्द पुराण से उद्धृत अंश वंशावली के बारे में एक निश्चितक्रम को निर्दिष्ट करता है। इस प्रकार लेखक ने अपने चिरसञ्चित ज्ञान के आधार पर यह प्रस्तुत ग्रन्थ लिखकर एक बड़े अभाव की पूर्ति बहुत उपयुक्त समय पर की है। इसमें प्रतिपादित ब्राह्मणत्व के स्वरूप को परिलक्षित कर हम फिर से उसी लक्ष्यसिद्धि की ओर अग्रसर होंगे जिसके द्वारा मर्यादित एवं सुव्यवस्थित होकर—

'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' को सार्थक करने में पूर्वापेक्षया स्वयं को कहीं अधिक सुदृढ़ एवं सक्षम पायेंगे।

मैं पुनः ऐसे उपयोगी कार्य के लिए श्री पं० गोविन्दप्रसादजी सुन्दरिया को बधाई तथा धन्यवाद देता हूँ और पाठकों को इसके द्वारा लाभ उठाने का अनुरोध करता हूँ।

श्री नवजीवन उपवन (फतहटीबा)
जयपुर
श्रावण कृ. १३ स. २००८

विदुषांविधेयः
राजवैद्य रामदयालु शर्मा,
भिषगाचार्य

दो शब्द

गुणा पूर्वपुरुषाणा कीर्त्यन्ते तेन पण्डितै ।
गुणकीर्त्तिरनश्यन्ती स्वर्गवासकरी यत ॥

प्रतिहार बाउक ८९४ वि० का जोधपुर अभिलेख ।

"जिन जातियो का गौरवशाली इतिहास क्रमबद्ध होता है वे जातिया ही ससार मे जीवित रहती है । अपने गौरवशाली अतीत की प्रेरणा से साधनामय वर्तमान को सफल बनाकर आशामय समुज्ज्वल भविष्य का निर्माण करती हैं ।" यह विद्वानो का कथन है। इस कथन पर सन्देह करने वालों के लिये खाण्डलविप्र जातीय इतिहास की निम्न घटना सन्देह निवारण के लिये पर्याप्त होगी ।

वृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हुए भूतपूर्व जोधपुर राज्य के नागौर परगने मे खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त आबादी है। वैसे मारवाड मे पुष्करणा ब्राह्मणों का बाहुल्य है । राज्य के विभिन्न विभागों में पुष्करणा ब्राह्मण सर्वत्र अधिकारारूढ हैं । जोधपुर राज्य में खाण्डलविप्रों के पास भी पर्याप्त भूसम्पत्ति है। प्राय सभी स्थानों के खाण्डलविप्रों को डदक या माफी मे जमीनें मिली हुई हैं । जोधपुर राज्य की हजारों बीघा जमीन खाण्डलविप्र भोगते हैं ।

नागौर परगने के अन्दर राज्य कर्मचारी पद पर नियुक्त एक पुष्करणा ब्राह्मण ने आज से लगभग पचास साठ वर्ष पहले इस बात को लक्ष्य किया था । उस व्यक्ति को यह सह्य नहीं हुआ कि—'हम लोगों के उच्चाधिकारी पद पर आसीन रहते हुए भी खेती द्वारा निर्वाह करने वाले खण्डेलवाल ब्राह्मण राज्य की जमीन का निर्बाध रूप से उपभोग करें' । उसने जायल नामक स्थान—जहा खाण्डलविप्रों की पर्याप्त बसती है और जिनके पास डदक व माफी मे मिली हुई हजारों बीघा जमीन है—के खाण्डलविप्रों पर

यह आरोप लगाया कि-"ये खण्डेलवाल ब्राह्मण वस्तुतः ब्राह्मण नहीं हैं। ये तो खेतीहर हैं। राज्य की हजारों बीघा जमीन इन्होंने मिथ्या ब्राह्मण बन-कर ले रक्खी है। अब्राह्मण होने के कारण इनसे ये जमीनें छीन ली जानी चाहियें। अन्यथा इनसे भूमिकर लिया जाना चाहिये।"

उस व्यक्ति ने अपने इस मनोभाव को पूर्ण करने के लिये प्रार्थना पत्र देकर उच्चाधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। परिणाम यह हुआ कि राज्य ने जायल निवासी खाण्डलविप्र जातीय भोगताओं से स्पष्टीकरण की मांग की।

उस समय जायल में कोई विशेष गम्भीर और प्रतिभाशाली खाण्डल-विप्र न था। प्रायः सभी लोग अशिक्षित थे। वे बेचारे कुछ भी न जानते थे। निदान उन लोगों ने रूण आदि स्थानों के खाण्डलविप्रों से इस विषय में बातचीत की। रूण वाले भी जायलवालों के ही समान थे। वहां से यह समाचार 'सारड़ी' पहुँचा। सारड़ी में काछवाल बन्धुओं का घराना परंपरया सुशिक्षित था और है। वहां अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के भूतपूर्व सभापति पण्डित शठकोपाचार्यजी महाराज के पूज्य पिता श्रीमोहन-लालजी महाराज उस समय नवयुवक और परम जाति हितैषी थे। उनके पास जब यह समाचार पहुँचा तो उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ परन्तु वे उत्साही थे उन्होंने जायलवालों को आश्वासन दिया और मुकद्दमे की तारीख पर जाने को तैयार होगये।

तारीख के कुछ समय पूर्व वे अपनी ननिहाल नौवा गये थे। वहां भी उन्होंने प्रतिष्ठित और शिक्षित खाण्डलविप्रों के सामने इस विषय की चर्चा छेड़ी। वहां एक जातीय महानुभाव ने खाण्डलविप्र जाति की वंशावली की एक प्रति उनको दी और कहा कि खाण्डलविप्र जाति को अब्राह्मण बतलाने वाले लोगों के सन्देह निवारण के लिये यह पुस्तक उपयुक्त होगी। यह पुस्तक हमारे ब्राह्मणत्व का प्रतिपादन करती है। हुआ भी ऐसा ही। जब

मोहनलालजी महाराज जायलवालों को लेकर नागौर की अदालत मे पहुचे तो उनसे यही कहा गया कि—"यदि तुम लोग ब्राह्मण हो तो प्रमाण पेश करो।" उन्होंने वह वशावली की पुस्तक अदालत मे पेश की। वशावली के सुपुष्ट प्रमाणों को देखकर अदालत ने जायलवालों पर से मुकदमा उठा लिया। साथ ही खाण्डलविप्र जाति का मिथ्या कलंक भी सदा के लिये मिट गया।"

इस घटना पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर इतिहास और वंशावली तथा इतिहास के विषय मे सिद्धान्त स्थिर करने वालों के कथन पर कदापि सन्देह नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार के तथ्यों पर गम्भीर मनन करने के कारण एक दीर्घकाल से जाति का प्रामाणिक इतिहास लिखने की उत्कट इच्छा थी। इस इच्छा पूर्ति के अवसर पर जातीय इतिहास के विषय में भी दो शब्द लिख देना उपयुक्त होगा।

हमारी खाण्डलविप्र जाति की वशावली (वंशपरिचय) पण्डित रामजीलालजी माठोलिया कोटकपूरा निवासी द्वारा सम्पादित होकर वि. सवत् १९४६ मे प्रकाशित हुई थी। बाद मे उसी वशावली का हिन्दी अनुवाद पण्डित रामदयालुजी ज्योतिषी बेरी (रोहतक) ने किया जिसे वि० सम्वत् १९६३ मे भिवानी निवासी पण्डित रामजीदासजी जोशी ने प्रकाशित किया। फिर इस विषय मे दीर्घकाल तक कोई प्रयत्न न हो सका। अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के खंडवाधिवेशन में जाति के इतिहास प्रकाशन का प्रस्ताव पास हुआ परन्तु वह भी दैवदुर्विपाक से कार्यान्वित न हो सका। जब वासम अधिवेशन के बाद महासभा का कार्यालय जयपुर रक्खा गया उस समय वंशावली का पुन सशोधन व प्रकाशन करने के लिये एक समिति बनाई गई थी परन्तु जयपुर मे महासभा का कार्य सुचारु रूप से न चलने के कारण वह समिति भी इस विषय मे कोई प्रयत्न न कर सकी।

सन् १९४१ ई० मे भी जब महासभा का पुनरुद्धार हुआ और पंडित

मांगीलालजी नवहाल नासिक ने राजस्थान का भ्रमण किया उस समय उन्होंने रतनगढ़ में पण्डित श्रीरामजी शास्त्री की अध्यक्षता में वंशावली संशोधक समिति बनाई परन्तु वह समिति भी कई एक कारणों से इस कार्य में आगे न बढ़ सकी।

सन् १६३६ से मैं वंशावली का संशोधन कर उसे प्रकाशित करने की दिशा में प्रयत्न कर रहा था परन्तु सामग्री की दुर्लभता तथा अन्य साधनों के अभाव में कोई सन्तोषजनक प्रगति नहीं होसकी। यहां तक कि सन् १६४४ तक वंशावली की मूल हस्तलिखित प्रति भी प्राप्त न हो सकी थी। सन् १६४४ के डिसम्बर में मुझे वंशावली की हस्तलिखित प्रति कांकरोली (मेवाड़) में पण्डित चुन्नीलालजी व्यास द्वारा प्राप्त हुई। उसके बाद अन्य प्रमाणों की खोज में स्कन्दपुराण श्रीमद्भागवत, महाभारत, शतपथ, ऐतरेयारण्यक, कौषीतकिब्राह्मण, शौनकीय चरणव्यूह, देवीभागवत आदि ग्रन्थों से नाना प्रमाणों का संग्रह कर वंशावली को प्रकाशित करने का विचार किया। परन्तु कई एक मित्रों के परामर्श से उसे ही प्रारम्भिक इतिहास का रूप देने के लिये उसे विस्तार पूर्वक लिख कर ऐतिहासिक रूप देने में पर्याप्त समय लग गया। जब वंशावली को इतिहास का प्रारम्भिक रूप देकर प्रकाशित करने का विचार होरहा था उस समय पण्डित श्रीरामजी शास्त्री रतनगढ़, पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य राजवैद्य जयपुर आदि महानुभावों ने अपनी सम्मति प्रकट की कि इस संग्रह को सर्वाङ्गीण इतिहास का रूप दिया जाय और इसमें वर्तमान भाग और जोड़ दिया जाय। उपर्युक्त महानुभावों के सत्परामर्श के अनुसार मैंने वंशावली का प्रकाशन रोक कर सम्पूर्ण इतिहास का प्रकाशन करने की दिशा में कदम उठाया।

अपने हितैषी और सहयोगियों के सद्भावनापूर्ण सहयोग को विस्मृत करना अकृतज्ञता होगी। सर्वप्रथम 'नवजीवन उपवन' का स्मरण स्वतः ही होता है कि जिसके रमणीय लताकुञ्जों में 'खाण्डलविप्र इतिहास' लिखते

समय मेरी प्रतिभा ने प्रतिक्षण नवोन्मेष की उपलब्धि की। 'नवजीवन उपवनप्रशस्ति' पद्यों द्वारा ही उसका परिचय देना समीचीन होगा।

स्थूलेतरे चिदचितौ जगतां निदान,
भूते यदीयशुभविग्रहतामुपेत ।
निर्दोषनित्यगुणसन्ततिसन्ततश्री,
स श्रीनिवास इह न शरणं सदैव ॥

आसीदसीमगुणमण्डितराण्डलक्ष्मिद्रेषु विश्रुतमठालयजाग्युपाख्य ।
श्रीजामदग्न्यकुलकीर्तिकर स्वधर्मनिष्ठ सुधी श्रवणदास इति प्रसिद्ध ॥
सद्योगसिद्धिसहित स हि शेखवाटीदेशस्थ खाटुनगरे निजहौ शरीरम् ।
तद्वंशजो व्यधित दौलतरामवैद्य प्रारम्भ एव वसति जयपत्तनस्य ॥
तस्यात्मज समुन्पद्यत वैद्यवर्य्य ख्यातोऽखिले जयपुरे खुशहालिराम ।
आनन्दिलाल इति यस्य बभूव सूनुरुल्लाघितावनिपवृन्दवितीर्णमान ॥

समवाप रामसिंहात् स विजयगोविन्दमन्दिरे ग्रामम् ।
श्रीमद्विहारिमन्दिरमावसथौ चापि माधवावनिपात् ।
जयपुरनागरिकाणा गणनायसरे स कृष्णरामकवि ।
जयपुरविलासकाव्ये शसति यं निम्नपद्येन ।

'नाडीपरीक्षापरिपक्वपाटवो महोग्ररिक्तच्छकटीकृताटन ।
भुजार्जितश्रीभिषगुच्यते महानानन्दिलाल सरलैहेलयालक ॥'
रसशररसविधुवर्षे (१६५६) तन्निधने दत्तकस्तदनुजस्य ।
सुखलालस्य सुत श्रीमाधवनृपमानभाजनं जात ॥

लक्ष्मीरामस्वामी निरमापयदुवनं स्वकीयं यत् ।
तस्य प्रशस्तिलेखे भयकेतुर्थ संस्तुत सोऽयम् ॥

'एतस्य मत्सुहृदा सहृना सदा सत्कार्येषु दर्शितसममसमुद्यमेन,
भैषज्यभेदितरुजा जयपत्तनीयभूपालवंशभिषजा भगवत्परेण ॥
सर्वत्र विश्रुतचिकित्सकवर्यचूडामणयाह्वयेन मदमानविवर्जितेन,

श्रीश्यामलालसुधिया चिरचिन्तनीयं साहाय्यमत्रविहितं विमलान्तरेण ॥

गजगजखगशशिवर्षे (१९८८) सहस्यमासे चतुर्दश्याम् ।
शुक्ले पक्षे यशसां राशिरसौ प्राप वैकुण्ठम् ॥

ज्यायांस्तदीयतनयो नन्दकिशोराभिवस्ततः श्रीमान् ।
भिषगाचार्यः सम्प्रति भूषयते राजवैद्य पदम् ॥

श्रीगङ्गाधरगुरुतः प्रवेशमुपगत्य देवभाषायाम् ।
श्रीवीरेश्वर विदुषोऽध्यगीष्ट साहित्यशब्दशास्त्रे यः ॥

श्रीगिरिधरतो दर्शनसारं सन्दुध्य, भैषज्ये,
श्रीमल्लक्ष्मीरामात्प्रावीण्यं प्रापवान् प्राज्यम् ॥

अध्यापनं प्रथितकाशिकहिन्दुविश्व—
विद्यालये नचिरमेव विधाय सोऽयम् ।
सम्मानितो बुधजनैर्जयपत्तनीय—
विद्यालये कुलपतित्वमुरीकरोति ॥

यद्यपि सुश्रुतटीकासम्पादनविविधभाषणप्रभृतिषु—
स्वीयं वैदुष्यमसौ प्रकटितवान् किन्तु वस्तुतो मनसि ।
पुस्तकलेखनमात्रादधिमन्वानः शरीरिणां सेवाम्—
नव—नव—भेषज—योगैरायुर्वेदादरं विवर्धयते ॥

श्रीयुक्तः कृष्णदुर्गाधिपतिरजितहृद्यन्ननारायणाख्यः,
श्रीगङ्गासिंहवीकानगरनरपतिर्याविमौभूतपूर्वौ ।
मुख्याः सामन्तभूपा धनपतिवणिजश्चौत्तराहाश्चिकित्सा—
योगेऽस्य श्रद्दधाना व्यदधुरिह यशो वर्धयन्तेऽद्य चापि ॥

श्रीमानसिंहदेवः सम्प्रति यो जयपुराधिपतिः ॥
सोऽप्यस्य सुबहु मनुते शुभदे भैषज्यवैदुष्ये ॥

शासनरजतजयन्तीमहे स्वकीये स एष गुणगृह्यः ।
व्यथितोपाधि सादरमुपहृत्यैनं भिषग्रत्नम् ॥

सोऽयमद्य-

निधुखखनयनाब्दे (२००१) तपसि शनौ सूर्यसप्तम्याम् ।
वास्तुसमर्हणपूर्वं प्रविशति नवजीवनोपवनम् ॥
तेन स्वार्जितवसुना निर्मितमर्पितमम्बमुदितेन ।
तदिदं रामदयालोज्यायस्तनुजस्य सम्पत्तेः ।
जीर्णोद्धारे नूतननिर्माणे चात्र भवनानाम् ।
उरीकरोति मुरलीधरशर्मा मातुल श्रान्तिम् ।
लालचन्द्रात्मजो रामप्रकाश शिल्पिपुङ्गव ।
गङ्गासहायसौभाग्यमहायो निरमादिवम् ।
रायसिंहीयटोडास्थश्चतुर्वेदान्वयोद्भव ।
पुरुषोत्तमशर्मेमा पद्यमालामरीरचत् ।

इसके अतिरिक्त जिन महानुभावों ने इतिहास लेखन में मुझे सहयोग दिया है उनके प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूँ। यथा पण्डित सम्पत्कुमारजी मिश्र लछमनगढ़ (सीकर), पण्डित रामदयालुजी भिषगाचार्य राजवैद्य जयपुर, बाबू मदनलालजी सेखसरिया अध्यक्ष—रत्नाकर प्रेस एण्ड पब्लिकेशन और प्रभात प्रेस जयपुर, को धन्यवाद देकर मैं उनके निकट अनात्मीय न बनूंगा। इन्हीं महानुभावों के सर्वविध सहयोग से यह कार्य सम्पन्न होसका इसके लिये मैं अपने इन सभी सहयोगियों का परम आभारी हूँ।

श्री सम्पत्कुमारजी मिश्र ने एक जनप्रिय नेता और पत्रकार तथा साहित्यकार के रूप में राजस्थान और विशेषकर उसमें बसने वाली ब्राह्मण जातियों की जो ठोस सेवायें की हैं वे सर्वविदित हैं। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की 'प्रस्तावना' लिखकर मुझे ही उपकृत किया हो सो बात नहीं है अपितु उन्होंने राजस्थान की समस्त ब्राह्मण जातियों का सामयिक नेतृत्व करते हुए अपनी उदात्त भावनाओं का भी परिचय दिया है।

खण्डेलविप्र जाति की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय

खाण्डलविप्र महासभा और उसके सभापति पण्डित केदारनाथजी गोधला एडवोकेट ने मुझे इस कार्य में जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिये मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ।

२५ नवम्बर १६५० को सभापतिजी के आदेशानुसार महासभा द्वारा निर्मित समिति ने मेरे द्वारा लिखित इतिहास को देखकर उस समिति के प्रमुख सदस्य पण्डित शठकोपाचार्यजी महाराज और राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य ने मुझे जो आवश्यक सुझाव दिये उनके लिये भी मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ।

सामयिक मांग के अनुसार जाति का क्रमबद्ध इतिहास लिखकर मैंने जाति सेवा करने का दुःसाहस किया है, फिर भी मुझे आशा है कि मेरे सहयोगी हितैषी मुझे निराश न करेंगे क्योंकि "केषां न स्याद्भिमतफला प्रार्थना चोत्तमेषु" के अनुसार जाति प्रेमी महानुभाव मुझे अपेक्षित सहयोग अवश्य देंगे।

इतिहास की आवश्यकता के विषय में ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाल दिया गया है अतः विशेष पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं। इसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता का निर्णय पाठकों पर छोड़ कर मुझे इतना ही कहना अभिमत है कि यदि मेरे इस लघु प्रयास से जाति भाइयों को यत्किंचित् भी लाभ पहुँचा तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

जयपुर (राजस्थान)
श्रावण शुक्ला चतुर्थी
सम्वत् २००८ वि०

—लेखक

हमारे सहायक

श्री श्री १००८ श्री अनन्ताचार्यजी महाराज फतेहपुर।
श्री श्री १००८ महन्त महाराज श्री गोपालदासजी महाराज जानकीवल्लभजी का मन्दिर सीकर।
श्री श्री १००८ श्री गोविन्ददासजी रामेश्वराचार्यजी सीकर।
श्री श्री १००८ श्री महन्त महाराज सुन्दरामदासजी सीतारामदासजी अमरसर।
श्रीयुत पण्डित केदारनाथजी गोयला एडवोकेट नवलगढ़
सभापति— अ० भा० खाण्डलविप्र महासभा।
श्री श्री १००८ महन्त महाराज राधिकादासजी महाराज किशनगढ–रेनवाल।
श्री श्री १००८ महन्त महाराज श्री भगवताचार्यजी रामगढ।
श्रीयुत काव्यतीर्थ पण्डित वासुदेवजी जोशी चूरू।
श्रीयुत पण्डित काशीप्रशादजी जोशी फतेहपुर (सीकर)।
श्रीयुत पण्डित कृष्णदत्तजी साहित्याचार्य लक्ष्मणगढ।
पी० एल० सूरजमलजी वेणीप्रसाद शर्मा ,,
श्रीयुत पण्डित वंशीधरजी चोटिया नवलगढ।
श्रीयुत वैद्यराज पण्डित जगन्नाथजी मंगलिहारा नवलगढ।
,, पण्डित सूरजवक्सजी चोटिया बी ए एल एल बी बड़ (मारवाड)।
,, ,, जगन्नाथजी माटोलिया रेनवाल।
,, ,, चतुर्भुजजी बी० ए० अयाना।
,, ,, रामनारायणजी शर्मा मागरोल।
,, ,, चुन्नीलालजी व्यास काकरोली (मेवाड़)।
,, ,, भंवरलालजी भारनाड़िया उदयपुर (मेवाड)।
,, ,, शठकोपाचार्यजी महाराज डीडवाना।
,, राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य जयपुर।

श्रीयुत राजवैद्य पं० रामदयालुजी भिषगाचार्य जयपुर।
,, पण्डित गणेशीलालजी चोटिया ध्यावड़ी (आसलपुर)।
,, ,, सम्पत्कुमारजी मिश्र लक्ष्मणगढ़।
,, ,, आनन्दीलालजी महाराज जयपुर।
,, ,, रामप्रतापजी वैद्य सीकर।
,, ,, द्वारकाप्रसादजी जोशी नवलगढ़।
,, ,, श्रीरामजी शास्त्री रून्थला रतनगढ़।
धर्मभूषण श्री पण्डित मांगीलालजी नवहाल मालेगांव।
श्रीयुत पण्डित सीतारामजी चोटिया वैद्यराज जयपुर।
,, वैद्यराज पण्डित रामकिशोरजी माटोलिया जयपुर।
,, पण्डित जुगलकिशोरजी एम० ए० जयपुर।
,, ,, रामेश्वरशरणजी मिश्र सम्पादक "विप्रबन्धु"
,, ,, मुरलीधरजी चोटिया जयपुर।
,, ,, जनार्दनजी जोशी भू० पू० एम० एल० ए० जयपुर राज्य।
,, ,, गोवर्द्धनलालजी गोवला परतानियों का मन्दिर जयपुर।
,, ,, नरोत्तमलालजी एम० ए० परतानियों का मन्दिर जयपुर।
,, ,, फूलचन्दजी आयुर्वेदाचार्य संजीवन औषधालय जयपुर।
,, ,, माधवलालजी जोशी जोधपुर।
,, वैद्यराज श्रीनारायणजी गोविन्दनारायणजी बीकानेर।
,, पण्डित मोहनलालजी काछवाल जयपुर।
,, ,, दुर्गालालजी सोती जयपुर।
,, ,, सूर्यनारायणजी सोती जयपुर।
,, ,, रूपनारायणजी बुढ़ाढ़रा चौधरी जयपुर।
,, ,, मांगीलालजी काछवाल पूसद (वरार)
,, ,, लक्ष्मीनारायणजी मंगलिहारा रतनगढ़

श्रीयुत पण्डित लादुरामजी हीरालाल मोतीलाल रिणवा लछमनगढ।
" " लादुरामजी फूलचन्द छिछासवाला लछमनगढ।
" " चौथमलजी वैद्य "
" " नारायणाचार्यजी जोशी पाडोराई
" " रामेश्वरलालजी रून्थला सांगरवा
" " कालुरामजी बोहरा सागरवा
" " जगदीशप्रसादजी पटेल शिश्यू।
" " मुरलीधरजी पटेल शिश्यू।
" " जुगलकिशोरजी काछवाल पूना।
" " नन्दरामजी केशरीमलजी रून्थला वर्धा।
" " भंवरलालजी पटवारी मालपुरा।
" " अम्बालालजी चौधरी मागलवाडा।
" " श्यामलालजी सुन्दरिया सुजानगढ।
" " बोदूलालजी पीपलवा "
" " मांगीलालजी चोटिया "
" " सीतारामजी शर्मा डीडवाना
" " हरलालजी हीरालालजी दूत पुर (मेवाड़)
" " ललितप्रसादजी दूत " "
" " तुलसीदत्तजी झुन्झुनादा व्यास परभणी
" " देवीलालजी झुन्झुनादा व्यास भूरछया
" " शङ्करलालजी बुढादरा उज्जैन
" " नथमलजी काछवाल इन्दौर
" " गोरधनजी सुन्दरिया दादिया
" " गंगाविष्णुजी राधाकृष्णजी बुढादरा कुचामन
" " गोवर्द्धनलालजी नरहाल जूसरी

,, ,, आनन्दीलालजी नवहाल सीकर

,, ,, घासीलालजी डोलिया भीलवाड़ा

,, ,, हरीनारायणजी पीपलवा वैद्यराज (चौमूँ) हाथरस

,, ,, हरीशंकरजी फौजदार कामदार मेजा (मेवाड़)

,, ,, मदनलालजी मुनीम वजीरपुरा आगरा

,, ,, मूलचन्दजी वणमिया, मंत्री अ० भा० खाण्डलविप्र महासभा

,, ,, श्रीकृष्णजी स्टेशन मास्टर किशनगढ़

,, ,, जयदेवजी पूर्णानन्दजी चोटिया चूड़ी

,, ,, बद्रीप्रसादजी जोशी रतनगढ़

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखन में सहायक ग्रन्थ

(१) हस्तलिखित स्कन्द पुराण के रेवा (आवन्त्य) खण्ड की ३५ से ४० तक की छै अध्याय।
(२) खण्डलोत्पत्ति (हस्तलिखित)।
(३) वशावली पण्डित रामजीलालजी माटोलिया कोटकपूरा।
(४) ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्य सहिता)।
(५) वाजसनेयी संहिता।
(६) अथर्ववेद सहिता (सायणभाष्य सहिता)।
(७) निमल सहिता।
(८) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण।
(९) महाभारत।
(१०) श्रीमद्भागवत महापुराण।
(११) नारदीय महापुराण।
(१२) स्कान्द उपपुराण (नैपाली भाषा में)
(१३) देवीभागवत।
(१४) पद्मपुराण।
(१५) हरिवंश पुराण।
(१६) वराह पुराण।
(१७) युगपुराण।
(१८) मत्स्यपुराण।
(१९) वायुपुराण।
(२०) शतपथब्राह्मण।
(२१) ऐतरेयब्राह्मण।
(२२) कौषीतकिब्राह्मण।

(२३) ऐतरेयारण्यक ।
(२४) तैत्तिरेयारण्यक ।
(२५) बृहदारण्यकोपनिषद् ।
(२६) शौनकीय चरणव्यूह ।
(२७) श्रौतमुनि चरित ।
(२८) रसहृदयतन्त्र भगवद् गोविन्दपाद ।
(२९) हिन्दी विश्वकोष ।
(३०) भक्तमाल नाभाजी ।
(३१) भारतीय इतिहास की रूपरेखा जयचन्द्र विद्यालङ्कार
(३२) चौरासी वैष्णवन की वार्ता ।
(३३) आर्यसंस्कृति के मूलाधार बलदेव उपाध्याय ।
(३४) वैष्णवमताब्ज भास्कर ।
(३५) राजस्थान का इतिहास कर्नल टाड
(३६) सीकर का इतिहास पण्डित झाबरमल शर्मा ।
(३७) तवारीखनामा अलवर गोविन्दप्रसादजी नाजिम ।
(३८) श्रीमङ्गलचरितामृत पण्डित सांवलराम राष्ट्रसेवक ।
(३९) स्कान्द श्रीमद्भागवतमहात्म्य ।
(४०) जयपुरविलास काव्य श्रीकृष्णरामजी भट्ट ।
(४१) मातृवंश विबोधन काव्य विलासराय चोटिया ।
(४२) सिद्धभैषज्यमञ्जूषा आयुर्वेदाचार्य पण्डित जयदेवजी जोशी
(४३) सुश्रुत संहिता सुश्रुताचार्य
(४४) चक्रदत्त
(४५) भावप्रकाश
(४६) काश्यप संहिता
(४७) नित्यकर्म प्रयोगमाला पं० चतुर्थीलाल शर्मा

(४८) मङ्गलमहर्षि चरित महाकाव्य कविचक्रवर्ति प० देवीप्रसाद शुक्ल
(४९) गलता महात्म्य ।
(५०) लोहार्गल महात्म्य ।
(५१) ब्राह्मण निर्णय — प० छोटेलाल श्रोत्रिय ।
(५२) सारस्वत सर्वस्व — प० गोविन्दनारायणजी मिश्र ।
(५३) पारीक वंश परिचय — प० श्रीपतिप्रसादजी शास्त्री ।
(५४) दाधीच दर्पण — प० सुन्दरलालजी मिश्र ।
(५५) पुष्करणा जाति का इतिहास — पं० मीठालालजी व्यास ।
(५६) जाट इतिहास — श्री देशराजजी जघीना ।

नोट— विमल संहिता संस्कृत में अलभ्य है। देवी भागवत के तैलगू अनुवाद में उसका उल्लेख है और उसके तीर्थभाग को ग्रन्थ में विमल संहिता का नाम दिया है। उसी विमल संहिता में मधु छन्दादि ऋषियों की कथा है और परशुराम के यज्ञ का वर्णन है। कथाभाग स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड से मिलता जुलता ही है।

प्रकाशकीय

'अतीत' और 'भविष्य' दोनो का ही जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि वर्तमान सत्य होता है और तात्कालिक वास्तविकता को लेकर ही जीवन मे प्रगति की जा सकती है परन्तु इस प्रगति का आधार क्या? किसके सहारे, किधर को और किसलिये? यहीं भविष्य हमारा लक्ष्य और अतीत हमारा पथ-प्रदर्शक बनकर हमे वर्तमान के कर्मक्षेत्र में उतरने को प्रेरणा प्रदान करता है।

भविष्य अन्धकार के अन्तर्गर्भ होता है अत वह मानवीय ज्ञान से परे है। वस्तुत वह काल्पनिक है। मानव अतीत और वर्तमान के सहारे भविष्य को देखने का प्रयास कर उसे वास्तविकता में परिणित करने का प्रयत्न करता है, जिसमें वर्तमान के साधन और अतीत की अनुभूतिया उसकी प्रधान सहायक होती हैं।

यह सुनिश्चित है कि मानव का भविष्य और वर्तमान दोना ही उसके अतीत पर अवलम्बित हैं। अतीत के ज्ञान की प्राप्ति सुलभ नहीं तो सभव अवश्य है। वह प्रेरणात्मक एवं सहायक भी पर्याप्त होती है। इसीलिये मानव उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और अधिकाश मे सफल भी होता है। इसी अतीत कालीन वाङ्मय को साहित्यिक भाषा मे इतिहास कहा जाता है।

अधिकतर विश्व इतिहास लेखकों ने ऐतिह्य निर्माण मे जनसाधारण के सहयोग को विस्मृत किया है जिसकी पूर्ति अनेक साहित्यिक लेखकों ने जीवन चरित्र, संस्मरण व अन्य साहित्यिक रचनाओ द्वारा की है। यदि इतिहास से परे व्यक्ति विशेष के जीवन चरित्र का महत्व हो सकता है तो फिर जाति विशेष के इतिवृत्त का क्यों नहीं?

इसी दृष्टिकोण को लक्ष्यकर प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन की दिशा मे हमने

कदम उठाया, यद्यपि आर्थिक दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ प्रकाशन के गुरुतर कार्य की सफलता की आशा बहुत ही कम थी। वस्तुतः यह ग्रन्थ आज से पर्याप्त समय पूर्व ही पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हो जाता परन्तु कतिपय कारणों से ऐसा संभव न हुआ, जिसका हमें खेद है। इस अनपेक्षित विलम्ब के लिये पाठकों से क्षमा प्रार्थना करते हुए हमें इतना ही और कहना है कि इस संक्रमण काल में नानाविध कठिनाइयों के होते हुए भी यदि हमारा यह प्रकाशन एक भी पाठक को प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

रत्नाकर प्रेस एण्ड पब्लिकेशन

खण्डलविप्र इतिहास



परमपूजनीय, प्रातःस्मरणीय, महामहोपदेशक

स्वर्गीय राजवैद्य पं० रामजीलालजी माटोलिया

संस्थापक भारतधर्म महामण्डल, खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति पुस्तक (वंशावली) के सर्वप्रथम सम्पादक और अ० भा० खाण्डलविप्र महासभा के संस्थापक, सुनारी (रोहतक) कोटकपूरा (पंजाब)

आधुनिक युग में आज से साठ वर्ष पूर्व आपने खाण्डलविप्र समाज में जो अमर ज्योति जगाई थी वह नाना विघ्न-बाधा रूप अन्धड़ों में भी पूर्ववत् जलती हुई अपने दिव्य प्रकाश द्वारा खाण्डलविप्र जाति का पथ-प्रदर्शन कर रही है। खाण्डलविप्र जाति यावच्चन्द्र दिवाकर आपके इन उपकारों के लिये ऋणि रहेगी।

पृष्ठ २१६ देखिये

अवतरणिका

वैदिक कालीन प्रगति, रामायणकालीन उत्कर्ष, महाभारतकाल का संघर्ष, बौद्धकालीन क्रान्ति और मध्ययुगीन अपकर्ष के परिवर्तन प्रत्यावर्तनों की आवृत्ति करता हुआ हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति आज जिस रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं, उनका यह रूप समीचीन तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि 'हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के वर्तमान ढाँचे को पाश्चात्य संस्कृति में आमूल परिवर्तित कर देना उपयुक्त नहीं है।' क्योंकि जिस भारतीय संस्कृति के आधार पर हिन्दू जाति और समाज का निर्माण किया गया है और जिन मानव कल्याणात्मक महद् उद्देश्यों को सामने रख कर धार्मिक परम्पराओं अथच जीवन को प्रोत्साहित किया गया है वह मूलत सर्वथा निर्दोष प्रमाणित हो चुका है। यही वह आधार था, जिस पर आज तक भारतीय जातीय समाज का जीर्ण शीर्ण कलेवर और हिन्दू धर्म की खण्ड-हरप्राय अट्टालिका टिकी रह सकी है।

हमारे इस भारतवर्ष ने जातीय, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक क्रान्तियों में फंसकर जब जब आपत्तियों का सामना किया है, तब तब सांस्कृतिक स्थिरता, धार्मिक बलिदान, राजनैतिक गाम्भीर्य और सामाजिक एवं जातीय संगठनों ने इसको जीवित रहने में प्रोत्साहन दिया है। प्रारम्भ में जिन महान् उद्देश्यों को लेकर जाति, समाज और धर्म की स्थापना की गई थी उनके निरवद्यस्वरूप और विश्वहितैषिता के कारण जो स्थायित्व हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज और हिन्दू जाति को प्राप्त हुआ, वह अन्य किसी भी जाति, समाज अथवा धर्म को नहीं मिला। समय समय पर शासक वर्ग भी जाति, समाज और धर्म के संरक्षण पोषण में प्रयत्नशील रहा है, किन्तु शासक वर्ग का अधिकार व्यवस्थापक के पद तक नहीं पहुँच पाया, और

यही कारण है कि जाति, समाज और धर्म की मूल परम्परायें प्रायः अक्षुण्ण रही हैं।

यद्यपि आज युग बदल गया है। मानव जाति का मानसिक धरातल परिवर्तित हो रहा है, किन्तु इस परिवर्तनकाल में यह नहीं समझ लेना चाहिये कि हिन्दू धर्म के मानव हितैषी उद्देश्य और हिन्दू समाज के "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे आदर्शों की शक्ति क्षीण होगई है। आज भी हमारी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, समाज और जातीय जीवन के आदर्श पूर्ववत् जीवित हैं। उनमें वही मानव कल्याणकारिणी शक्ति विद्यमान है। कमी केवल उन्हें पहचान कर कार्यान्वित करने की ही है। यदि आज हिन्दू जाति की सामाजिक, धार्मिक और जातीय परम्पराओं का नवीनीकरण किया जाय तो वे परम्परायें सामाजिक, धार्मिक और जातीय जीवन को सुखी करने में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हो सकती हैं, और केवल हिन्दू समाज अथवा जाति को ही नहीं अपितु विश्व के समस्त सामाजिक और जातीय सङ्गठनों को सुखी करने में समर्थ हो सकती है।

आज इस प्रगतिशील युग में, जबकि संसार का प्रत्येक राष्ट्र जाति और समाज के उत्कर्ष के लिये आगे बढ़ने में प्रयत्नशील है, भारतीय राष्ट्र के प्रधान अङ्ग हिन्दू समाज और हिन्दू जाति पिछड़ते जा रहे हैं। इसका मूल कारण तो हमारी सदियों की विगत परतन्त्रता है ही, किन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि हमारे अभिमान, अशिक्षा और जड़ताने भी हमें पंगु बना दिया है। पिछले संघर्षों में पड़कर जिन बुराइयों को अपना लिया था वे हमारे पतन की हेतु हुईं जो आज भी हमारे विकास में रोड़े अटका रही हैं। आज का प्रगतिवादी मानव केवल भौतिकवाद की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहा है और भावी सुख के स्वप्न देख रहा है, वास्तविकता और अतीत की ओर उसका कोई ध्यान नहीं है।

हम मानते हैं कि भविष्य का निर्माण सुन्दर ढंग से होना चाहिये,

किन्तु "सत्यं शिवम् सुन्दरम्" अतीत को भुलाकर नहीं। हमें इस युग में रहकर दूसरों की अच्छाइयों को अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये किन्तु अपने को मिटाकर नहीं। हमारे देश, जाति, समाज, राष्ट्र, धर्म सभ्यता, संस्कृति और जीवन का पुनर्निर्माण होना नितान्त आवश्यक है, किन्तु इस भावी निर्माण में अतीत की अनुभूतियों का समावेश भी परमावश्यक है।

हमारी वर्तमान राष्ट्रीय सरकार देश के पुनर्निर्माण के लिये जिस प्रकार प्रयत्नशील है उसी प्रकार यदि वह भविष्यत् में भी कर्तव्यपालन करती रही तो आशा है कि भारत एक बार फिर जगद्गुरुत्व का गौरवशाली स्थान प्राप्त करेगा। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि हमारी आज की सरकार सर्वथा अस्खलित गति है। देश हित की ओर कदम बढाते हुये भी सरकार जिन स्थानों में भूलें कर जाती है वहा हमारा कर्तव्य होजाता है कि हम अपनी सरकार को सचेत करें। जिन निर्माण सम्बन्धी योजनाओं को लेकर सरकार आगे बढ रही है उनके साथ साथ कुछ विनाशकारी तत्त्व भी समाविष्ट होते जा रहे हैं। उनका विषैला प्रभाव हम आज नहीं जान सकते। भविष्य में वे हमारे लिये नितान्त दुःखदायी सिद्ध होंगे। हमारे भूत की गलतिया आज हमारे विकास में बाधक हो रही हैं, वैसे ही आज की गलतिया आगे चलकर हमारी भावी सन्तानों को फलीभूत न होने देंगी।

विज्ञपाठक समझ गये होंगे कि अतीत और वर्तमान के विश्लेषण के साथ साथ भावी निर्माण का दिग्दर्शन क्यों कराया गया है? निर्माण करने से पहले हिताहित की उपयोगिता और अनुपयोगिता का विचार कर लेना आवश्यक होता है। पिछले सहस्रों वर्षों की अज्ञता और संघर्षों ने हमारी शारीरिक शक्ति ही नहीं अपितु विचार शक्ति को भी क्षीणप्राय कर दिया है। यही कारण है कि हम अच्छाइयों और बुराइयों को ठीक ढंग से नहीं समझ पाते हैं। निर्माण कार्य के प्रारम्भ करने से पहले यदि हम अपनी और दूसरों

की अच्छाइयों और बुराइयों का सन्तुलन करलें तो हमें बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा। राजनैतिक क्षेत्र में जो प्रगति हम कर चुके हैं और करते जारहे हैं उसी माप दंड से प्रत्येक क्षेत्र को मापना बुद्धिमानी नहीं है। आजका राजनैतिक क्षेत्र पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि राष्ट्रों के मानसिक धरातल बदल चुके हैं और प्रत्येक पहलू से राजनीति का समष्टिकरण वाञ्छनीय होता जारहा है। किन्तु सामाजिक, धार्मिक और जातीय क्षेत्र आज भी विभिन्नता की अपेक्षा रखते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुयायी कुछ महानुभाव इस ध्रुव सत्य पर आपत्ति किये बिना नहीं रह सकेंगे, किन्तु उन्हें यह सोच लेना चाहिये कि पूर्व और पश्चिम के सामाजिक जीवन में उतना ही अन्तर है जितना आकाश और पाताल में। जहां पश्चिमीय सभ्यता आडम्बर प्रधान वैयक्तिक स्वातंत्र्य द्वारा मानव को उच्छृंखल बनाकर सच्ची सुखानुभूति से दूर कर देती है वहाँ पूर्वीय और विशेषकर भारतीय आर्य हिन्दू सभ्यता और संस्कृति सामूहिक पारतंत्र्य के साथ साथ वैयक्तिक स्वातंत्र्य प्रदान कर दानवता को मानवता के रूप में परिणत कर देती है। वह व्यक्ति के जीवन में सच्ची शान्ति उत्पन्न करती है। एक इसी गुण के सहारे एक नहीं अपितु अनेकों जातियां इस भारतवर्ष में आकर इस हिन्दू जाति में मिल गई जिनका पता दूध में मिले हुए पानी के समान आज के इस तार्किक युग में भी नहीं लग रहा है।

हमारे वर्तमान कर्णधार प्रचलित समाज और जातियों को मिटाकर जिस भावी समाज का निर्माण करना चाहते हैं, वह केवल हमारे ही विपरीत नहीं अपितु मानवता के विरुद्ध भी एक उद्दण्ड कदम है। जिन पूर्वाचार्यों ने समाजशास्त्र का निर्माण किया उनकी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का परिचय प्राप्त किये बिना ही यदि हम उन्हें दोषी ठहरावें तो हमारी विवेकशीलता समीचीन नहीं कही जासकती। जहां तक समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध है, भारत के प्राचीन समाजशास्त्रियों ने वहां तक अन्वेषण करने

में कोई कमी नहीं रक्खी है। मन्वादि धर्मशास्त्रों को देखने से विदित होता है कि उनके रचयिताओं ने अपने जीवन के ठोस अनुभवों को समाज के जीवन मे समाविष्ट किया है। जिन तथ्यों के आधार पर समाज सुखी होसकता है वे ही तथ्य लेकर पूर्व के आचार्य आगे बढे हैं। विशेषता यह है कि उनकी परम्परायें जीर्ण शीर्ण होने पर भी कुण्ठित नहीं हो पाई हैं।

आज राष्ट्र और समाज का नवनिर्माण करने वाले महानुभाव यह भूलते जारहे हैं कि अपनी सभ्यता और संस्कृति द्वारा समाज को प्रभावित करने वाला योरोप अपने दूषित सामाजिक जीवन से कितना अधिक दुखी है? यद्यपि पश्चिम के सामाजिक जीवन मे भी मर्यादाओं के बन्धन अवश्य है, किन्तु उनका स्थायित्व केवल नाम मात्र को है। व्यक्ति की छोटी मोटी इच्छाओं पर भी पश्चिमीय सामाजिक परम्परायें छिन्न भिन्न होती देखी गई हैं। इसीलिये वहा के जीवन में सच्चे सुख और शान्ति का अभाव है।

पिछले दो अढाईसौ वर्ष के सम्पर्क से हम पाश्चात्यों के प्रभाव से प्रभावित अवश्य हुए। समय की माग भी यही थी कि हम पश्चिम से कुछ सीखें। सीखने मे केवल गुण मात्र ग्रहण करना ही बुद्धिमानी कही जा सकती है, अवगुण ग्रहण नहीं। राजनीतिक जीवन का स्तर ऊँचा उठाकर हमने समय ज्ञान का जो परिचय दिया वह वस्तुत उपयुक्त है, किन्तु अब भौतिकवाद के चक्कर मे पड़कर आदर्श से गिर जाना, सच्ची भारतीयता नहीं कही जा सकती। कुछ लोग आदर्शवाद को निरा ढकोसला बतलाते हैं लेकिन यह निर्विवाद सिद्ध है कि सभ्यता, संस्कृति और जातीयता का मूल आधार आदर्शवाद ही है। योरोप और अमेरिका जैसे आधुनिक सभ्य राष्ट्र भी आदर्शवाद से उन्मुक्त नहीं हैं। भेद केवल इतना ही है कि वहा का आदर्शवाद भौतिकवाद से अनुप्राणित है और भारतीय आदर्शवाद का प्राण अध्यात्मवाद है, जिसे पाश्चात्य विद्वानो ने भी "सत्यं शिवं

सुन्दरम्" के रूप में सर्वोत्कृष्ट माना है। जहां जहां पूर्व और पश्चिम के जीवन का सन्तुलन किया गया है, वहां वहां पूर्व का जीवन सच्चा और सुख पूर्ण सिद्ध हुआ है। उचित तो यह था कि आज के इस संघर्ष युग में पश्चिमीय राष्ट्र अपने दुखी जीवन से त्राण पाने के लिये पूर्व के आदर्शों को अपनाकर आगे बढ़ते। इससे विपरीत दिशामें चलनेवाले राष्ट्र सुखी होने की कल्पना भले ही करलें, किन्तु उनको सच्चा सुख प्राप्त नहीं होसकता। मानसिक अशान्ति और गरीबी भौतिकवाद की ही देन है। इसको अपनाने वाले राष्ट्र स्वप्न में भी सुखी होने की कल्पना नहीं कर सकते।

यह निश्चित है कि हम अपने प्रचलित जीवन में आमूल परिवर्तन किये बिना नहीं पनप सकते। किन्तु हमारे जीवन का यह भावी परिवर्तन पाश्चात्य सभ्यता के आधार पर तो समीचीन नहीं है। यदि पौर्वात्य सभ्यता के आधार पर हमारे सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन किया जाय तो वह भी सामयिक आवश्यकता और जीवन की वास्तविकता को भुलाकर नहीं। सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन तभी संभव होसकता है जब कि देश के शत प्रति-शत व्यक्ति शिक्षित हों। अभी तक यहां शिक्षा का धरातल बिल कुल नगण्य है। इतने बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन को समझने की शक्ति यहाँ के जन साधारण में अभी नहीं है फिर भी आज के समाजशास्त्री सत्ता के सहारे से "हिन्दू कोड बिल" जैसे कानून समाज को मनवाना चाहते हैं और ऐसे ही कानूनों के आधार पर प्रचलित समाज के जीवन में परिवर्तन कर उसका निर्माण करना चाहते हैं जो हमारे पिछले परम्परागत जीवन से बिलकुल मेल नहीं खाता। "हिन्दू कोड बिल" तथा तत्सम अन्य कानूनों द्वारा समाज में वर्तमान जातियों और वर्णों को मिटाकर वर्गहीन समाज निर्माण से हिन्दू समाज का ढाँचा सर्वथा परिवर्तित होकर एक दूसरे ही रूप में हमारे सामने आता है जिसमें जाति समाज सभ्यता और संस्कृति का प्रायः लोप होजाता है। यदि हम यह मानलें कि हमारे

समाज में जातीयता जैसी रूढ़ प्रथायें दूषित हैं तो भी कुछ अंश में हमारा यह सही निर्णय न होगा। जातीयता स्थूल रूप से तो समाज में अनेकता की द्योतक है, किन्तु समाजशास्त्र के आधार पर जातीयता का सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि 'भारत में तो जातीयता सामाजिक जीवन की आधारशिला है।' यदि कानून के बल पर समाज की इस आधारशिला को नष्ट कर दिया गया तो प्रचलित समाज का विनाश अवश्यम्भावी है।

राज्य सत्ता द्वारा समाज के नवनिर्माण की दिशा में कदम उठाकर आज यदि हम परम्परागत कुछ प्रथाओं (जिनमें सामाजिक परिवर्तनों से कुछ दोष आगए हैं) को नष्ट करना चाहें तो हमारी भूल होगी। विशेष न सही, यदि जातीय जीवन पर ही सोच विचार किया जाय तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि —एक बड़े समाज का सरलता पूर्वक संचालन करने के लिए मनुष्यों के समुदायों को व्यवसायानुसार अलग अलग नामों से विभक्त कर दिया गया है। इनका रहन सहन, रीति रीवाज एक है। कई एक जीवनोपयोगी नियम ऐसे भी हैं जो देश काल भेद से विभिन्नता की अपेक्षा रखते हैं। उन विभिन्न-नियमों का प्रभाव जातीय वर्गों में एक दूसरे को बाधित नहीं करता।' ऐसी परिस्थिति में जातीयता कोई बुरी प्रथा नहीं कही जा सकती। यदि जातियों के पारस्परिक संघर्षों को देखकर जातीयता को बुरी समझा जाय तो भी उसका सही निराकरण यह है कि जातियों का पारस्परिक संघर्ष और ऊँच नीच का भेद भाव तो केवल समाज की अशिक्षा और अन्धपरम्परा का परिणाम है। अन्यथा विभिन्न वर्गों में विभक्त होकर स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन यापन करने वाली हिन्दू समाज की जातियों में संघर्ष के लिए कोई स्थान नहीं है। क्योंकि प्रत्येक जाति अपने अपने क्षेत्रमें स्वतन्त्र है। समाज के सार्वजनिक नियन्त्रण द्वारा सभी जातियों का जीवन नियंत्रित है। ऐसी सुव्यवस्थित परिपाटी को घातक नहीं कहा जासकता। इसमें समाविष्ट बुरा-

इयों का शिक्षा द्वारा मूलोच्छेद ही उपयुक्त दिखाई पड़ता है। पूर्वकाल के समाजशास्त्री अपने विशाल समाज को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ही इस दिशा में क्रियाशील हुए थे। वे अपने इस उद्देश्य में सफल भी हुए। आज भी भारत में जातीयता जीवित है और जबतक हिन्दू समाज रहेगा तब तक रहेगी।

इस प्रकार जातीयता का पक्ष समर्थन करने के साथ साथ हम यह भी स्वीकार करते हैं कि जातीयता समाज का आवश्यक अंग होने पर भी राष्ट्र से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। उसके आन्तरिक नियम राष्ट्र को अबाधित करते हुए होने चाहिये। राष्ट्रीयता और जातीयता का सम्मिश्रण ही एक समृद्धिशाली राष्ट्र का निर्माण करने में समर्थ हो सकता है। यदि इन दोनों क्षेत्रों में संघर्ष उत्पन्न होजाय तो राष्ट्र को हानि उठानी पड़ती है और उसका विकासक्रम रुक जाता है।

राष्ट्र की परिस्थिति, जाति और समाज के जीर्ण शीर्ण ढांचे को देखते हुए इस समय संघर्ष का काल नहीं है, क्योंकि संघर्ष में पहले विनाश और फिर विकास निहित है। यदि संघर्ष हुआ तो केवल सामाजिक जीवन ही परिवर्तित हो सो बात नहीं है, संभवतः संस्कृति के विनाश की घड़ी भी आजाय। संस्कृति के विनाश के साथ साथ जाति, समाज और राष्ट्र का अस्तित्व मिटते देर नहीं लगती। ऐसी परिस्थिति में निर्माण इस ढंग से होना चाहिये कि राष्ट्र और समाज दोनों का अहित न हो। यदि समाज और राष्ट्र को एक प्राण किये बिना ही शासक वर्ग और कानून को समाज हित का आधार मानने वाले समाजशास्त्री किसी विपरीत दिशा में चल पड़े तो समाज उनका साथ न देगा और परिणाम स्वरूप प्रगति रुक जायगी।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह सदा से ही समाज में रहता आया है। मानव की इस मनोवृत्ति के कारण ज्यों ज्यों समाज बढ़ता गया त्यों त्यों

उसका संचालन करने के लिये जातीयता का अनुभव किया गया और समय पाकर जातीय जीवन का श्रीगणेश हुआ। जाति और समाज का पारस्परिक संपर्क और सहयोग ही समाज निर्माण मे मुख्य हेतु है। साधारणतया जाति और समाज का सामंजस्य एक प्राकृतिक नियम है। संस्कृति निर्माण के साथ साथ इस सामंजस्य की मर्यादायें निर्धारित हुई और उनके द्वारा नियंत्रित मानव जीवन को समाज प्रधान जातीय जीवन कहा गया। जातीय जीवन संस्कृति के विकास का फल है, और इसके द्वारा ही समाज का जीवन बना है। अनियंत्रित मानव समुदाय से या तो समाज का निर्माण होता ही नहीं और यदि हो भी जाय तो टिक नहीं सकता, इसीलिये समाज मे जातीयता का समावेश आवश्यक समझा गया था।

जिस प्रकार सभ्यता और संस्कृति पर देश काल का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता वैसे ही समाज और जातीयता पर भी देशकाल का प्रभाव पड़ता है। इसी नियम से समाज और जातियां समय समय पर परिवर्तित होकर विकास को प्राप्त होती हैं। सामाजिक जीवन के परिवर्तन के साथ साथ जो तारतम्य आता है, उसका प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़े बिना नहीं रहता और उसी आधार पर समाज की यथार्थता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्रकृति के परिवर्तनशील होने के कारण प्रकृति द्वारा संचरणशील देश, समाज और जातियां भी बदलती रहती हैं। अब तक बहुत कम ऐसे समाज व जातियां मिलेंगी जिनमें बहुत कम परिवर्तनों का इतिहास पाया जाता है। सामाजिक जीवन मे सिद्धान्ततः कम परिवर्तनों वाला समाज सर्वप्रथम गणनीय हिन्दूसमाज है। हिन्दूसमाज के सामाजिक ही नहीं अपितु जातीय और पारिवारिक जीवन में भी अब तक बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। इसीलिये प्रधान रूपसे सामाजिक जीवन में भी कोई बड़े भारी परिवर्तन सिद्धान्त रूपसे नहीं हुए।

डाक्टर के. एम. कपाड़िया ने अपनी "हिन्दू किनशिप" नामक पुस्तक में लिखा है कि 'हिन्दू जाति, समाज और परिवारों का सुदृढ़ संगठन पिछले तीन हजार वर्षों में बहुत कम परिवर्तित हुआ है। हिन्दू धर्म के इतिहास में आर्यों के जीवन के मूल सिद्धान्त अब भी वस्तुतः ज्यों के त्यों दिखाई देंगे उनकी रक्षा के लिये समय समय पर नियमों और संयमों में वृद्धि होती गई है।'

डाक्टर के. एम. कपाड़िया के उपरोक्त कथन से यही विदित होता है कि हिन्दू जाति के सिद्धान्त और उनके संगठन विशेष ठोस एवं उपयोगी हैं। इसीलिये उनकी रक्षा में हिन्दू जाति और समाज ने बड़े बड़े बलिदान और त्याग किये हैं। परिवर्तन कम होने का भी यही कारण है कि प्रचलित प्रथायें उपयोगी और शान्तिदायिनी हैं। ऐसी स्थिति में आज भी यह निश्चित रूप से मान्य होना चाहिये कि यदि हम समाज का पुनर्निर्माण करें तो सैद्धान्तिक बातों को न भुलादें। क्योंकि हिन्दू जाति के प्रचलित सिद्धान्त सब से अधिक ठोस और स्थायी हैं। उनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर उन्हें विकृत करना अपने सामाजिक जीवन को दुखी करना है।

जिस प्रकार समाज के जीवन के अन्य सिद्धान्त अपरिवर्तित हैं, उसी प्रकार जातीय जीवन के सिद्धान्त भी अपरिवर्तित हैं; क्योंकि उनका अस्तित्व बहुत अधिक व्यापक है। वे समाज के जीवन के आधारस्तंभ हैं। आज के राष्ट्रवादियों का प्रधान उद्देश्य समाज से वर्ग, वर्ण, और जाति को मिटा देने का है। उनका दृष्टिकोण यह है कि समस्त मानव जाति का एक ही संगठन हो जिसमें वर्गीकरण के आधार पर बने छोटे छोटे जातीय समूह मिटा दिये जाँय। यह कहां तक उपयुक्त है? इसका निर्णय विज्ञपाठक स्वयं ही कर सकते हैं। राष्ट्र की परम्परागत संस्कृति के विरुद्ध चलना किसी प्रकार उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। फिर भारत में तो आज भारतीयों और विशेषकर उन ऋषि सन्तानों का शासन है, जो अपने को ऋषि मुनियों की

सन्तान कहने में गौरव का अनुभव करते हैं ?

ऋषि मुनियों की सन्तान होने के नाते हमें उनके आदर्शों में श्रद्धा और विश्वास भी होना चाहिये। पूर्वजों के इसी परम्परागत सम्बन्ध से हम अपने प्राचीन इतिहास के प्रति श्रद्धालु बने हुए हैं। पूर्वजों ने जातीय जीवन की नींव इसलिये डाली थी की उसके द्वारा राष्ट्र का हित होगा। उनका दृष्टिकोण सही निकला। वास्तव में जातीयता से हिन्दू समाज को पर्याप्त लाभ हुए हैं। प्रारंभ में जातीय जीवन में रूढ़ीवादिता का अभाव था। गुण कर्म के आधार पर प्रथम वर्णों की सृष्टि हुई, उसके बाद वे वर्ण सामयिक परिवर्तनों के आधार पर वर्तमान जातीयता के रूप में परिणत होगये। भारतीय इतिहास काल के प्रारंभ से लेकर लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व तक भारतीय समाजान्तर्गत वर्ग अर्थात् जातीय जीवन का स्वरूप गुण कर्म के आधार पर ही चालू था। बाद में जो परिवर्तन हुए और वर्णों ने रूढ़ जातीयता का रूप धारण किया उसका कारण सामयिक परिस्थितियाँ हुईं।

विशेषकर आर्य हिन्दू समाज में योरोप के समान उच्छृंखलता और वैयक्तिक स्वातंत्र्य का बोलबाला नहीं हो पाया। समाज के संघीकरण में इससे पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा है। बहुत कुछ अंशों में सामाजिक क्रान्ति को रोकने वाले जातीयता के ये रूढ़ संस्कार ही हैं।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित महानुभाव इस तथ्य पर कम विश्वास करते हैं, किन्तु वस्तुस्थिति यही है; अन्यथा अब तक भारतीय हिन्दू समाज का कलेवर बदल गया होता। भारतीय वर्णाश्रम धर्म और उसकी मर्यादायें आज छिन्न भिन्न होगई हैं। आज यदि कोई परिचय वर्णव्यवस्था का मिलता हैं तो वह केवल जातीयता के अन्तर्गत ही। हमें यह मानना पड़ेगा कि भारतीय वर्णव्यवस्था गुण कर्म से हटकर जन्मजात होगई है, किन्तु उसके मूल सिद्धान्त ज्यों के त्यों हैं।

आज इस जन्मजात वर्णव्यवस्था अर्थात् जातीयता को उखाड फैंकने का प्रयास आर्य हिन्दू समाज में होरहा है। वैसे देखा जाय तो जातीयता के प्रति इस कट्टर विरोध की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जातीय जीवन मे जिन बुराइयों का समावेश होगया है, वे तो विना समस्त समाज को सुशिक्षित और परिष्कृत किये निकल नहीं सकती। इसलिये जातीयता को नष्ट करने से कोई लाभ नहीं। हां, जातियों के संकुचित दायरे को मिटाकर उनमें प्राचीनकाल के समान उदार और विशाल विचारधारा का फैलाना आवश्यक है।

आज जातियों में पारस्परिक सहयोग का अभाव है। इस पारस्परिक असहयोग की भावनाओं को जातियों से दूर करना सच्ची जाति सेवा है। प्राय: सभी जातियां अपने अपने उत्पत्ति क्रम को सामने रखकर आगे बढ़ती हैं, फिर भी प्रायः लोग यह भूल जाया करते हैं कि अन्ततोगत्वा समस्त आर्य हिन्दू जाति का उद्गमस्रोत एक है और उसके विभिन्न जातीय संगठन भी उस एक के अनेक भेदोपभेद हैं। इस तथ्य को आर्य हिन्दू जाति के

पूर्वजों ने समझा था, जिससे उनका विकास हुआ और वे अपने प्रत्येक सिद्धान्त को कार्यान्वित कर सके।

जातीय जीवन समाज का एक प्रधान अंग है। वह अपने संगठन द्वारा समाज को बल प्रदान करता है, और उसीके संगठन से बृहद् समाज का एकीकरण संभव है। क्योंकि इतने बड़े समाज का संचालन केवल कतिपय व्यक्तियों द्वारा हो नहीं सकता। धर्म, संस्कृति, सदाचार और मानव जीवन को सुरक्षित रखने के लिये इस प्रकार के जातीय संगठनों की आवश्यकता पूर्वजों ने अनुभव की थी और इसी आधार पर उन्होंने जातीयता का निर्माण किया था।

पूर्वजों द्वारा प्रस्तुत जातीय जीवन उनके हाथों खूब फलीभूत हुआ। जातीय जीवन में विशेषरूप से आदर्शवाद का प्रभुत्व पाया जाता है। इसी से सांस्कृतिक जीवन को बल मिलता है और समाज अपने जीवन में विशेषता प्राप्त करता है।

आज भी जातीयता की आवश्यकता है। भले ही वह पूर्वरूप में न हो। उसका परिवर्तित रूप रहेगा। जातीयता फिर फलीभूत होगी। संभव है-"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" फिर से पूर्वरूप में कार्यान्वित हो, किन्तु इससे पहले वर्तमान में प्रचलित जातीयता भी अभी दीर्घ काल तक आर्य हिन्दू समाज में जीवित रह सकती है। सूक्ष्म रूप से पूर्वापर का विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है और इसीलिये यदि वर्तमान में प्रचलित जन्मजात जातीयता में सामयिक सुधार कर दिये जाँय तो जातीय जीवन पूर्ववत् फलीभूत होकर आगे बढ़ सकता है।

एक नहीं अनेक जातियां हैं। उनके विषय में इतिहास भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। समाज और राष्ट्र का क्रम विकास जातीय जीवन के आधार हैं। भारतीय राष्ट्र ने पूर्वकाल में जातीयता को प्रोत्साहन देकर अपने सांस्कृतिक जीवन को समुन्नत किया था, यह सर्वविदित है।

समय के उलट फेर से जातीय जीवन अव्यवस्थित हुआ। उसमें कुसंस्कारों का समावेश होगया। अशिक्षा और असंगठन के कारण जातीय जीवन जराजीर्ण होकर समाज के पतन का हेतु बन गया। जातीयता और समाज की अवनति का पूर्व इतिहास एक करुण कहानी के रूप में समझा जासकता है। हिन्दू समाज अपने संगठन के आधार को खोकर ही अवनत हुआ था। उसका मूल आधार चातुवर्ण्य था जो वर्तमान में प्रचलित जातियों के रूपमें परिणत हुआ। जब जातियों की अवनति हुई तो समाज का भी पतन हुआ। फिर भी समाज में प्रचलित सिद्धान्त और व्यवस्थायें ठोस थीं, जिनसे समाज स्थिर रह सका। आज यदि पूर्वकाल की उन ठोस व्यवस्थाओं और सिद्धान्तों का बहिष्कार कर दिया जाय तो समाज टिक न सकेगा। आज के समाज-धुरीण जिस मार्ग को अपनाये हुए हैं वह भारतीय और विशेषकर आर्य हिन्दू समाज के विपरीत का मार्ग है। उसके द्वारा जाति प्रधान हिन्दू समाज फलीभूत नहीं हो सकता। आज तो यदि समाज में प्रचलित जातीय जीवन को पुनः प्रोत्साहन दिया जाय तो इस युग में भी हम पूर्व की झलक देख सकते हैं। आज जातीयता के विरुद्ध विद्रोह होने का यही कारण है कि हम अपने जातीयता के इतिहास से अनभिज्ञ हैं और विशेषकर उसके मूल सिद्धान्तों और उद्देश्यों को भूले हुए हैं।

जातीय जीवन की गहराइयों और उसके पूर्ण इतिहास का अनुशीलन ही इस दिशा में हमारा पथप्रदर्शन कर सकता है। उसीके सहारे हमारी भ्रान्ति का निराकरण हो सकता है। भारत में पहले इस प्रकार के आदर्श और उद्देश्यों का अनुशीलन कर जातीय जीवन को प्रोत्साहन दिया जाता रहा है। समय समय पर पूर्वजों का आदर्शवाद ही जातीयता के आधार पर समाज का मार्ग प्रशस्त करता रहा है। आज एक ऐसे बृहद् जातीय संघ की आवश्यकता का अनुभव किया जा सकता है जो अपने अपने वर्गों का नेतृत्व कर समाज का वास्तविक नवनिर्माण करने में समर्थ होसके। फिर भी

यह आवश्यक होगा कि पहले हम जातीय इतिहास का अनुशीलन कर जातीयता का ज्ञान प्राप्त करलें।

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व की सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति के कारण जातीय जीवन में दृढ संस्कारों का प्रादुर्भाव हुआ और उसके बाद वर्ग या वर्ण प्रधान जातीयता मिटकर जन्मजात जातीयता का उदय हुआ। इसी समय से यहा जातीय जीवन को विशेष प्रधानता दी गई। इसी समय से भारतीय वाङ्मय में जातीय इतिहास का प्रारंभ हुआ। जातीय जीवन के प्रारम्भकाल में जातीयता सम्बन्धी पूर्वकालीन व्यवस्थायें बहुत समय तक अपना प्रभाव रखती रही हैं, किन्तु जातीय, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्रान्तियों के अनेकश परिवर्तन प्रत्यावर्तनों के फलस्वरूप जातीय जीवन का प्रारंभिक स्वरूप स्थिर न रह सका।

संघर्षकाल में एक जाति के अनेकों टुकडे हुए और उनके संगठन देशकाल भेद से नाना नामों से प्रसिद्ध होकर समयानुसार समाज के अंग प्रत्यंग बनते चले गये। जातीयता अथवा जातीय जीवन का कोई भिन्न इतिहास भारतीय इतिहास वाङ्मय में नहीं मिलता, संभवत उस समय इसकी आवश्यकता का अनुभव भी नहीं किया गया होगा।

भारतीय आर्य हिन्दू समाज में ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ था जिसने जगद्गुरु का गौरवशाली स्थान प्राप्त किया था। कालान्तर में वही ब्राह्मण वर्ण एक ब्राह्मण जाति के रूप में परिणत हो गया। धीरे धीरे उसका जातीय स्वरूप भी रूढ़ रूप पकड़ गया। वर्ण से जातीयता और उसमें भी जन्मजात जातीय जीवन का रूढ़ रूप ग्रहण करने पर भी ब्राह्मण वर्ण अर्थात् ब्राह्मण जाति का जगद्गुरु पद पूर्ववत् बना रहा। आज सामयिक परिवर्तनों के कारण ब्राह्मण जाति का जगद्गुरु पद संदिग्ध दृष्टि से देखा जा रहा है और लोगों की धारणा यह होती जा रही है कि यदि निकट भविष्य में ही ब्राह्मण जाति सचेत होकर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने में प्रयत्नशील न हुई तो संभवतः उसका जगद्गुरु पद उससे छिन जायगा।

उपरोक्त विषम परिस्थिति के होते हुए भी आज तो ब्राह्मण जाति फिर भी अपने पूर्वजों के पदचिन्हों पर कुछ अंश में चल रही है। सामयिक परिवर्तनों का अनुसरण उसके लिये भी आवश्यक है। भारत की ब्राह्मण जाति आर्य हिन्दू समाज की सभी जातियों में प्रमुख है। इसका कार्यक्षेत्र आर्य हिन्दू जाति के सामाजिक जीवन में प्रमुखता रखता है। जिस प्रकार अन्य जातियां परिवर्तित होती चली गई उसी प्रकार ब्राह्मण जाति में भी अनेक परिवर्तन प्रत्यावर्तनों की आवृत्ति हुई, जिनका इतिहास भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध है।

जिस प्रकार एक आर्य हिन्दू जाति के चार भेद वर्ण रूप में हुए और फिर वर्णों के रूढ़ रूप जातीयता में चारों जातियों के अनेक भेद हुए, उनमें समयानुसार ब्राह्मण जाति के भी अनेक भेदोपभेद हुए। ब्राह्मण जाति के नाना भेदोपभेद भविष्यत् में अलग अलग जातियां बन जाने पर भी समस्त भारतीय ब्राह्मण जाति के अंग ही बने रहे। आज भी ब्राह्मण जाति की

नाना शाखायें अपने को एक विशाल ब्राह्मण जाति का अंग अनुभव करती हैं और एक को प्रमुख मानकर अनेक भेदोपभेदों को उस एक का अंग प्रत्यग मानती हैं।

प्रारम में एक ब्राह्मण वर्ण अथवा ब्राह्मण जाति ने और फिर समयानुसार परिवर्तित होती हुई ब्राह्मण जातीय संघ की जातियों ने भारतीय आर्य हिन्दू समाज में प्रमुख स्थान प्राप्त किया। भारत की ब्राह्मण जातियों का क्षेत्र धर्म, समाज, राजनीति, शिक्षा आदि प्रमुख विषयों से ओत प्रोत रहता आया है और आज भी सबसे अधिक है। प्रारंभ से ही ब्राह्मण जातिया आर्य हिन्दू समाज की शिक्षिका रही हैं। भारत की सघबद्ध ब्राह्मण जातियों ने बौद्ध कालीन संकट के समय में तथा अन्य विपत्ति समयों में सनातन आर्य संस्कृति की रक्षा कर पूर्व से लेकर पश्चिम तक अपनी विजय वैजयन्ति फहराई थी। संघबद्ध ब्राह्मण जातियां ने अपने प्रभाव से जगद्-गुरुत्व प्राप्त कर ससार के सामने यह उद्घोषणा की थी कि —

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥ मनु ॥

इस प्रकार की स्पष्ट और साधिकार उद्घोषणा करनेवाली ब्राह्मण जातियों के संघ ने वस्तुत अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण किया और विश्व को अपने ज्ञान विज्ञान की देन से अपना ऋणि बनाया। आर्य हिन्दू धर्म, समाज, संस्कृति और सभ्यता के निर्माता ऋषियो की सन्तान ब्राह्मण जातियो ने बहुत समय तक अपने पूर्वजों द्वारा अपनाये हुए मार्ग पर चलकर अपने गौरव की रक्षा की। सामयिक परिवर्तनों के फलस्वरूप जो कुछ हुआ उससे ब्राह्मण जातिया भी अवश्य प्रभावित हुईं, और उनका विशाल सगठन छिन्न भिन्न होगया। संगठन के विकेन्द्रीकरण का ही यह प्रभाव है कि आज ब्राह्मण जाति के पूर्वकालीन संघ छिन्न भिन्न हो गये हैं। अब उनमें पहले जैसा प्रभाव इसलिये नहीं रहा कि सघो की सामूहिक शक्ति क्षीण होगई।

केवल जातिगत संगठन मात्र रह गये हैं जो अपने अपने वर्ग विशेष का सामान्यतया सामाजिक जीवन बनाये हुए हैं।

"संभवतः किसी समय में यह अनुभव किया गया होगा कि ब्राह्मण जाति का विशाल जनसमुदाय विभक्त न हो।" किन्तु देश काल की परिस्थितियों में समयानुसार जो कुछ होना था वह होकर ही रहा। पूर्व की समुन्नत अवस्था और उसके ह्रास का इतिहास हमें भावी जीवन के निर्माण के लिये पर्याप्त शिक्षा और प्रेरणा प्रदान करता है। ब्राह्मण जाति के अंग प्रत्यंग अर्थात् ब्राह्मण जाति के भेदोपभेद (जो नाना ब्राह्मण जातियों के नामों से वर्तमान से प्रसिद्ध हैं) यदि पुनः पूर्वकाल के समान संबद्ध हो सकें तो बहुत अच्छा है। यदि ऐसा संभव न हो तो वे जातियां कम से कम अपने अपने वर्ग विशेषों को तो अवश्य समुन्नत कर आगे बढ़ें और अपने मार्ग को प्रशस्त करते हुए उन्नतिशील हों। सभी ब्राह्मण जातियों के लिये यह बात समान रूप से लागू हो सकती है। इसी के सहारे यह आशा की जा सकती है कि—"एक बार फिर वह समय आयेगा जिसमें पूर्वकाल के समान समस्त ब्राह्मण जातियां सुशिक्षित होकर संगठित रूप में आर्य हिन्दू धर्म के झण्डे के नीचे एकत्रित होंगी।" इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि ब्राह्मण जातियां आज ही क्रान्ति के द्वारा समस्त नियमोपनियमों को तोड़कर अन्तर्जातीयता स्थापित करें। इस प्रकार की क्रान्ति का अभी समय नहीं आया है। अभी तक समाज और विशेषकर जातियों का शिक्षा सम्बन्धी धरातल निम्न स्तर का है। इसलिये प्रचलित व्यवस्था से विपरीत दिशा में सहसा चलना कुछ अंशों में अहितकर भी हो सकता है।

खाण्डलविप्र, (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति

जगद्गुरु का गौरवशाली स्थान प्राप्त करनेवाली भारतीय ब्राह्मण जातियों मे खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का भी प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार अन्य ब्राह्मण जातियों का महत्व विशेष रूप से इतिहास प्रसिद्ध है, उसी प्रकार खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का महत्व भी इतिहास प्रसिद्ध है। इस जाति मे भी अनेक ऋषि मुनि, विद्वान् सन्त, महन्त, धार्मिक, धनवान, कलाकार, राजनीतिज्ञ और समृद्धिशाली महापुरुषों ने जन्म लिया है।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति मे उत्पन्न अनेक महापुरुषों ने समय समय पर देश, जाति, धर्म, समाज और राष्ट्र के राजनैतिक क्षेत्रों को अपने प्रभाव से प्रभावित किया है। जिस प्रकार अन्य ब्राह्मण जातियों का अतीत गौरवशाली है, उसी प्रकार इस जाति का अतीत भी गौरवशाली होने के साथ साथ परम प्रेरणाप्रद है।

"अपने इतिहास के बिना ससार मे कोई भी जाति जीवित नहीं रह सकती।" यह विद्वानों का कथन है। इसी कथन के आधार पर प्राय सभी भारतीय ब्राह्मण व अन्य जातियों के इतिहास विद्यमान हैं। जब अतीत का इतिहास सुसम्बद्ध होगा तो उससे प्रेरणा प्राप्त कर भावी आशा पर जाति अपने भविष्य निर्माण की ओर कदम बढायेगी।

भारतीय ब्राह्मण जातियों मे प्रमुख, समस्त भारत में फैली हुई खाण्डल विप्र (*खण्डेलवाल ब्राह्मण*) *जाति को भी सामयिक माग के अनुसार अपने* अतीत इतिहास की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इसके लिये खाण्डल विप्र जाति को प्रयत्नशील रहना चाहिये कि उसका अतीत इतिहास सुसम्बद्ध हो, क्योंकि आने वाले युग में वे ही जातिया जीवित रह सकेगी जो भूत की प्रेरणा द्वारा वर्तमान में कर्तव्य पालन के आधार पर भविष्यत् मे आगे बढ

सकेंगी। जिन जातियों का अतीत प्रेरणाप्रद गौरवशाली और वर्तमान कर्म निष्ठ होता है वे ही जातियां अपने भविष्य को समुज्ज्वल बना सकती हैं। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति में उपर्युक्त दोनों ही बातें विद्यमान हैं। इसका अतीत गौरवशाली है। वर्तमान को देखते हुए भविष्य भी नितान्त समुज्ज्वल है। ऐसी अवस्था में इसके इतिहास और विशेषकर प्रारंभिक इतिहास पर कुछ प्रकाश डालना अनुचित न होगा।

यों तो जिस समय से जातियों का प्रादुर्भाव हुआ उसी समय से उनके इतिहास भी बनते बिगड़ते चले आ रहे हैं। किन्तु बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग ने इतिहास पर एक नया प्रकाश डाला है। इस युग में इतिहासों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो गवेषणा हुई है, उसके अनुसार प्रत्येक जाति को अपने इतिहास पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक होगया है। यद्यपि इतिहास का दृष्टिकोण पौराणिक भी हो सकता है, किन्तु पुराणकालीन इतिहास में खोजपूर्ण विचारधारा का समावेश भी आधुनिक युग में आवश्यक है। यह दृष्टिकोण इतिहास के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। अब जातियों के इतिहासों में भी वैज्ञानिक विचारधारा की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। पिछले समय में जिन जातियों के इतिहास प्रकाशित हुए हैं उनमें भी इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर नवीन विचारधारा का समावेश किया गया है।

अब तक हुई एतद् विषयक गवेषणा

खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति के विषय में प्रकाश डालने वाले जो प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, उनमें स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड (आवन्त्य खण्ड) प्रमुख है। इसके अतिरिक्त वैदिक और पौराणिक साहित्य के प्रधान प्रामाणिक ग्रन्थ इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं जिनका नामोल्लेख यथास्थान होगा।

वैदिक और पौराणिक साहित्य के प्रामाणिक ग्रन्थों में उपलब्ध प्रमाण खाण्डलविप्र जातीय इतिहास की आधारशिला हैं। स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड (आनन्त्य खण्ड) में महेन्द्रगिरि महात्म्य प्रकरण के अन्तर्गत जो कथाभाग है, प्राय सभी प्रामाणिक ग्रन्थ उसका समर्थन करते हैं। इस एक समान आधार को लेकर विचार करने से यही निश्चय होता है कि घटना क्रम से नाम प्राप्त इस जाति के उत्पत्ति विषयक प्रमाणों में यही प्रमुख है। पौराणिक विद्वानों के बाद जिन महानुभावों ने इस विषय में गवेषणा की है, उनका भी यही विश्वास है।

पौराणिक ग्रन्थों के बाद सर्व प्रथम इस विषय पर कलम उठाने वाले पण्डित रामजीलालजी माटोलिया, फोटकपुरा (पजाब) निवासी थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम वैदिक और पौराणिक साहित्य से तथ्य सग्रह कर 'खाण्डल विप्र वंशावली' का प्रकाशन वि० स० १६४६ में किया था। पण्डित रामजीलालजी ने खाण्डलविप्र जाति की वंशावली प्रकाशित की थी किन्तु इन्होंने साथ में उत्पत्ति गाथा भी रक्खी थी। पण्डित रामजीलालजी माटोलिया द्वारा प्रकाशित वशावली ही भविष्यत् में खाण्डलविप्र जातीय इतिहास के लिये लोगों को प्रेरणा प्रदान करनेवाली हुई।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया द्वारा प्रकाशित वंशावली के विषय में लोगों की यह धारणा थी की वस्तुत यह जाति की वंशावली नहीं अपितु उत्पत्ति पुस्तक है, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। पण्डित रामजीलालजी माटोलिया ने जो खाण्डलविप्र जाति के पचास गोत (सासन या अंकटंक) का ही विशेष रूप से स्पष्टीकरण किया है, जाति की उत्पत्ति गाथा को भी सरलता से समझने के लिये वंशावली के साथ जोड़ दिया है, क्योंकि उस समय लोगों के सामने यह प्रश्न विशेष रूप से उपस्थित था कि हम कौन हैं? इसी प्रश्न को हल करने के लिये पण्डित रामजीलालजी माटोलिया ने नाना ग्रन्थों का समीक्षा पूर्वक अध्ययन कर वंशावली का

संग्रह किया था और यथा समय उसे प्रकाशित कर जाति को उपकृत किया।

वि० सं० १९९२ में बेरी (रोहतक) निवासी पण्डित रामदयालजी ज्योतिषी ने पण्डित रामजीलालजी माटोलिया द्वारा प्रकाशित वंशावली का हिन्दी अनुवाद किया जिसे पण्डित रामजीदासजी जोशी भिवानी निवासी ने प्रकाशित कर बिना मूल्य जाति में वितरण किया।

पण्डित शिवलालजी जोशी, वेदान्त मार्तण्ड, रतनगढ़ (बीकानेर) निवासी ने भी कवि चक्रवर्ती पं० देवीप्रसादजी शुक्ल द्वारा विरचित "मंगल महर्षि महाकाव्य" की भूमिका में वंशावली पर कलम उठाई है। उन्होंने भी वंशावली को ही प्रधानता दी है। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध साहित्य का संकलन आपने अच्छा किया है। वेदान्त मार्तण्डजी ने ऐतरेयारण्यक के कथाभाग को प्रमुख माना है। ऐतरेयारण्यक और रेवा-खण्ड दोनों का कथाभाग समान और विशेष प्रामाणिक है। इन दोनों प्रामाणिक ग्रन्थों का, प्रमाण पुष्टि के साथ साथ ऐतिहासिक तथ्यों से भी मेल है। तैतरेयारण्यक में खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों की उत्पत्ति स्थिति का जो उल्लेख मिलता है वह भी विशेष रूप से प्रामाणिक है। रेवाखण्ड में जाति के नामकरण का उल्लेख उत्पत्ति गाथा के साथ मिलता है। इन ग्रन्थों में उपलब्ध खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जातीय कथाभाग एक दूसरे के पूरक हैं।

उपर्युक्त प्रामाणिक ग्रथों के आधार पर यह स्पष्ट है कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का मानव समुदाय एक घटनाक्रम के आधार पर एक विशेष संज्ञा प्राप्त करता है, जिससे उसके गौरव की अभिवृद्धि होती है। खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक पुरुष इस घटना विशेष से विशेष प्रकाश में आते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी सुनने में आता है कि खाण्डलविप्र जाति के

परम प्रसिद्ध महापुरुष महात्मा श्री मंगलदत्तजी महाराज ने भी खाण्डलविप्र जातीय उत्पत्तिक्रम और वंशावली पर प्रकाश डाला था। महर्षि मंगलदत्तजी महाराज ने ही वर्तमान में उपलब्ध "वंशावली" का संकलन किया था, ऐसा भी सुनने में आता है। लोगों की धारणा यह भी है कि पंडित रामजी लालजी माटोलिया ने भी "वंशावली" की हस्त लिखित प्रति महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के उत्तराधिकारी पंडित गिरधारीलालजी चोटिया से प्राप्त की थी।

कवि चक्रवर्ती पंडित देवीप्रसादजी शुक्ल बनारस ने भी अपने 'मंगल-महर्षि चरित्' में इस बात का उल्लेख किया है। सम्भवत महर्षि मंगलदत्तजी ने "वंशावली" का संकलन निज में न किया हो किन्तु उन्होंने इस विषय पर प्रकाश अवश्य डाला था। उनके शिष्यों में "वंशावली" का प्रचलन अवश्य था। इसी आधार पर पंडित रामजीलालजी माटोलिया को वंशावली की प्रति मिली थी। तात्पर्य यह है कि महर्षि मंगलदत्तजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर उनके बाद में होने वाले विद्वानों ने "वंशावली" द्वारा जाति में प्रकाश फैलाया।

इस विषय के प्रमुख लेखक पंडित रामजीलालजी माटोलिया आदि महानुभावों ने उत्पत्तिगाथा के साथ साथ खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जातीय वंशावली का प्रकाशन किया। पंडित रामजीलालजी माटोलिया के एतद् विषयक प्रयास का फल यह हुआ कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति ने अपने अस्तित्व और गौरव का ज्ञान प्राप्त किया। प्रगति शील युग में खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के लिये "वंशावली" ने एक पथ प्रदर्शक प्रदीप का काम किया। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति को अपनी इतिहास परम्परा का ज्ञान सर्वप्रथम इसी "वंशावली" से हुआ।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया से पहले भी खाण्डलविप्र

(खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की यह वंशावली अर्थात् उत्पत्ति पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। इस विषय में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के भूतपूर्व सभापति पण्डित शठकोपाचार्यजी काछवाल, डीडवाना निवासी से पता चला है कि मारवाड़ में उनके गांव सारड़ी में वंशावली की एक छपी हुई प्रति उन्होंने देखी थी। उनके बचपन में उन्होंने उस प्रति को देखा था। वह आगरे में छपी हुई थी ऐसा उनका विश्वास है। पण्डित शठकोपाचार्यजी का घराना पीढ़ी परम्परा से शिक्षित है और इसी कारण वह वंशावली उस घर में मिली थी। पण्डित शठकोपाचार्यजी का कहना है कि वंशावली अवश्य थी, यह मुझे निश्चित रूपसे याद है। उसका साइज भी उन्होंने लगभग ५½×७½" का बताया था। सम्भव है पण्डित रामजीलालजी माटोलिया के पूर्व भी किसी जाति हितैषी महानुभाव ने इस विषय में स्तुत्य प्रयत्न किया हो, परन्तु आज उनके कार्य का कोई अवशेष न मिलने से हम उन अज्ञातनामा महानुभाव के प्रति कृतज्ञता मात्र ही प्रकट कर सन्तोष करते हैं।

सामयिक मांग के अनुसार उपर्युक्त विद्वानों ने खाण्डलविप्र जातीय वंश परिचय और "वंशावली" पर प्रकाश डालकर जाति का परम उपकार किया, किन्तु उन महानुभावों के श्रम करने के बाद इस विषय पर किसी दूसरे विद्वान् का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। इस विषय के उपलब्ध प्रमाणों को ऐतिहासिक कसौटी पर कसने का भी अवसर नहीं आया। प्रकाशित प्रमाणों का संकलन होने पर भी उनके सही निर्णय की ओर कदम न उठाने के कारण प्रारम्भिक संकलन में रही त्रुटियों का सुधार नहीं होपाया।

सारे प्रमाण सही और ठोस थे, किन्तु पौराणिक गाथाओं के पारस्परिक सम्मिश्रण से जो कमियां आगई थीं, उनको दूर करना आवश्यक था। पिछले साठ वर्षों में इस विषय की गवेषणा बन्द हो जाने के कारण इस

विषय पर कुछ नहीं लिखा गया। प्राप्त पुराणों में जो कथायें इस प्रकरण से सम्बन्ध रखती हैं, उनमें सर्वत्र तो नहीं, किन्तु प्राय इस जाति के आदि पुरुष विश्वामित्र को गाधिनराज लिखकर जो परिचय मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र का दिया गया है, वह विशेष रूपसे विवेच्य है।

विश्वामित्र को लेकर इस कथाभाग पर नाना सन्देह किये गये हैं। बहुत से विद्वानों ने यह भी अनुभव किया कि यह विषय अधूरा क्यों रह गया? क्योंकि पुराणों के सम्मिश्रित कथाभाग को समीक्षात्मक दृष्टिकोण से अपनाये बिना ही उक्त विद्वानों ने उक्त प्रकरण पर सन्तोष कर लिया है।

खाण्डलविप्र जाति का प्रधान पुरुष एक क्षत्रिय उस दशा में कदापि नहीं हो सकता जब कि समाज में जातीयता रूढ रूप धारण कर चुकी थी और "गुणकर्मविभागशः" का वर्ण सम्बन्धी आधार उठकर जन्मजात जातीयता का उदय हो गया था। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि उपनिषद् काल के पूर्व तक भारत की समस्त ब्राह्मण जाति एक ही सूत्र में सगठित थी। उपनिषद् काल के बाद ही उसमें वर्गीकरण हुआ। वे वर्ग ही विभिन्न नामों से विख्यात होकर जातियों के रूप में प्रकट हुए। इस परम्परा को रूढ रूप मिल जाने के बाद गाधिनन्दन विश्वामित्र और खाण्डल विप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में पिता पुत्र का सम्बन्ध होना असम्भव है।

पुरातत्त्व-वृत्त

जातियों के देश भारत में निर्मित राष्ट्रीय साहित्य जितना अधिक सर्वाङ्गपूर्ण है उतना अन्य देशों में नहीं मिलता। भारतीयों का इतिहास लेखन अपूर्व है। भारत के पुराणोपपुराणों में इतिहास का जो स्वरूप उपलब्ध है, वह अभूतपूर्व है। उसमें प्रारंभिक तथ्यों की गवेषणा के लिये सक्षम प्रयत्न किया गया है। अभी भारतीय और विशेषकर आर्य हिन्दू

इतिहास लेखक ही ऐसे हैं जो अपने इतिहास का प्रारंभ सृष्टि के आदि काल से कर सके हैं। अन्य लोग अभी तक इतनी गहराई तक नहीं पहुँच पाये हैं। इतिहास लेखन की यह एक शैली है, जिसे आज के पाश्चात्य विद्वान् भी महत्व देने लगे हैं।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है—भारत जातियों का देश है। इस जाति प्रधान देश में जिन जातियों द्वारा राष्ट्र की अभूतपूर्व सेवायें हुईं, और नाना जातियों में उत्पन्न महापुरुषों ने समय समय पर समाज और राष्ट्र का गौरव बढ़ाया; उनका सर्वाङ्गीण परिचय आर्य साहित्य में उपलब्ध है। सामयिक दीर्घता और परिवर्तन प्रत्यावर्तनों के कारण अतीत ऐतिहासिक गौरव के विषय में जो भ्रामक विचार बढ़ रहे थे उनका निराकरण करने के लिये लगभग आधी शताब्दी से जातियों के इतिहास लिखे जा रहे हैं। सभी जातियों ने अपने अपने इतिहासों के आधार स्तम्भों की गवेषणा कर उन्हें जनसाधारण के सामने रक्खा है। समाज की अंगभूत जातियों के इतिहासों से समाज को भी प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली। इसी सामाजिक सेवा और राष्ट्र हित को ध्यान में रखकर खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जातीय इतिहास लेखन की दिशा में कदम उठाया गया है।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति राजस्थान की ब्राह्मण जातियों में प्रमुख है। इस जाति के अतीत इतिहास से यह सिद्ध हो चुका है कि इस जाति ने राजस्थान (भूतपूर्व मरुकान्तार) को ऋषि काल से ही अपनी निवास भूमि बना रक्खा है। द्वापर के अन्त में जब कि ऋषियों की परम्परा परिवर्तित होकर सामाजिक जीवन में लय हो रही थी, खाण्डल विप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक ऋषि राजस्थान के मध्य में स्थित लोहार्गल तीर्थ में तपश्चर्या कर रहे थे। भविष्यत् में उनकी सन्तानें लोहार्गल के आस पास में बस गईं और नागरिक जीवन में घुल मिलकर उन्नति की ओर अग्रसर हुईं। इस विषय पर सर्वाङ्गीण रूप से प्रकाश

डालकर ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन करने वाले ग्रन्थों का परिचय दे देना उपयुक्त है, जिससे पाठक इतिहास परम्परा को सुविधा पूर्वक समझ सकेंगे।

वैसे तो खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के इतिहास की सामग्री प्राय सभी वेद, पुराण और इतिहासों में बिखरी हुई मिलेगी, किन्तु खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के इतिहास का आधार भूत ग्रन्थ स्कन्द पुराण है। वर्तमान में स्कन्द पुराण का जो मुद्रित संस्करण उपलब्ध है, उसमें बहुत कुछ न्यूनाधिक्य होने के कारण इस महापुराण का बहुत-सा अंश अमुद्रित रह गया है। यद्यपि इस पुराण के सम्पादक ने बहुत छानबीन की है, फिर भी इस ग्रन्थ का पूरक साहित्य छूट ही गया।

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की वंशावली के नाम से प्रसिद्ध अंश श्री वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा मुद्रित संस्करण में नहीं आया है और इसी कारण कतिपय महानुभावों का मन्तव्य है कि "खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उपलब्ध वंशावली (उत्पत्ति पुस्तक) प्रकाशित स्कन्द पुराण में नहीं है और इसी कारण यह अप्रामाणिक है।"

इस विषय में यह लिखना अनुचित न होगा कि स्कन्द पुराण एक ऐसा ग्रन्थ है जो मुद्रित होने पर भी अपूर्ण है, क्योंकि ग्रन्थ का संग्रह अत्यधिक बिखरा है और मुद्रण काल तक उसके सर्वाङ्गीण संग्रह का संकलन नहीं हो पाया था। केवल अन्य ग्रन्थों में उसकी श्लोक संख्या और प्राप्त पुस्तक के आधार पर ही उसका सम्पादन हुआ था, अत उसे सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता और स्कन्द पुराण के पूरक साहित्य के अन्य अप्रकाशित ग्रन्थों को अप्रामाणिक भी नहीं कहा जा सकता।

एक खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की वंशावली (उत्पत्ति पुस्तक) ही नहीं अपितु अन्य सैकड़ों पुस्तकें जो स्कन्द पुराण का ही अंश हैं—मुद्रित संस्करण में नहीं छप सकी हैं। सत्यनारायण व्रत कथा, शाक-

म्भरी महात्म्य, रामेश्वर महात्म्य, अगस्त्य संहिता और ईशान संहिता आदि अनेक पुस्तकें ऐसी हैं जो स्कन्द पुराण का अंश हैं। इन सब पुस्तकों के अन्त में भी खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की वंशावली (उत्पत्ति पुस्तक) के समान ही "इति श्री स्कन्द पुराणे रेवा खण्डे" लिखा हुआ है। वे पुस्तकें भी प्रकाशित स्कन्द पुराण में नहीं हैं। उपर्युक्त प्रचलित पुस्तकों के समान ही खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उपलब्ध वंशावली (उत्पत्ति पुस्तक) अप्रामाणिक नहीं कही जा सकती। वस्तुत. यह उत्पत्ति पुस्तक भी स्कन्द पुराण का ही एक अंश है।

स्कन्द पुराण महापुराणों में सबसे बड़ा है। इसमें भी अन्य पुराणों के समान ही पूर्ण ऐतिहासिक तथ्य विद्यमान हैं। स्कन्द पुराण के अन्तर्गत सैंकड़ों महात्म्य वर्णित हैं। नारदीय पुराण की अनुक्रमणिका बनने के बाद भी उसमें अनेक अंश जोड़े गये हैं। स्कन्द पुराण के साथ एक स्कन्द पुराण नामक उपपुराण का भी उल्लेख मिलता है, जो आज दुष्प्राप्य है। स्कन्द पुराण नामक उपपुराण नेपाली भाषा में अवश्य मिलता है जो रक्सोल निवासी श्री राधेश्यामजी अग्रवाल के पास था। लेखक खुद नेपाली भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उपपुराण को आद्यन्त पढ़ने में असमर्थ रहा। फिर भी श्री राधेश्यामजी अग्रवाल द्वारा उसकी विषय सूची का अनुवाद अवश्य करवा लिया था। स्कन्द पुराण नामक उपपुराण की यह सूची नारदीय पुराणान्तर्गत श्लोकानुबद्ध अनुक्रमणिका से मेल खाती है। यद्यपि कुछ अंश उलट पलट अवश्य हैं किन्तु नारदीय पुराण की श्लोकानुबद्ध अनुक्रमणिका में जो श्लोक हैं वे ही श्लोक स्कन्द पुराण नामक उपपुराण की विषय सूची में उपलब्ध हुए हैं। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्द के द्वादशाध्याय में भागवत का विषयानुक्रम वर्णित है उसी प्रकार स्कान्द उपपुराण के अन्त में स्कान्द महापुराण का विषयानुक्रम वर्णित है। यह सूची लम्बी होने पर भी यहां ग्राह्य है। अतः उद्धृत की जाती है :—

पुराणे शतकोटौ तु यच्चैवं वर्णितं मया ।
लक्षितस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्तितः ॥ १ ॥
स्कान्दाह्वयस्तत्रखण्डा सप्तैव परिकल्पिता ।
एकाशीति सहस्रं तु स्कान्दं सर्वाघ छन्तनम् ॥ २ ॥
यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिव स्मृतः ।
यत्र माहेश्वराधर्मा षण्मुखेन प्रकाशिता ॥ ३ ॥
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ता सर्वसिद्धि विधायका ।
तस्य 'माहेश्वरस्याद्य खण्ड पापप्रणाशनः ॥ ४ ॥
किञ्चिन्न्यूनार्क साहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः ।
सुचरित्रशतैर्युक्त स्कान्दमहात्म्यसूचकः ॥ ५ ॥
यत्र केदारमहात्म्ये पुराणोपक्रमं पुरा ।
दक्षयज्ञकथा पश्चात् शिवलिंगार्चने फलम् ॥ ६ ॥
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं महत् ।
पार्वत्या समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम् ॥ ७ ॥
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसंगरः ।
ततः पाशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमन्वितम् ॥ ८ ॥
द्यूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः ।
ततः कुमारमहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम् ॥ ९ ॥
धर्मवर्मनृपाख्यानं महीसागरकीर्तनम् ।
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजंघकथान्विता ॥ १० ॥
प्रादुर्भावस्ततो मह्या कथा दमनकस्य च ।
महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः ॥ ११ ॥
ततस्तारकयुद्धं च नानाख्यानसमन्वितम् ।
वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिंगनिवेशनम् ॥ १२ ॥
द्वीपाख्यानं ततः पुण्यमूर्ध्वलोकव्यवस्थितिः ।

ब्रह्माण्डस्थितिमानं च कर्केशकथानकम् ॥ १३ ॥
महाकालसमुद्भूतिः कथा चास्य महाद्भुता ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम् ॥ १४ ॥
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्तितम् ।
पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्याप्रसाधनम् ॥ १५ ॥
तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् ।
अरुणाचलमाहात्म्यं सनकब्रह्मसंकथा ॥ १६ ॥
गौरीतपः समाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम् ।
महिषासुरमाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ॥ १७ ॥
द्रोणाचले शिवास्थानं नित्यदापरिकीर्तितम् ।
इत्येष कथितःस्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुतः ॥ १८ ॥
द्वितीयो वैष्णवो खण्डःयस्याख्यानानि वै क्रमात् ।
प्रथमं भूमिवाराहसमाख्यानं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥
यत्र वेंकटकूटस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥ २० ॥
कुलालाख्यानकं चात्र सुवर्णमुखरीकथा ।
नानाख्यानसमायुक्ता भरद्वाजकथाद्भुता ॥ २१ ॥
मतंगाञ्जनसंवादः कीर्तितः पापनाशनः ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कले ततः ॥ २२ ॥
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ।
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं विद्यापतिकथा ततः ॥ २३ ॥
जैमिनेःसमुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव ।
नीलकंठसमाख्यानं नरसिंहोपवर्णनम् ॥ २४ ॥
अश्वमेधकथा राज्ञां ब्रह्मलोकगतिस्तदा ।
रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्थानविधिस्तथा ॥ २५ ॥

दक्षिणामूर्त्युपाख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः ।
रक्षारक्षाविधानं च शयनोत्सव कीर्तितम् ॥ २६ ॥
श्वेतोपाख्यानमप्रोक्तं पृथूत्सवनिरूपणम् ।
दोलोत्सवो भगवतो व्रतं सम्वत्सराधिकम् ॥ २७ ॥
पूजा चान्त्रामिका विष्णोरुद्दालकनियोगतः ।
योगसाधनमप्रोक्तं नानायोगनिरूपणम् ॥ २८ ॥
दशावतारकथनं स्नानादि परिकीर्तितम् ।
ततो बदरीकायाश्च महात्म्य पापनाशनम् ॥ २९ ॥
अग्न्यादितीर्थमहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम् ।
कारणं भगवद्वासे तीर्थं कापालमोचनम् ॥ ३० ॥
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा ।
ततः कार्तिकमाहात्म्ये महात्म्यं मदनालसम् ॥ ३१ ॥
धूम्रकेशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके ।
पञ्चभीष्मव्रताख्यानं कीर्तितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३२ ॥
ततो मार्गस्य महात्म्ये विधानं स्नानजं तथा ।
पुण्ड्रादि कीर्तनं चात्र मालाधारणपुण्यकम् ॥ ३३ ॥
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम् ।
नाना पुष्पार्चनफलं तुलसीदलजं फलम् ॥ ३४ ॥
नैवेद्यस्य च महात्म्यं हरिवासर कीर्तनम् ।
अखण्डैकादशी पुण्यं तथा जागरणस्य च ॥ ३५ ॥
यात्रोत्सवविधानं च नाममहात्म्यकीर्तनम् ।
ध्यानादिपुण्यकथनं महात्म्य मथुराभवम् ॥ ३६ ॥
मथुरातीर्थ महात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम् ।
वनाना द्वादशाना च महात्म्यं कीर्तितं ततः ॥ ३७ ॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र महात्म्यं कीर्तितं परम् ।

वज्रशार्दूलयोः संवादो ह्यन्तर्लीलाप्रकाशनम् ॥ ३८ ॥
ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् ।
नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्यायैर्निरूपितम् ॥ ३९ ॥
ततो वैशाख महात्म्ये शय्यादानादिजं फलम् ।
जलदानादिविधयः कामाख्यानमतः परम् ॥ ४० ॥
श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम् ।
तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम् ॥ ४१ ॥
ततस्त्वयोध्यामहात्म्ये चक्रब्रह्मादतीर्थके ।
ऋणपापविमोचाख्ये तथाधारसहस्रकम् ॥ ४२ ॥
स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिधर्महर्युपवर्णनम् ।
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदासरयूयुति ॥ ४३ ॥
सीताकुण्डं गुप्तहरिः सरयूघर्घरान्वयः ।
गोप्रतारं च दुग्धोदं गुरुकुण्डादि पञ्चकम् ॥ ४४ ॥
सोमार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदश ततः परम् ।
गयाकूपस्यमहात्म्यं सर्वोघविनिवर्तकम् ॥ ४५ ॥
माण्डव्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ।
अजितादिमानसादि तीर्थानि गदितानि च ॥ ४६ ॥
इत्येष वैष्णवखण्डो द्वितीय परिकीर्त्तितः ।
अतः परं ब्राह्मखण्डो मरीचे शृणु पुत्रक ॥ ४७ ॥
यत्र वै सेतुमहात्म्ये फलं स्नानेक्षणोद्भवम् ।
गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं ततः ॥ ४८ ॥
चक्रतीर्थादिमहात्म्यं देवीपत्तनसंयुतम् ।
वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्तनम् ॥ ४९ ॥
मंगलादिकमहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम् ।
हनुमत्कुण्डमहिमाऽगस्त्यतीर्थभवं फलम् ॥ ५० ॥

रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ।
शङ्खादितीर्थमहिमा तथा साध्यामृतादिजः ॥ ४१ ॥
धनुष्कोट्यादिमहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा ।
गायत्र्यादिकतीर्थानां महात्म्यं चात्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥
रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् ।
यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४३ ॥
धर्मारण्यस्य महात्म्यं तत्र परमुदीरितम् ।
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान् यत्र तत्त्वमुपादिशत् ॥ ४४ ॥
धर्मारण्यसुसम्भूतिस्तत्पुण्यपरिकीर्तनम् ।
कर्मसिद्धेः समाख्यानमृषिवंशनिरूपणम् ॥ ४५ ॥
अप्सरस्तीर्थमुख्यानां महात्म्यं यत्र कीर्तितम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मतत्त्वनिरूपणम् ॥ ४६ ॥
देवस्थानविभागश्च बकुलार्ककथा शुभा ।
छत्रानन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतंगिनी ॥ ४७ ॥
पुण्यदा च समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिता ।
इन्द्रेश्वरादिमहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम् ॥ ४८ ॥
लोहासुरसमाख्यानं गंगाकूपनिरूपणम् ।
श्रीरामचरितं चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ॥ ४९ ॥
जीर्णोद्धारस्य कथनं शासनप्रतिपादनम् ।
जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम् ॥ ६० ॥
ततस्तु वैष्णवा धर्मा नानाख्यानैरुदीरिताः ।
चातुर्मास्ये तत्र पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ॥ ६१ ॥
दानप्रशंसा तत्पश्चात् व्रतस्य महिमा ततः ।
तपसश्चैव पूजाया सच्छिद्रकथनं ततः ॥ ६२ ॥
प्रकृतीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् ।

तारकस्य वधोपायो वृक्षार्चा महिमा तथा ॥ ६३ ॥
विष्णोः शापश्च वृक्षत्वं पार्वत्यनुनयस्तनः ।
हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम् ॥ ६४ ॥
हरस्य लिंगकथनं कथा पैजवनस्य च ।
पार्वतीजन्मचरिते तारकस्य वधोद्भुतः ॥ ६५ ॥
प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितं पुनः ।
दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षरभूषणम् ॥ ६६ ॥
ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशाक्षरः ।
श्रवणादिक महात्म्यं कीर्तितं शर्मदं नृणाम् ॥ ६७ ॥
ततो ब्राह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुता ।
पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥ ६८ ॥
शिवरात्रेश्च महात्म्यं प्रदोषव्रतकीर्तनम् ।
सोमवारव्रतं चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥ ६९ ॥
भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम् ।
शिववर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम् ॥ ७० ॥
भद्रायुर्महिमा चापि भस्ममहात्म्यकीर्तनम् ।
शवराख्यानकं चैवाथोमामाहेश्वरं व्रतम् ॥ ७१ ॥
रुद्राक्षस्य च महात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यदम् ।
श्रवणादिक पुण्यं च ब्राह्मखण्डोयमीरितः ॥ ७२ ॥
अतः परं चतुर्थं तु काशीखण्डमनुत्तमम् ।
विन्ध्यनारदयोर्यत्र सन्वादः परिकीर्तितः ॥ ७३ ॥
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यवासे सुरागमः ।
पतिव्रताचरित्रं च तीर्थयात्रा प्रशंसनम् ॥ ७४ ॥
ततश्च सप्तपुर्याख्याः संयमिन्याः निरूपणम् ।
ध्रुवस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्ति शिवशर्मणः ॥ ७५ ॥

अग्ने समुद्भवश्चैव क्रव्यादरुणसंभव ।
गन्धवत्यलकापुर्योरीश्वर्याश्च समुद्भव ॥ ७६ ॥
चन्द्रार्कबुधलोकाना कुजेज्यार्कगुरा क्रमात् ।
सम विष्णोध्रु वस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥ ७७ ॥
ध्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम् ।
स्कन्दागस्त्यसमालापो मणिकर्णीसमुद्भव ॥ ७८ ॥
प्रभावश्चापि गंगाया गगानामसहस्रकम् ।
वाराणसी प्रशसा च भैरवाविर्भवस्तत ॥ ७६ ॥
दण्डपाणिज्ञानवाप्योरुद्भवमनन्तरम् ।
तत कलावत्याख्यान सदाचारनिरूपणम् ॥ ८० ॥
ब्रह्मचारीसमाख्यान तत स्त्रीलक्षणानि च ।
कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेश वर्णनम् ॥ ८१ ॥
गृहस्थयोगिनो धर्मो कालज्ञान तत परम् ।
दिवोदासकथा पुण्या काशिवर्णनं तत ॥ ८२ ॥
मायागणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्तत ।
विष्णुमायाप्रपचोऽथ दिवोदास विमोक्षणम् ॥ ८३ ॥
तत पचनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधवसंभव ।
ततो वैष्णवतीर्थाख्या शूलिन काशिकागम ॥ ८४ ॥
जैगिषव्येण सम्वादो ज्येष्ठे शाख्या महेशितु ।
क्षेत्राख्यान कन्दुकेशो व्याघ्रेश्वरसमुद्भव ॥ ८५ ॥
शैलेशरत्नेश्वरयो कृत्तिवासस्य चोद्भव ।
देवतानामधिष्ठान दुर्गासुरपराक्रम ॥ ८६ ॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ओंकारेशस्य वर्णनम् ।
पुनरोंकारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भव ॥ ८७ ॥
केदाराख्या च धर्मेशकथा विष्णुभुजोद्भवा ।

वीरेश्वरससाख्यानं गंगामहात्म्यकीर्तनम् ॥ ८८ ॥
विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा ।
सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तम्भः पराशरे ॥ ८९ ॥
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसंकथा ।
विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ॥ ९० ॥
अतः परं त्ववन्त्याख्यं शृणु खण्डं च पञ्चमम् ।
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ॥ ९१ ॥
प्रायश्चितविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः ।
देवदीक्षाशिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम् ॥ ९२ ॥
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः ।
तीर्थे कनखले तस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९३ ॥
कुण्डमप्सरसंज्ञं च सरो रुद्रस्य पुण्यदम् ।
कुडवेशं च विद्याध्रं मर्कटेश्वर तीर्थकम् ॥ ९४ ॥
स्वर्गद्वारं चतुःसिन्धुस्तीर्थं शंकरवापिका ।
शर्करार्कं गन्धवती तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥ ९५ ॥
दशाश्वमेधिकानंशा तीर्थं शङ्करसिद्धिदम् ।
पिशाचकादि यात्रा च हनुमत्केश्वरं सरः ॥ ९६ ॥
महाकालेश यात्रा च वाल्मीकेश्वरतीर्थकम् ।
शुक्रेश्वरादि महात्म्यं कुशस्थल्या प्रदक्षिणा ॥ ९७ ॥
अक्रूर संज्ञकं त्वेकपादं चन्द्रार्कवैभवम् ।
करभेशाख्यतीर्थं च लकुटेशादितीर्थकम् ॥ ९८ ॥
मार्कण्डेशं यज्ञवापी सोमेशं नरकान्तकम् ।
केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम् ॥ ९९ ॥
केशवार्कं शक्तिभेदं स्वर्णसारमुखानि च ।
ओंकारेशादि तीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्तनम् ॥१००॥

कालारण्ये लिंगसंख्या स्वर्णशृ गाभिधानकम् ।
कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् ॥१०१॥
पद्मावतीकुमुद्वत्यमरावतिकनामकम् ।
विशालाप्रतिकल्याभिधानं च, ज्वरशान्तिकम् ॥१०२॥
शिवनामादिकफलं नागोद्गीता शिवस्तुतिः ।
हिरण्याक्षवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥१०३॥
नीलगंगा पुष्कराख्यं विन्ध्यवासनतीर्थकम् ।
पुरुषोत्तमाभिधानं तु तत्तीर्थं चाघनाशनम् ॥१०४॥
गोमती वामनं कुण्डं विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थकम् ॥१०५॥
महिमा नागपञ्चम्या नृसिंहस्य जयन्तिका ।
कुटुम्बेश्वर यात्रा च देवसाधनकीर्तनम् ॥१०६॥
कर्कराज्याख्यतीर्थं च विघ्नेशादि सुरोहनम् ।
रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥१०७॥
महेन्द्राचलमहात्म्ये नानाख्याननिरूपणम् ।
सर्वैतानि च मुख्यानि वृत्तानि गदितानि च ॥१०८॥
वसिष्ठविश्वामित्रस्य वैरं चात्र निरूपितम् ।
हरिश्चन्द्रसमाख्यानं शुनःशेपकथानकम् ॥१०९॥
लोहार्गलस्य महात्म्यं, यासदन्यकथा शुभा ।
षष्ठे परशुरामस्य खण्डलोत्पत्तिसंकथा ॥११०॥
वर्णिता च ततः सत्यनारायणव्रतस्य।
यात्राऽष्टतीर्थजा पुण्या रेवामहात्म्यमुच्यते ॥१११॥
धर्मपुत्रस्य वैराग्यान्मार्कण्डेयेन संगमः ।
भ्रमीयानुभवाख्यानं भूभृतापरिकीर्तनम् ॥११२॥
कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्मदायाः प्रकीर्तितम् ।

लवसापं नार्मदं च कालरात्रिकथा ततः ॥११३॥
महादेवस्तुतिः पश्चात् पृथक्कल्पकथाद्भुता ।
विशल्याख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा ॥११४॥
गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनं तथा ।
देहपातविधानं च कावेरीसंगमस्तथा ॥११५॥
दारुतीर्थं ब्रह्मावर्तं यज्ञेश्वरकथानकम् ।
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादादि दारुकम् ॥११६॥
देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्यं करञ्जकम् ।
कुण्डलेशं पिप्पलादं विमलेशं च शूलभित् ॥११७॥
शचीहरणमाख्यानमन्धकस्य वधस्तथा ।
शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्माः पृथग्विधाः ॥११८॥
आख्यानं दीर्घतपसः ऋष्यशृंगकथा ततः ।
चित्रसेनकथापुण्या काशीराजस्य लक्षणम् ॥११९॥
ततो देवशिलाख्यानं शबरीतीर्थकान्वितम् ।
व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ॥१२०॥
आदित्येश्वरतीर्थं च शक्रतीर्थं करोटिकम् ।
कुमारेशमगस्त्येशमानन्देशं च मातृजम् ॥१२१॥
लोकेशं धनदेशं च मंगलेशं च कामजम् ।
नागेशं चापि गोपारं गौतमं शंखचूडकम् ॥१२२॥
नारदेशं नन्दिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम् ।
दधिस्कान्दादि तीर्थानि हनुमन्तेश्वरं ततः ॥१२३॥
रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशं पिंगलेश्वरम् ।
ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम् ॥१२४॥
चण्डार्कयमतीर्थं च कल्होडीशं चनादिकम् ।
नारायणं च कोटीशं व्यासतीर्थं प्रभासकम् ॥१२५॥

नागेशं संकर्षणकं प्रश्नयेश्वरतीर्थकम्।
परण्डीसगमं पुण्यं सुवर्णशिलतीर्थकम्॥१२६॥
परंज कामदं तीर्थं भाण्डीरो रोहिणीभवम्।
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमागीरसाह्वयम्॥१२७॥
कोटीतीर्थमयोन्याख्यमंगाराख्यं त्रिलोचनम्।
इन्द्रेशं कन्मुकेशं च सोमेशं कोहनाशकम्॥१२८॥
नार्मदं चार्कमाग्नेयं भार्गवेश्वरमुत्तमम्।
ब्राह्मं दैवं च मार्गेशमादिवाराहकेश्वरम्॥१२९॥
रामेशमथ सिद्धेशमाहिल्यं कण्टकेश्वरम्।
शक्रं सौम्यं च नादेशं तोयेशं रुक्मणीभवम्॥१३०॥
योजनेशं वराहेशं द्वादशीशिवतीर्थकम्।
सिद्धेशं मंगलेशं च लिंगवाराहतीर्थकम्॥१३१॥
कुण्डेशं श्वेतवाराहं गर्भावेशं रवीश्वरम्।
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुङ्कारस्वामितीर्थकम्॥१३२॥
सगमेशं नारकेशं मोक्षणं पञ्चगोपकम्।
नागराय च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके॥१३३॥
कोमादशूलारोपाख्यं माण्डव्यं गोपकेश्वरम्।
कपिलेशं पिंगलेशं भूतेशं गांगगोत्तमे॥१३४॥
अश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशं च पापनुत्।
कल्कलेशं च जालेशं शालग्रामवराहकम्॥१३५॥
चन्द्रहास्यं तथादित्यं श्रीपत्याख्यं च हंसकम्।
मूलस्थानं च शूलेशमाश्विनं चित्रदैवकम्॥१३६॥
शिखीशं कोटीतीर्थं च तीर्थं पैतामहं परम्।
तथैव पुष्करीतीर्थं दशकन्यं सुवर्णकम्॥१३७॥
ऋणमोचं भारभूतिं पुंखिता मुण्डिडिण्डिकम्।

आसलेशं कपालेशं शृंगेरण्डीभवं ततः ॥१३८॥
कोटीतीर्थं लोटणेशं फलस्तुरि ततः परम् ।
कृमिजांगलमहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः ॥१३९॥
धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोऽस्य च ।
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात् ततश्चित्रवहोद्भवः ॥१४०॥
सद्देमाख्या ततश्चण्डी सप्रभावो रतीश्वरः ।
केदारेशो लक्षतीर्थं ततो विष्णुपदीभवम् ॥१४१॥
मुखारं च्यवनाख्यस्यं ब्रह्मणश्च सरस्ततः ।
चक्राख्यं ललिताख्यानं तीर्थं च बहुगोमयम् ॥१४२॥
रुद्रावर्तं च मार्कण्डं तीर्थं पापप्रणाशनम् ।
श्रवणेशं शुद्धपुटं देवान्धप्रेततीर्थकम् ॥१४३॥
जिव्होदतीर्थसंभूतिः शिवोद्भेदं फलस्तुतिः ।
एषः खण्डो ह्यावन्त्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः ॥१४४॥
अतः परं नागराख्यः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते ।
लिंगोत्पत्ति समाख्यानं हरिश्चन्द्रकथाशुभा ॥१४५॥
विश्वामित्रस्य महात्म्यं त्रिशंकुस्वर्गतिस्तथा ।
हाटकेश्वरमहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा ॥१४६॥
नागबिलं शंखतीर्थमचलेश्वरवर्णनम् ।
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् ॥१४७॥
गयशीर्षं बालशाख्यं बालमण्डं मृगाह्वयम् ।
विष्णुपादं च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः ॥१४८॥
सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तार्षेयमगस्त्यकम् ।
भ्रूणगर्तं नलेशं च भैष्मं वैदुरसर्ककम् ॥१४९॥
शार्मिष्ठं सोमनाथं च दौर्गमानर्तकेश्वरम् ।
जमदग्नेर्वधाख्यानं निःक्षत्रियकथानकम् ॥१५०॥

रामह्रद नागपुरं षष्ठ लिंगे चैव यज्ञभू ।
मुण्डीरादित्रिनार्कं च सतीपरिणयाह्वयम् ॥१५१॥
रुद्रशीर्षं च यागेशं वालखिल्य च गारुडम् ।
लक्ष्मीशाप सप्तविंश सोमप्रासादमेव च ॥१५२॥
अम्बावृद्ध पाण्डुराख्यमाग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ।
गोमुखा लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ॥१५३॥
शानैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वर ।
कुशेशाख्यं लवेशाख्य लिंगं सर्वोत्तमोत्तम ॥१५४॥
अष्टषष्ठिसमाख्यान दमयन्त्याख्रिजातकम् ।
ततोम्बारेवतीवापी भक्तिकातीर्थसम्भव ॥१५५॥
क्षेमकरी च केदार शुक्लतीर्थं मुखारकम् ।
सत्यसन्धेश्वराख्यान तथा कर्णोत्पलाकथा ॥१५६॥
अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्यं गाणेशमेव च ।
ततो वास्तुपदाख्यानं आगृहकथानकम् ॥१५७॥
सौभाग्यान्धश्च शूलेशं धर्मराजकथानकम् ।
मिष्टान्नस्येश्वराख्यानं गाणपत्यत्रयं तत ॥१५८॥
जाबालिचरित चैव मकरेशाकथा तत ।
कालेश्वर्यन्धकाख्यान कुण्डमाप्सरसं तथा ॥१५९॥
पुष्पादित्य रोहिताश्व नागरोत्पत्तिकीर्तनम् ।
भार्गवं चरितं चैव वैश्वामित्रं तत परम् ॥१६०॥
सारस्वतं पैप्पलाद कंसारीश च पिण्डकम् ।
ब्रह्मणो यज्ञचरितं साविष्याख्यानसंयुतम् ॥१६१॥
रैवतं भर्तृयात्राख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ।
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रत्रयम् ॥१६२॥
पौष्करं नैमिषं धार्मारण्यत्रितयं स्मृतम् ।

वाराणसीद्वारकाख्या मन्वाख्येति पुरीत्रयम् ॥१६३॥
वृन्दावनं खाण्डवाख्यं द्वैताख्यं च वनत्रयम् ।
कल्पः शालस्तथा नन्दिग्रामत्रयमनुत्तमम् ॥१६४॥
असिशुक्लपितृसंज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ।
अर्बुदौ रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ॥१६५॥
नदीनां त्रितयं गंगा नर्मदा च सरस्वती ।
सार्धकोटित्रयफलमेकं चैषु प्रकीर्तितम् ॥१६६॥
कपिकाशंखतीर्थं चामरकं वालमण्डनम् ।
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् ॥१६७॥
श्राद्धादित्यं श्राद्धकल्पं यौधिष्ठिरमथान्धकम् ।
जलशायिचतुर्मासमशून्यशयनव्रतम् ॥१६८॥
मङ्कणेशं शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ।
पृथ्वीदानं वानकेशं कपालमोचनेश्वरम् ॥१६९॥
पापपिण्डं मासलिंगं युगमानादिकीर्तनम् ।
निम्बेशं शाकम्भर्याख्यः रुद्रैकादश कीर्तनम् ॥१७०॥
दानमहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्तनम् ।
इत्येष नागरखण्डः प्राभासाख्योऽधुनोच्यते ॥१७१॥
सोमेशो यत्रविश्वेशोऽर्कस्थलं पुण्यदं महत् ।
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम् ॥१७२॥
अग्नितीर्थं कपर्दीशं केदारेशं गतिप्रदम् ।
भीमभैरवचण्डीशभास्कराङ्गारकेश्वराः ॥१७३॥
बुधेज्यभृगुसौरागुशिखीशाः हरविग्रहाः ।
सिद्धेश्वराद्याः पञ्चान्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ॥१७४॥
वरारोहो ह्यजाफला मंगलाललितेश्वरी ।
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चोर्वीशः कामेश्वरस्तथा ॥१७५॥

गौरीशानरुणेशाख्यं दुर्वासेश गणेश्वरम् ।
कुमारेशं चण्डकल्प लकुलीश्वरसञ्ज्ञकम् ॥१७६॥
तत प्रोक्तऽयकोटीशावालब्रह्माङि सत्कथा ।
नरवेशासम्वर्तेशनिधीश्वरकथा ततः ॥१७७॥
बलभद्रेश्वरस्याथ गंगाया गणपस्य च ।
जाम्बवत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ॥१७८॥
शतमेघलक्षमेघकोटिमेघकथा तथा ।
दुर्वासार्कघटस्थानहिरण्या संगमोत्कथा ॥१७९॥
नगरार्कस्य कृष्णस्य संकर्षणसमुद्रयो ।
कुमार्याः क्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ॥१८०॥
पिंगलासगमेशस्य शंकरार्कघटेशयो ।
ऋषिपतीर्थस्य मन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम् ॥१८१॥
शशापानस्यपर्णार्कन्यकुमत्यो कथाऽद्भुता ।
वाराहस्वामिवृतान्तं छायालिगाख्यगुल्फयो ॥१८२॥
कथा घनकनन्दाया कुन्तीगंगेशयोस्तथा ।
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः ॥१८३॥
मङ्कणेशत्रैपुरेश षण्डतीर्थकथा तथा ।
सूर्यप्राचीत्रिनयनयोरुमानाथकथा तथा ॥१८४॥
भूद्वारशूलस्थलयोः च्यवनार्केशयोस्तथा ।
अजपालेशबालार्कधुवेरस्थलजा कथा ॥१८५॥
ऋषितोयाकथा पुण्या संगालेश्वरकीर्तनम् ।
नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम् ॥१८६॥
तप्तकुण्डस्य महात्म्यं मूलचण्डीशवर्णनम् ।
चतुर्वक्त्रगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोस्तथा ॥१८७॥
गोपालस्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुतो कथा ।

क्षेमार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः ॥१८८॥
कालमेघस्य रुक्मिण्याः दुर्वासेश्वरभद्रयोः ।
शंखावर्तमोचनतीर्थगोष्पदाच्युतसद्मनाम् ॥१८६॥
जालेश्वरस्य हुंकारेश्वरचण्डीशयोः कथा ।
आशापुरस्यविघ्नेशकलाकुण्डकथाद्भुता ॥१६०॥
कपिलेशस्य च कथा जरद्गवशिवस्य च ।
नलकर्कोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजाकथा ॥१६१॥
नारदेशयंत्रभूपादुर्गेकूटगणेशजा ।
सुपर्णेलाख्यभैरव्योर्मल्लतीर्थभवाकथा ॥१६२॥
कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ।
वहुस्वर्णेशश्रृंगेशकोटीश्वरकथा ततः ॥१६३॥
मार्कण्डेश्वरकोटीशदामोदरगृहोत्कथा ।
स्वर्णरेखाब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वरौ तथा ॥१६४॥
मृगीकुण्डं च सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ।
दुर्गाभल्लेशगंगेशरैवतानां कथाऽद्भुता ॥१६५॥
ततोऽर्बुदेश्वरकथा, अचलेश्वरकीर्तनम् ।
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रमवर्णनम् ॥१६६॥
भद्रकर्णस्यमहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम् ।
केदारस्य च महात्म्यं तीर्थागमनकीर्तनम् ॥१६७॥
कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथा ततः ।
सिद्धेशशुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीशकीर्तनम् ॥१६८॥
पंगुतीर्थयमतीर्थवाराहतीर्थवर्णनम् ।
चन्द्रप्रभासपिण्डोदश्रीमालाशुक्लतीर्थजम् ॥१६६॥
कात्यायन्याश्च महात्म्यं ततः पिण्डारकस्य च ।
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः ॥२००॥

कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबन्धजा।
गणेशपार्श्वेश्वरयोर्यात्रायामुज्ज्वलस्य च ॥२०१॥
चण्डीस्थाननागोद्भवशिवकुण्डमहेशजा ।
कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा तत ॥२०२॥
उद्दालकेशसिद्धेशगततीर्थकथा पृथक ।
श्रीदेवमातोत्पत्तिश्च व्यासगौतमतीर्थयो ॥२०३॥
कुलसन्तारमहात्म्यं रामकोट्याह्वतीर्थयो ।
चन्द्रोद्भदेशानशृंग ब्रह्मस्थानोद्भवोद्भुत ॥२०४॥
त्रिपुष्करुद्रह्रदगुहेश्वरकथा शुभा ।
अविमुक्तस्य महात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ॥२०५॥
महौजस प्रभावश्च जम्बुतीर्थस्य वर्णनम्।
गंगाधरमिश्रकयो कथा चाथ फलस्तुति ॥२०६॥
द्वारकायाश्च महात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम्।
जागराद्यर्चनाद्याख्या व्रतमेकादशीभवम् ॥२०७॥
महाद्वादशिकाख्यानं प्रल्हादर्षिसमागम ।
दुर्वासस उपाख्यान यात्रोपक्रमकीर्तनम् ॥२०८॥
गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्या स्नानादिजं फलम्।
चक्रतीर्थस्य महात्म्य गोमत्युदधिसगम ॥२०९॥
सनकादिह्रदाख्यानं नृगतीर्थकथा तत ।
गोप्रचारकथा पुण्या गोपीना द्वारकागमः ॥२१०॥
गोपीसर समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्तनम्।
पञ्चनद्यागमाख्यान नानाख्यानसमन्वितम् ॥२११॥
शिवलिंगगदातीर्थकृष्णपूजादिकीर्तनम् ।
त्रिविक्रमस्यमूर्त्याख्या दुर्वासकृष्णसंकथा ॥२१२॥
कुशदैत्यवधोच्चारविशेषार्चनजं फलम् ।

गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीर्तनम् ॥२१३॥
कृष्णमन्दिरसंप्रेक्षा द्वारवत्यभिषेचनम् ।
तत्र तीर्थावासकथा द्वारकापुण्यकीर्तनम् ॥२१४॥
इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खण्डःप्राभासिको द्विजा ।
स्कान्दस्यान्वयसम्बन्ध पुराणस्य विशेषतः ॥२१५॥

स्कान्द महापुराण की यह अनुक्रमणिका नारदीय पुराण के ८४ वें अध्याय से भी लगभग मिलती जुलती है। स्कन्द पुराण का रेवाखण्ड आवन्त्यखण्ड के अन्तर्गत है। इस सूची में खाण्डलोत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख होने से स्वतः सिद्ध है कि उपलब्ध "खाण्डलविप्र वंशावली" (उत्पत्ति पुस्तक) इसी का अंश है। इसके साथ ही श्री राधेश्यामजी अग्रवाल द्वारा पता चला कि नेपाल में एक और स्कन्द पुराण मिला है जो बहुत बड़ा ग्रन्थ है और जिसकी लिपि अत्यधिक प्राचीन बतलाई जाती है। उस में स्कान्द उपपुराण भी समाविष्ट है। नेपाल में उपलब्ध स्कान्द महापुराण की पुस्तक अत्यधिक प्रामाणिक समझी जाती है।

बंगला विश्वकोषकार ने स्कान्द महापुराण की अनुक्रमणिका की लम्बी सूची दी है, जिसमें अनेक ऐसी पोथियों के नाम हैं जो स्कन्द पुराण के प्रकाशित संस्करण में नहीं हैं। यद्यपि विश्वकोष की विभिन्न प्रतियों में भेद अवश्य है, किन्तु बंगला विश्वकोष की तीन चार प्रतियों को देखकर इस सूची का निर्णय किया गया है। स्कान्द महापुराण की यह अनुक्रमणिका हर प्रकार से प्रामाणिक सिद्ध हो चुकी है। बंगला विश्वकोष के सुयोग्य ज्ञाता सुधाकर घोष ने सन् १९४४ ई० में मिदनापुर से हमें एक सूची भिजवाई थी, जो अपूर्ण थी। उस सूची को देखकर हमने उनको लिखा था कि यह अधूरी प्रतीत होती है। इस पर उन्होंने इसकी छानबीन करवाई और बंगला विश्वकोष के साधिकार विद्वान् श्री गणेश मजमूदार से दूसरी सूची मंगवाई जो हस्त लिखित विश्वकोष से तैयार की गई थी और जिसकी प्रामाणिकता

के लिये पूरे प्रमाण दिये गये थे। इसके बाद पूना में एक सूची श्री जगदेव भारती से प्राप्त हुई थी जिसे उपर्युक्त दोनों सूचियों से मिला लिया गया था।

बंगला विश्वकोष से केवल स्कान्द महापुराण की अनुक्रमणिका की ही प्रामाणिकता सिद्ध नहीं है। उपर्युक्त कोष में सैकड़ों ऐसी पोथियों के नाम हैं जो स्कन्द पुराण के अन्तर्गत हैं और जिनके अन्त में "इति श्री स्कन्द पुराणे रेवा खण्डे" लिखा हुआ है। इस प्रकार की बहुत-सी पोथियों के नाम विश्वकोषकार ने दिये। बंगला विश्वकोष के अनुसार जो पोथिया स्कन्द महापुराण के अन्तर्गत हैं उनके कुछ नाम निम्न लिखित हैं —

सह्याद्रि खण्ड, अर्बुदाचल खण्ड, सनत्कादि खण्ड, काश्मीर खण्ड, कौशल खण्ड, गणेश खण्ड, उत्तर खण्ड, पुष्कर खण्ड, बदरिका खण्ड, भीम खण्ड, भैरव खण्ड, भूमि खण्ड, मलयाचल खण्ड, मानस खण्ड, कालिका खण्ड, श्रीमाल खण्ड, पर्वत खण्ड, सेतु खण्ड, हालास्य खण्ड, हिमवत खण्ड, महाकाल खण्ड, अगस्त्य संहिता, ईशान संहिता, उमा संहिता, महाशिव संहिता, विमल संहिता, प्रह्लाद संहिता, अदु:ख नवमी कथा, अधिक मास महात्म्य, शाकम्भरी महात्म्य, अयोध्या महात्म्य, रामेश्वर महात्म्य, महेन्द्राचल महात्म्य, खण्डलोत्पत्ति कथा, अरुन्धती व्रत कथा, अर्द्धोदय व्रत कथा, सत्यनारायण व्रत कथा, आदि कैलाश, आलमपुरी, आपाढ़, इन्द्रावतार क्षेत्र, इषुपात क्षेत्र, उत्कण्ठ एकादशी, ओंकारेश्वर, कदम्ब वन, कनकाद्रि, कमलालय, कलश क्षेत्र, कात्यायिनी, कान्तेश्वर, कालेश्वर, कुमार क्षेत्र कुरुकापुरी, कृष्णनाम, कैवल्य रत्न, इत्यादि। इनके अतिरिक्त भी अनेक महात्म्य पोथिया हैं जो स्कन्द पुराण से निकली हुई हैं। यदि विश्वकोषकार के अनुसार असंख्य महात्म्य पोथियों के नाम दिये जाँय तो पर्याप्त पृष्ट बढ़ते हैं अत हम केवल थोड़े से नाम देकर ही इस सूची को समाप्त करते हैं।

प्रसंगवश यह लिखना अनुचित न होगा कि खाण्डलविप्र (खण्डेल वाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि और उनके चरित्र के विषय में स्कन्द पुराण के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उनमें ऋग्वेद संहिता, अथर्ववेद संहिता, तैतरीय संहिता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, शौनकीय चरण व्यूह, ऐतरेयारण्यक, शतपथ ब्राह्मण, कौषित की ब्राह्मण, विमल संहिता, लोहार्गल महात्म्य, गलता महात्म्य, महेन्द्राचल महात्म्य, नारदीय महापुराण, वराह पुराण इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई हैं उनकी सूचि अन्यत्र देदी गई है।

जातीय इतिहासों की गवेषणा पिछले पचास साठ वर्षों में बराबर होती रही है। अनेक ख्याति प्राप्त विद्वानों ने इस विषय पर कलम उठाकर इतिहास लेखकों का मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त किया है। कई एक विद्वानों ने जातियों के नामकरण सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डालकर जातियों के नामों की सार्थकता को प्रकट किया है। जातियों के नाम प्रायः जैसा समझा जाता है-निरर्थक नहीं होते, उनमें सार्थकता ऐतिहासिक आधार पर होती है। कभी कभी जातियों के नामकरण में देश काल की घटनायें भी प्रमुख होजाया करती हैं। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के नामकरण में भी देश काल सम्बन्धी घटना प्रमुख है। स्थान विशेष से बहुत-सी जातियों का नामकरण होता है। जैसे—"गोड़े भवाः गौड़ाः" यह स्थान विशेष के कारण पड़ा हुआ नाम है। इसी प्रकार "खण्डं लाति गृह्णातीति खण्डलः" यह घटना विशेष द्वारा प्रचलित नाम है। खण्डल शब्द 'खण्ड पूर्वक ला आदाने' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है "खण्ड को ग्रहण करने वाला" इस खाण्डल शब्द का समर्थन खण्डलोत्पत्ति विषयक पौराणिक कथायें भी इसी अर्थ को लेकर करती हैं। खण्डल से ही खाण्डल भावार्थक प्रत्यय से बना और खण्डल की अपेक्षा भाववाचक खाण्डल ही प्रसिद्ध हुआ।

खाण्डलविप्र जाति के घटना विशेष से प्रसिद्ध खाण्डलविप्र नाम का समर्थन श्रीमद्भागवत, निमल संहिता, देवी भागवत, महाभारत, ऐतरेयारण्यक आदि पौराणिक तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ पूर्ण रूप से करते हैं। खाण्डल विप्र शब्द शास्त्र एवं इतिहास प्रसिद्ध है। इसलिये खाण्डलविप्र शब्द के विषय में प्रमाण पुष्टि के आधार पर सन्देह को कोई स्थान नहीं, इस विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है, किन्तु फिर भी लोक प्रसिद्ध खण्डेलवाल ब्राह्मण शब्द का स्पष्टीकरण वाञ्छनीय है। खण्डेलवाल नाम की दो जातिया है। एक खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति और दूसरी खण्डेलवाल वैश्य जाति। लोक में खाण्डलविप्र जाति को ही खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस विषय में कुछ विद्वान् स्थानविशेष को प्रमाण रूप में रखते हैं। कुछ महानुभाव खाण्डल शब्द का अपभ्रंश खण्डेलवाल बताते हैं।

खण्डेला नामक स्थान विशेष को खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का आदि निवास स्थान मानकर जो धारणा की जा रही है उसमे कुछ तथ्य होने पर भी प्रमाणों का अभाव है। खण्डेला की इतिहास परम्परा में इस घटना का उल्लेख नहीं है, और साथ ही यह भी अनिश्चित है कि संभवत यह तथ्य अज्ञात हो।

खाण्डलविप्र जाति के प्रारंभिक निवास स्थान लोहार्गल तीर्थ के पूर्व में स्थित वर्तमान खण्डेला नामक स्थान विशेष की इतिहास परम्परा में भी इस विषय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। न किसी जनश्रुति का ही आधार प्राप्त होता है। यह हो सकता है कि संभवत उस समय खंडेला नामक कोई स्थान विशेष रहा हो जिसका अस्तित्व समय पाकर मिट गया हो और उसके बाद वर्तमान खण्डेला का निर्माण उसी के नाम पर होगया हो। ऐसी स्थिति में स्थान विशेष के कारण प्रसिद्ध खण्डेलवाल शब्द भी प्रामाणिक है, किन्तु इसका निर्णय अन्तर्गर्भ है। खाण्डल शब्द का अपभ्रंश संभवत

प्रसंगवश यह लिखना अनुचित न होगा कि खाण्डलविप्र (खण्डेल वाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि और उनके चरित्र के विषय में स्कन्द पुराण के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उनमें ऋग्वेद संहिता, अर्थर्ववेद संहिता, तैतरीय संहिता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, शौनकीय चरण व्यूह, ऐतरेयारण्यक, शतपथ ब्राह्मण, कौषित की ब्राह्मण, चिमल संहिता, लोहार्गल महात्म्य, गलता महात्म्य, महेन्द्राचल महात्म्य, नारदीय महापुराण, वराह पुराण इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई हैं उनकी सूचि अन्यत्र देदी गई है।

जातीय इतिहासों की गवेषणा पिछले पचास साठ वर्षों में बराबर होती रही है। अनेक ख्याति प्राप्त विद्वानों ने इस विषय पर कलम उठाकर इतिहास लेखकों का मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त किया है। कई एक विद्वानों ने जातियों के नामकरण सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डालकर जातियों के नामों की सार्थकता को प्रकट किया है। जातियों के नाम प्रायः जैसा समझा जाता है-निरर्थक नहीं होते, उनमें सार्थकता ऐतिहासिक आधार पर होती है। कभी कभी जातियों के नामकरण में देश काल की घटनायें भी प्रमुख होजाया करती हैं। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के नामकरण में भी देश काल सम्बन्धी घटना प्रमुख है। स्थान विशेष से बहुत-सी जातियों का नामकरण होता है। जैसे—"गोड़े भवाः गौड़ाः" यह स्थान विशेष के कारण पड़ा हुआ नाम है। इसी प्रकार "खण्डं लाति गृह्णातीति खण्डल." यह घटना विशेष द्वारा प्रचलित नाम है। खण्डल शब्द 'खण्ड पूर्वक ला आदाने' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है "खण्ड को ग्रहण करने वाला" इस खाण्डल शब्द का समर्थन खण्डलोत्पत्ति विषयक पौराणिक कथायें भी इसी अर्थ को लेकर करती हैं। खण्डल से ही खाण्डल भावार्थक प्रत्यय से बना और खण्डल की अपेक्षा भाववाचक खाण्डल ही प्रसिद्ध हुआ।

खाण्डलविप्र जाति के घटना विशेष से प्रसिद्ध खाण्डलविप्र नाम का समर्थन श्रीमद्भागवत, विमल संहिता, देवी भागवत, महाभारत, ऐतरेयारण्यक आदि पौराणिक तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ पूर्ण रूप से करते हैं। खाण्डल विप्र शब्द शास्त्र एवं इतिहास प्रसिद्ध है। इसलिये खाण्डलविप्र शब्द के विषय में प्रमाण पुष्टि के आधार पर सन्देह को कोई स्थान नहीं, इस विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है, किन्तु फिर भी लोक प्रसिद्ध खण्डेलवाल ब्राह्मण शब्द का स्पष्टीकरण वाञ्छनीय है। खण्डेलवाल नाम की दो जातियां हैं। एक खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति और दूसरी खण्डेलवाल वैश्य जाति। लोक में खाण्डलविप्र जाति को ही खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस विषय में कुछ विद्वान् स्थानविशेष को प्रमाण रूप में रखते हैं। कुछ महानुभाव खाण्डल शब्द का अपभ्रंश खण्डेलवाल बताते हैं।

खण्डेला नामक स्थान विशेष को खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का आदि निवास स्थान मानकर जो धारणा की जा रही है उसमें कुछ तथ्य होने पर भी प्रमाणों का अभाव है। खण्डेला की इतिहास परम्परा में इस घटना का उल्लेख नहीं है, और साथ ही यह भी अनिश्चित है कि संभवतः यह तथ्य अज्ञात हो।

खाण्डलविप्र जाति के प्रारम्भिक निवास स्थान लोहार्गल तीर्थ के पूर्व में स्थित वर्तमान खण्डेला नामक स्थान विशेष की इतिहास परम्परा में भी इस विषय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। न किसी जनश्रुति का ही आधार प्राप्त होता है। यह हो सकता है कि संभवतः उस समय खंडेला नामक कोई स्थान विशेष रहा हो जिसका अस्तित्व समय पाकर मिट गया हो और उसके बाद वर्तमान खण्डेला का निर्माण उसी के नाम पर होगया हो। ऐसी स्थिति में स्थान विशेष के कारण प्रसिद्ध खण्डेलवाल शब्द भी प्रामाणिक है, किन्तु इसका निर्णय अन्तर्गर्भ है। खाण्डल शब्द का अपभ्रंश संभवतः

खण्डेलवाल हो। इसमें किसी प्रकार के पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

तां कश्यपस्यानुमते: ब्राह्मणा: खण्डशस्तदा।
व्यभजंस्ते यदा राजन् प्रख्याता खाण्डवायना:॥

म. व. प.

अर्थात्–कश्यप की अनुमति से उस सुवर्णमयी वेदी के खण्ड ग्रहण करने वाले वे ब्राह्मण खाण्डवायन नाम से प्रसिद्ध हुए।

साधारणतया इस श्लोक का यह अर्थ है। किन्तु विचार पूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि इस अर्थ में कुछ विशेष तथ्य निहित हैं। 'खाण्डल' और 'खाण्डवायन' इन दोनों शब्दों का स्पष्टीकरण उपर्युक्त अर्थ से प्रतीत नहीं होता। साधारणतया विचार करने से इस एक ही श्लोक के अर्थ में दो विरोधी बातें प्रकट होती हैं। श्लोक के पूर्वार्द्ध से खण्ड ग्रहणात्मक खाण्डल का बोध होता है, उत्तरार्द्ध से 'खाण्डवायन' शब्द द्वारा इन ब्राह्मणों के खाण्डव स्थान निवासी होने का परिचय मिलता है। किन्तु स्पष्टीकरण किसी प्रकार भी नहीं है। श्लोक से यह प्रकट नहीं होता कि खाण्डव निवासी ब्राह्मणों ने इस वेदी के खण्डों का विभाजन कर खाण्डल नाम प्राप्त किया अथवा वेदी के खण्ड ग्रहण करने से ही वे खाण्डवायन नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस श्लोक के प्रकट में आने के बाद देखने में आया है कि खाण्डल विप्र जातीय महानुभाव खाण्डलविप्र जाति को भी खाण्डवायन समझने लगे हैं। खाण्डलविप्र जातीय संकलित साहित्य में बहुधा इस शब्द का प्रयोग देखने में आता है। समझ में नहीं आता कि खण्ड ग्रहण करने से वे खाण्डवायन कैसे प्रसिद्ध होगये। खण्डग्रहण द्वारा उनका खाण्डल प्रसिद्ध होना सर्वविदित है फिर खाण्डल का खाण्डवायन समझना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

सूक्ष्म विचारधारा के आधार पर समझ में यह आता है कि खाण्ड वायन (खाण्डव नामी) ब्राह्मणों ने इस वेदी के खण्डों को आपस में बांट लिया जिससे वे खाण्डल नाम से प्रसिद्ध हुए। इस दृष्टिकोण से खाण्डल विप्र जाति को खाण्डवायन समझना या लिखना युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता। तात्पर्य यह है कि वस्तुत खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) इस वेदी के खण्डग्रहण के बाद ही इस खाण्डलविप्र नाम से प्रसिद्ध हुए, किन्तु उनका नाम खाण्डवायन नहीं है। संभवत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषि पहले खाण्डव वन में रहे हों, और इसीलिये उनका उल्लेख खाण्डवायन से मिलता हो। फिर भी इस विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस श्लोक के आधार पर ही उनका पूर्व निवास स्थान खाण्डवयन माना जासकता है।

इस श्लोक को लेकर कई एक विद्वान् खाण्डलविप्र जाति को खाण्डवा यन नामसे लिखते हैं, यह उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु लोक प्रसिद्ध खण्डेलवाल और शास्त्र प्रसिद्ध खाण्डल शब्द को छोड़कर खाण्डवायन नाम का सामंजस्य खाण्डलविप्र जाति के साथ युक्तियुक्त नहीं दिखाई देता। इससे तो यही परम्परा उपयुक्त प्रतीत होती है कि संभवत मधुच्छन्दादि ऋषि पहले खाण्डव वन में रहते हों और बाद में वे किसी कारण विशेष से लोहार्गल प्रदेश में बस गये हों। उसी आधार पर उन्हें "खाण्डवायन" लिखा गया हो। किन्तु यह केवल धारणा मात्र है। खाण्डलविप्र (खण्डेल वाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों के खाण्डवन निवासी होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

उत्पत्ति के उल्लेख में मधुच्छन्दादि ऋषियों का लोहार्गलवास स्पष्ट है। मधुच्छन्दादि ऋषियों से सम्बन्ध रखने वाली पौराणिक कथाओं में कहीं खाण्डवायन का उल्लेख नहीं मिलता। तात्पर्यांश में खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों के लिये खाण्डवायन विशेषण इसी अवस्था में

उपयुक्त प्रतीत होता है जबकि उन्हें लोहार्गलवान में प्रथम खाण्डवायन वासी माना जाय। उपर्युक्त श्लोक का "खाण्डवायनाः खाण्डलाः प्रख्याताः" इस प्रकार का अर्थ युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अर्थात खाण्डवायनवासी वे (खण्ड ग्रहण करने वाले) ब्राह्मण खाण्डल नाम से प्रसिद्ध हुए।

उपरोक्त विवेचन और ग्रन्थ पर्यालोचना के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का खाण्डल नाम एक घटना विशेष से पड़ा हुआ है। जिस घटना के आधार पर यह नाम खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का पड़ा, वह कथा "स्कन्द पुराण के रेवाखण्डान्तर्गत महेन्द्र गिरि महात्म्य प्रकरण" में ३५ से लेकर ४० तक की छः अध्यायों में मिलता है। इस कथाभाग का उल्लेख करने से पहले खाण्डलविप्र जाति के नाम करण सम्बन्धी एक दो अन्य पहलूओं का भी दिग्दर्शन आवश्यक है जो प्रसंगवश उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

यजुर्वेदान्तर्गत तैत्तरीय शाखा के उल्लेख के साथ भी खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का उल्लेख मिलता है और खाण्डिकेयी शाखा को खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की वैदिक शाखा मानकर एतद्-विषयक कुछ एक लेखकों की ओर से पक्ष समर्थन किया गया है। वहीं देवरात सुत याज्ञवल्य द्वारा प्राप्त वाजसनेयी शाखा का भी उल्लेख मिलता है। याज्ञवल्क्य द्वारा उगले हुए यजुर्वेद के खण्डों को तित्तिर पक्षी बनकर ग्रहण करने वाले तैत्तरेयकों के अन्तर्गत खाण्डिकेयों से भी खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का सम्बन्ध 'पण्डित शिवलालजी जोशी, वेदान्तमार्तण्ड रतनगढ़' ने कवि चक्रवर्ति पं० देवीप्रसाद शुक्ल द्वारा रचित "मंगलमहर्षि महाकाव्य" की भूमिका में जाति के उत्पत्ति विषयक प्रसंग में लिखा है। किन्तु यह समझ में नहीं आरहा है कि दो घटनाओं का सम्बन्ध एक जाति की उत्पत्ति के साथ क्योंकर होगा ? वेदान्त मार्तण्डजी ने खाण्डिकेयों के अन्तर्गत खाण्डलों का समावेश किया है। संभवतः उन्हें यह

पता नहीं था कि खाण्डिकेयी शाखा मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित है, और उसके अनुयायी मैथिल ब्राह्मण हैं। इस घटना की युक्तिसंगत प्रतीति के लिये इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि—वस्तुतः यह कथा देवरात सुत याज्ञवल्क्य से सम्बन्धित होने के कारण खाण्डिलविप्र जाति की उत्पत्ति गाथाओं से जोड़ दी गई है। संभवतः इस विषय में खाण्डिकेयी शाखा के ऐतिहासिक पहलुओं पर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है। महर्षि याज्ञवल्क्य देवरात के पुत्र थे। देवरात खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में एक परम प्रसिद्ध ऋषि होगये हैं। जिनका उल्लेख यथावकाश होगा।

यजुष खण्ड ग्रहण, खाण्डिकेयी शाखा का निर्माण और खाण्डिकेयी की कथा खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जातीय इतिहास की अवान्तर कहानियां अवश्य हैं। उनकी परिपाटी का उल्लेख अव्यवस्थित होने से केवल तात्पर्यार्थ ग्रहण ही समीचीन प्रतीत होता है। केवल यही लिखना उपयुक्त होगा कि—"देवरात और उनके पुत्र याज्ञवल्क्य का सम्बन्ध यजुर्वेद से था और इसी कारण मधुछन्दादि ऋषियों का सम्पर्क इस कथाभाग से जुड़ा। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के नामकरण में वे ही तथ्य प्रतीत होते हैं जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

शौनकीय चरणव्यूह के अन्दर भी इस उपर्युक्त कथा का उल्लेख मिलता है। किन्तु इस कथाभाग को खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उत्पत्ति के साथ जोड़ने से पूर्व यह सोच लेना परमावश्यक है कि याज्ञवल्क्य से सम्बन्धित यह कथाभाग केवल वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य का ही पक्ष समर्थन करता है। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उत्पत्ति से उस कथाभाग का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह लिखना उपयुक्त होगा कि याज्ञवल्क्य मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख देवरात के पुत्र थे और उनके जीवन की ऐतिहासिक घटना खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण)

जाति के इतिहास की एक विशेष घटना है। संभवतः खाण्डलोत्पत्ति प्रकरण में इस कथा का सम्मिश्रण इसीलिये किया गया है। उत्पत्ति में इस कथा-भाग को लेकर जो प्रमाण दिया जाता है वह एक भ्रामक विचार है, क्योंकि किसी जाति का उत्पत्तिक्रम द्विधात्मक रूप से नहीं हो सकता। जाति का उत्पत्तिक्रम तो एक प्रकार का ही होगा। यही कारण है कि खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति विषयक समस्त कथाओं और प्रमाणों में एक ही घटना का उल्लेख है।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उत्पत्ति विषयक गाथाओं में ऐतिहासिक तथ्य सम्पूर्ण रूपसे विद्यमान हैं। इस जाति के उत्पत्तिक्रम में जनश्रुति और किंवदन्तियों की भरमार नहीं है। उत्पत्ति के बाद ऐतिहासिक पहलूओं के विषय में जहाँ जनश्रुति और किंवदन्तियों को आधार माना गया है, वह दूसरी बात है। उत्पत्ति का उल्लेख कल्पना के आधार पर नहीं हो सकता। याज्ञवल्क्य की कथा को प्रमुख मानकर खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का उत्पत्तिक्रम उस पर आधारित नहीं किया जासकता। महर्षि याज्ञवल्क्य का जन्म खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति में हुआ था। याज्ञवल्क्य का उद्भव खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के निर्माण के बाद हुआ था। याज्ञवल्क्य खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख देवरात ऋषि के पुत्र थे।

तात्पर्य यह है कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का नामकरण एक घटना विशेष के आधार पर हुआ था। वह विशेष घटना लोहार्गल में सम्पन्न परशुराम के यज्ञ की थी, जिसमें खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों ने यज्ञ की सुवर्णमयी वेदी के खण्ड दक्षिणा रूप में ग्रहण किये थे। उन खण्डों के ग्रहण के कारण ही, "खण्डं लाति गृह्णातीति खण्डल." इस व्युत्पति के अनुसार उन ऋषियों का नाम "खण्डल अथवा खाण्डल" पड़ा था। ब्राह्मण वंशज वे ऋषि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक हुए।

खाण्डलविप्रोत्पत्ति-प्रकरण

खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति के विषय मे स्कन्दपुराणोक्त रेवाखण्ड (आवन्त्यखण्ड) की ३५ से ४० की छै अध्यायों में जो कथाभाग है उसका सार निम्नलिखित है —

"एक बार महर्षि विश्वामित्र वसिष्ठ के आश्रम में गये। वहां जाकर उन्होंने वसिष्ठ से उनका कुशल प्रश्न पूछा। इस पर वसिष्ठ ने विश्वामित्र को राजर्षि शब्द से सम्बोधित करते हुए कहा कि —

"आपके प्रश्न से मेरा सर्वत्र मंगल है।"

विश्वामित्र यह सुनकर चुपचाप अपने आश्रम में चले आये। वे ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या करने लगे। दीर्घकाल तक तप करने के बाद विश्वामित्र फिर वसिष्ठ के आश्रम मे गये। उन्होंने वसिष्ठ से फिर कुशल प्रश्न पूछा। जिसके उत्तर मे फिर भी वसिष्ठ ने उनके लिये राजर्षि शब्द का ही प्रयोग किया और अपने ब्रह्मर्षित्व पर गर्व का प्रदर्शन किया।

इस पर विश्वामित्र ने कहा—

"ब्रह्मन्? हमने तो पूर्वजों से सुना है कि पहले सभी वर्ण शूद्र थे। संस्कार विशेष के कारण उनको द्विज संज्ञा प्राप्त हुई। ऐसी स्थिति म ब्राह्मण और क्षत्रिय मे क्या भेद है? आपको ब्राह्मण होने का यह अभिमान क्यों है?"

"ब्राह्मण मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुआ इसलिये इन दोनों में भारी भेद है।" वसिष्ठ का उत्तर था।

यह गर्वोक्ति सुन विश्वामित्र उठकर चुपचाप अपने आश्रम में चले गये। उन्होंने अपने अपमान का समस्त वृतान्त अपने पुत्रों से कहा। वे स्वयं ब्रह्मर्षिपद प्राप्त करने के लिये महेन्द्रगिरि पर्वत पर तपस्या करने के लिये चले गये।

महर्षि विश्वामित्र के सौ पुत्र थे। पिता के तपस्या करने के लिये चले

जाने के बाद उन्होंने अपने पिता के अपमान का बदला लेने की भावना से वसिष्ठ के आश्रम पर आक्रमण कर दिया।

वसिष्ठ ने कामधेनु की पुत्री नन्दिनी द्वारा तालजंघादि राक्षसों को उत्पन्न कर उनसे विश्वामित्र के समस्त पुत्रों को मरवा डाला। विश्वामित्र के पुत्रों को मरवाने के बाद वसिष्ठ फिर अपने योग ध्यान में दत्तचित्त हुए।

विश्वामित्र को जब अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार मिला तो वे अत्यन्त शोक के कारण मूर्छित हो गये। आश्रमवासी अन्य ऋषियों द्वारा उपचार होने पर जब विश्वामित्र की मूर्छा भंग हुई तो उन्हें अपने पुत्रों का दुःख पुनः सन्तप्त करने लगा। उन्होंने वसिष्ठ से बदला लेने की ठान कर पुनः कठोर तपश्चर्या प्रारम्भ की।

जब उनकी तपश्चर्या को बहुत अधिक समय हो गया तो ब्रह्माजी ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा। विश्वामित्र ने मृत पुत्रों के पुनरुद्भव की याचना की।

ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर चले गये।

ब्रह्माजी के चले जाने के बाद मिश्वामित्र ने वार्दिकी सृष्टि की रचना प्रारंभ की। इससे देवता लोग घबरा उठे। देवताओं ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि—"महाराज ? यह नियति का विधान परिवर्तित हो रहा है। आप इस अनर्थ को रोकिये, क्योंकि यह अदृष्ट पूर्व है।"

ब्रह्माजी पुनः विश्वामित्र के आश्रम में गये। उन्होंने ऋषि विश्वामित्र को समझाया कि—"आप जैसे बहुत से ऋषि हो गये हैं, किन्तु किसी ने भी विधि का विधान परिवर्तित करने का दुःसाहस नहीं किया। आप यह क्या कर रहे हैं ? यह तो अनर्थ मूलक है।"

विश्वामित्र ने उत्तर में कहा—"वसिष्ठ ने तालजंघादि राक्षसों की उत्पत्ति कर मेरे पुत्रों को मरवा डाला है। इसलिये मैं भी वार्दिकी सृष्टि द्वारा वसिष्ठ से बदला लूंगा।"

ब्रह्माजी ने फिर समझाया—"स्थावर से स्थावर और जगम से जंगम की उत्पत्ति होती है।" "अत आप इस कार्य से विरत होकर स्वस्थ होइये। आपका पुत्र शोक असह्य है। उसकी शान्ति का उपाय करना आवश्यक है। आप मेरे कथनानुसार इसी समय महर्षि भरद्वाज के आश्रम मे चले जाइये। वे आपका पुत्र शोक दूर कर आपको सब प्रकार से सान्त्वना देंगे।"

विश्वामित्र ब्रह्माजी के कथनानुसार वार्क्षिकी सृष्टि से विरत होकर महर्षि भरद्वाज के आश्रम में गये। प्रणामानन्तर कुशल प्रश्न के बाद जब विश्वामित्र निर्दिष्ट आसन पर बैठ गये, तब महर्षि भरद्वाज ने नाना उपदेशों द्वारा उनका शोक दूर करते हुए कहा कि—"गये हुओं के लिये आप चिन्ता न कीजिये। मैं मानता हूँ कि आपका पुत्र शोक दु:सह है। इसके लिये मैं उचित समझता हू कि आप मेरे इन सौ मानस-पुत्रों को अपने साथ ले जाइये। ये आपका पिता के समान आदर करेंगे और सर्वदा आपकी आज्ञा मे रहेंगे।"

विश्वामित्र ने महर्षि भरद्वाज का कहना मान लिया। वे उन सौ मानस-पुत्रों को अपने साथ ले आये। उन्होंने उन ऋषिकुमारों को नाना कथा कहानियों द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

विश्वामित्र ने भरद्वाज द्वारा प्रदत्त उन सौ मानस पुत्रों को अपने आश्रम मे लाकर विधि पूर्वक ठीक समय पर उनके सब संस्कार सम्पन्न किये। समय पाकर उन्हें वेद-विद्या की शिक्षा दी। जब वे बड़े हुए तो विश्वामित्र के आश्रम के निकटवर्ती ऋषियों ने अपनी लड़कियां उन ऋषिकुमारों को व्याह दीं

*   *   *

विश्वामित्र ऋषि घूमते हुए हरिश्चन्द्र के यज्ञ में जा पहुँचे। हरिश्चन्द्र अपने जलोदर रोग की शान्ति के लिये वारुणेष्टि यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने

यज्ञ के लिये अजीगर्त नामक निर्धन ब्राह्मण के पुत्र शुनःशेप को बलि पशु के स्थान पर खरीद लिया था। अजीगर्त महानिर्धन था। निर्धनता के कारण वह अपनी बहुसन्तति का भरण पोषण करने में भी असमर्थ था। उसने अपने पुत्र शुनःशेप को रुपये के लोभ में बेच डाला था।

शुनःशेप अपनी मृत्यु निकट देखकर घबरा रहा था। वह विश्वामित्र की बहिन का पुत्र था। शुनःशेप ने विश्वामित्र को देखते ही उनसे अपने छुटकारे की प्रार्थना की। विश्वामित्र ने शुनःशेप को वेद की ऋचायें बतलाई, जिनके प्रभाव से बलिदान हुआ शुनःशेप बच गया।

यज्ञ समाप्ति के बाद जब सब लोग चले गये तो विश्वामित्र ने शुनःशेप को आकाश से उतार कर हरिश्चन्द्र के सभासदों को दिखलाया। सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। इसके बाद विश्वामित्र शुनःशेप को अपने साथ ले आये।

घर आकर उन्होंने अपने पुत्रों से समस्त वृतान्त कहा और उन्हें आदेश दिया कि—"शुनःशेप तुम्हारा भाई है। तुम इसे अपने बड़े भाई के समान समझो, और इसका आदर करो। यह भी मेरा पुत्रक होगा। तुम्हारे समान यह भी मेरे धन में दायभाग का अधिकारी होगा।" इस पर विश्वामित्र के वे सौ मानस पुत्र दो पंक्तियों में विभक्त हो गये। बड़े पचास एक ओर थे। छोटे पचास दूसरी पंक्ति में थे। पहली पंक्ति वालों से जब ऋषि ने यह प्रश्न किया तो उन्होंने शुनःशेप को अपना बड़ा भाई मानना अस्वीकार कर दिया। इस पर महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने बड़े पचास पुत्रों को शाप देकर म्लेच्छ बना दिया।

इसके बाद महर्षि विश्वामित्र ने अपने छोटे पचास पुत्रों से प्रश्न किया—"तुम लोग इसे अपना बड़ा भाई समझोगे या नहीं ?" छोटे पचास पुत्र जिनमें प्रमुख महर्षि मधुच्छन्द थे, ऋषि के शाप से भयभीत हो गये थे। उन्होंने तत्काल ऋषि का आदेश सहर्ष स्वीकार किया। ऋषि विश्वामित्र भी

अपने पुत्रों की अनुशासनशीलता से प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने उन पचास पुत्रों को धनवान पुत्रवान होने का आशीर्वाद दिया।

* * *

ऋचीक ऋषि के पौत्र और जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा से अपनी माता और भाइयों का सिर काट डाला था। जिसके प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने पैदल पृथ्वी पर्यटन किया था। समस्त पृथ्वी का पर्यटन करने के बाद वे अपने पितामह ऋचीक ऋषि के आश्रम में गये।

कुशल प्रश्न के बाद परशुरामने अपनी इक्कीस बार की क्षत्रिय-विजय की कहानी अपने पितामह को कह सुनाई, जिसे सुनकर ऋषि ऋचीक अत्यन्त दु:खी हुए। उन्होंने अपने पौत्र परशुराम को समझाया कि—"तुमने यह काम ठीक नहीं किया, क्योंकि ब्राह्मण का कर्तव्य क्षमा करना होता है क्षमा से ही ब्राह्मण की शोभा होती है। इस कार्य से तुम्हारे ब्राह्मणत्व का ह्रास हुआ है। इसकी शान्ति के लिये अब तुम्हें विष्णुयाग करना चाहिये।

अपने पितामह की आज्ञा मानकर परशुरामने प्रसिद्ध लोहार्गल तीर्थ में विष्णुयाग किया। परशुराम के उस यज्ञ में कश्यप ने आचार्य और वसिष्ठ ने अध्वर्यु का कार्य सम्पन्न किया। लोहार्गलस्थ माला पर्वत (मालखद् मालखेत) नामक पर्वत शिखर पर आश्रम बना कर रहने वाले मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों ने उस यज्ञ में ऋत्विक् का कार्य निष्पादन किया।

यज्ञ-समाप्ति के बाद परशुराम ने सभी सभ्यों का यथायोग्य आदर सत्कार कर यज्ञ की दक्षिणा दी। यज्ञ के ऋत्विक् मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों ने यज्ञ की दक्षिणा लेना अस्वीकार कर दिया। इससे परशुराम का चित्त प्रसन्न न हुआ। उन्होंने आचार्य कश्यप से कहा—

"निमंत्रित मधुछन्दादि ऋषि यज्ञ की दक्षिणा नहीं लेना चाहते। उनके दक्षिणा न लेने से मैं अपने यज्ञ को असम्पूर्ण समझता हूँ। अतः आप उन्हें समझाइये कि वे दक्षिणा लेकर मेरे यज्ञ को सम्पूर्ण करें।"

कश्यप ने मधुछन्दादि ऋषियों को बुलाकर कहा—"आप लोगों को यज्ञ की दक्षिणा ले लेनी चाहिये, क्योंकि यज्ञ की दक्षिणा लेना आवश्यक है। दक्षिणा के बिना यज्ञ असम्पूर्ण समझा जाता है। आप लोगों को दान लेने में वैसे भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। केवल एक ब्राह्मण वर्ण ही ऐसा है जो केवल दान लेता है। अन्य वर्ण दान देने वाले हैं, लेने वाले नहीं। इसके साथ साथ यह भी विशेष बात है कि यह राजा ब्राह्मण कुल का पोषक है। इसलिये इसकी दी हुई दक्षिणा ग्रहण कर आप लोग इसको प्रसन्न करें। यदि आप यज्ञ-दक्षिणा नहीं लेना चाहते तो आप भी अन्य प्रजाओं के समान राजा को राज्य कर दिया करें।"

कश्यप की इस युक्तियुक्त बात को मधुछन्दादि ऋषियों ने मान लिया। कश्यप ने परशुराम को सूचित किया कि—"मधुछन्दादि ऋषि यज्ञ की दक्षिणा लेने को तैयार हैं।" उस समय परशुराम के पास एक सोने की वेदी को छोड़कर कुछ नहीं बचा था। वे अपना सर्वस्व दान में दे चुके थे। उन्होंने उस एक वेदी के सात खण्ड (टुकड़े) किये। फिर सातों खण्डों (टुकड़ों) के सात सात खण्ड (१×७=७×७=४९) कर प्रत्येक ऋषि को एक एक खण्ड (टुकड़ा) दिया।

इस प्रकार सुवर्ण-वेदी के उनचास खण्ड (टुकड़े) उनचास ऋषियों को मिल गये, किन्तु मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषि संख्या में पचास थे। इसलिये एक ऋषि को देने के लिये कुछ न बचा तो सभी सभ्य चिन्तित हुए। उसी समय आकाश वाणी द्वारा उनको आदेश मिला कि—"तुम लोग चिन्ता मत करो। यह ऋषि इन उनचास का पूज्य होगा। इन उनचास कुलों में इसका श्रेष्ठ कुल होगा।"



वंशीधर सेकसरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य

मधुच्छन्दादि ऋषियों की निवास भूमि
मालसेन पर्वत की सुरम्य उपत्यका

पृष्ठ ११३ देखिये

इस प्रकार यज्ञ की दक्षिणा में यज्ञ की ही सोने की वेदी के खण्ड ग्रहण करने से मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषियों का नाम "खण्डल अथवा खाण्डल" पड गया। ये ही मधुच्छन्दादि ऋषि खाण्डलविप्र या खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के प्रवर्तक हुए। इन्हीं की सन्तान भविष्यत् में खाण्डलविप्र या खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

गोत (अवटंक) और गोत्र प्रवर

गोत शब्द वैसे तो गोत्र का अपभ्रंश प्रतीत होता है, किन्तु साधारणतया आज कल गोत शब्द का प्रयोग शासन अथवा अवटंक के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अत गोत और गोत्र का अलग अलग स्पष्टीकरण न होने से भ्रम हो सकता है, क्योंकि लोक में प्रसिद्ध गोत (शासन या अवटक) गोत्र से भिन्न है। गोत और गोत्र में वैसे कोई भेद प्रतीत नही होता किन्तु लौकिक प्रसिद्धी को छोड़कर एक शब्द को विशेष अर्थ में प्रयुक्त करने की अपेक्षा लोक प्रसिद्ध शब्दों का तदनुकूल प्रयोग ही समीचीन प्रतीत होता है। अत गोत और गोत्र, जो अपने अपने आशयों की विभिन्नता में प्रकट करते हैं—का प्रयोग तत्तत् अर्थों मे ही होगा।

गोत (सासन या अवटंक) लोक में विशेष प्रसिद्ध है। अत पहले इसके विषयान्तर्गत तथ्यों पर प्रकाश डालना उचित होगा। गोत (सासन या अवटंक) की इस परिपाटी के लिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह कब से प्रचलित हुई किन्तु खाण्डलविप्र जाति के लिये यह अवश्य लिखा जा सकता है कि इस जाति के गोत (सासन या अवटंक) इसके प्रादुर्भाव के साथ ही उत्पन्न हुए थे। क्योंकि खाण्डलविप्र जाति के गोत्त (सासन या अवटंक) यज्ञजात नाम हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति का नामकरण घटना विशेष से हुआ, उसी प्रकार इस जाति में

प्रचलित गोत (सासन या अवटंक) भी कार्य विशेष से प्रचलित हुए थे। यज्ञ में जो ऋषि जिस कार्य को सम्पन्न करता था उसका वही गोत (सासन या अवटंक) भविष्यत् में प्रचलित हो गया। गोत (सासन या अवटंक) का विस्तृत विवेचन स्कन्द पुराण के रेवाखंड की चालीसवीं अध्याय में किया गया है। यहां इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के गोतों (सासन या अवटंकों) का नामकरण यज्ञकार्य की कर्तव्यपूर्ति के आधार पर हुआ था।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति में वर्तमान में प्रसिद्ध तो उनचास गोत (सासन या अवटंक) हैं। इन प्रसिद्ध उनचास गोतों (सासन या अवटंकों) को उनचास न्यात भी कहते हैं। अर्थात् खाण्डलविप्र जाति की उनचास न्यात प्रसिद्ध है। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि खाण्डल विप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के गोत (सासन या अवटंक) उनचास नहीं, अपितु पचास हैं। इस विषय में ऊपर उल्लेख हो चुका है कि जिस सुवर्ण-वेदी के खण्ड ग्रहण करने से इस जाति के प्रवर्तक खाण्डलविप्र कहलाये उस वेदी के उनचास ही खण्ड हुए थे और जाति के प्रवर्तक ऋषियों की संख्या पचास थी। इसलिये जिस ऋषि को वेदी-खण्ड नहीं मिला वह उनचास का पूज्य घोषित किया गया। इसीलिये इस जाति में उनचास गोत (सासन या अवटंक) अथवा उनचास न्यात प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः शास्त्र प्रसिद्ध गोत (सासन या अवटंक) पचास ही हैं। लोक प्रसिद्ध उनचास हैं। कतिपय आधुनिक ग्रन्थों में इस जाति के ५२,५६ और ६४ गोत (सासन या अवटंक) भी लिखे हैं। किन्तु वस्तुतः खाण्डलविप्र जाति में पचास ही गोत (सासन या अवटंक) हैं, जो आज भी मिलते हैं। इतिहास पुराण के अनुसार भी ये गोत (सासन या अवटंक) पचास ही हैं। इन पचास में भी लोक प्रसिद्ध केवल उनचास ही हैं।

संभवतः किसी युग में इस जाति की शाखा प्रशाखायें रही हों और

उनके विस्तार के कारण इस जाति में गोत (सासन या अवटंक) घट गये हों किन्तु उनका सर्वा गीण उल्लेख कहीं नहीं मिलता, अत इतिहास और पुराण साहित्य के आधार पर प्रचलित पचास गोतों (सासन या अवटंकों) को मानना ही समीचीन है। खाण्डलविप्र जाति के उत्पत्तिक्रम में भी पचास गोतों (सासन या अवटंकों) का उल्लेख है।

स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड भाग में खाण्डलविप्र जातीय इन पचास गोतों (सासन या अवटंकों) का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है —

१ – माठोलिया

मठमालयमासाद्य जजाप जगदीश्वरम् ।
अतो माठालयो भूमौ ब्राह्मण ख्यातिमागत ॥ १ ॥

मठ नामक स्थान में बैठकर जो जगदीश्वर का जप किया करता था, वह ब्राह्मण पृथ्वी पर मठालय (माठोलिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ १ ॥

मठालय का माठोलिया रूप समय पाकर बना हुआ है। लोक में अन्य परिवर्तनों के समान शाब्दिक परिवर्तन भी होते रहते हैं, उसी के अनुसार प्रारम्भ का मठालय समय पाकर माठालया और फिर माठोलिया रूप में परिवर्तित हो गया।

२ – बढ़ाढरा

वटकोलं समाहृत्य चाहारमनुकल्पयेत् ।
ततस्तस्य समाह्वानं वटाहारमिति क्षितौ ॥ २ ॥

बड़वंट (बरगद के फल) इकट्ठे कर जो ऋषि भोजन करता था, उसे लोग वटाहार (बढ़ाढरा) कहने लग गये ॥ २ ॥

उञ्छवृत्ति परायण ऋषियों में कन्दमूल खाने का जो प्रचलन था, उसके अनुसार ऋषि लोग स्वेच्छानुसार कन्दमूल भक्षण का चुनाव करते थे।

३ – श्रोत्रिय (सोती)

विप्रेभ्योपि ददौ धीमान् वेदान् साङ्गाननुक्रमात् ।
पाठयित्वा ततो विप्रः श्रोत्रियो विश्रुतिं गतः ॥ ३ ॥

जो बुद्धिमान विप्र छहों अंगों सहित अध्यापन द्वारा ब्राह्मणों को वेद ज्ञान प्रदान करता था वह श्रोत्रिय (सोती) के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

४ – सामरा

देवैः सह सदा यस्य व्यवहारः प्रवर्तते ।
सामरः स तु विख्यातः स्वर्गे वा क्षितिमंडले ॥ ४ ॥

जिस विप्र का लेनदेन देवताओं के साथ रहा करता था, वह स्वर्ग और पृथ्वी मण्डल में सामर (सामरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४ ॥

५ – जोशी

ज्योतिर्विदाम्वरो धीरो यज्ञवेलां ददावथ ।
ज्योतिपीति समाख्यातो देवविप्रसभासु यः ॥ ५ ॥

ज्योतिर्विदों में श्रेष्ठ जो विप्र यज्ञ वेला का मुहूर्त देने वाला था, वह देव विप्र सभाओं में ज्योतिपी (जोशी) के नाम से विख्यात हुआ । ॥ ५ ॥

एक दीर्घकाल से आर्य हिन्दू समाज में ज्योतिषियों के लिये जोशी शब्द का व्यवहार प्रचलित है । इसी आधार पर ज्योतिर्विद् अथवा ज्योतिष मर्मज्ञ का गोत (सासन या अवटंक) जोशी नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

६ – रणवा

रणमुद्वहते योऽसौ यज्ञघ्नैर्दैत्यपुंगवैः ।
यज्ञसंरक्षणायैव रणोद्वाही प्रथां गतः ॥ ६ ॥

जो यज्ञ नाशक दैत्य पुगवों से युद्ध कर यज्ञ की रक्षा करता था, वह ऋषि रणोद्वाही (रणवाह अथवा रणवा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ६ ॥

ऋषि समाज में आत्मरक्षण के लिये शस्त्र ग्रहण करना उपयुक्त समझा जाता था। यह श्लोक इसकी पुष्टि करता है।

७ — बीलवाल

सुपक्वानि च विल्वानि यज्ञार्थं संहृतानि च।
निल्ववानथ स ख्यातो ब्राह्मणेषु द्विजोत्तम ॥ ७ ॥

जो द्विजोत्तम पके हुए विल्व फल इकट्ठे कर यज्ञ के लिये लाया करता था, वह ब्राह्मणों में निल्ववान् (बीलवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥७॥

८ — बील

विल्वमालाच शिरसि गले च भुजयोरपि।
विल्वमूले स्थितो योऽसौ तस्माद्विल्व इति श्रुत ॥ ८ ॥

जो सिर, गले और भुजाओं में विल्व की मालायें धारण करता तथा जो विल्व के नीचे बैठा करता था, वह इसी कारण विल्व (बील) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ८ ॥

९ — कुँजवाड

लतागृहं समाश्रित्य जजाप परमं जप।
कुञ्जवाडिति विख्यातो ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम ॥ ९ ॥

लतागृह में बैठकर जिसने उत्कृष्ट जप किया, वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण कुञ्जवाट् (कुञ्जवाड) नाम से विख्यात हुआ ॥ ९ ॥

ऋषि लोग प्रकृति प्रेमी होते थे। उनका बौद्धिक विकास प्रकृति के सान्निध्य से ही होता था। वे लोग लता कुँजों में ही जीवन बिताते थे।

१० – सेवदा

रक्षन् सेवधिं द्रव्यमृषीणां परमाज्ञया ।
तस्मात्स सेवधिर्नामा विख्यातो भुवि ब्राह्मणः ॥ १० ॥

जो ऋषियों की आज्ञानुसार यज्ञीय धन की रक्षा किया करता था, वह ब्राह्मण पृथ्वी पर सेवधि (सेवदा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १० ॥

११ – चोटिया

शिखा वृद्धतरा यस्य सर्वांगे लुलिता परा ।
तस्माच्चौल इति ख्यातो भूसुरो भुवि मंडले ॥ ११ ॥

बड़ी भारी चोटी जिसके सारे शरीर पर पड़ी रहा करती थी, वह ब्राह्मण पृथ्वी मंडल में चौल (चोटिया) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥

१२ – मण्डगिरा

मण्डमागिरते नित्यं दन्तहीनो द्विजोत्तमः ।
ततो मण्डगिलः ख्यातः सर्वदा भुवि मंण्डले ॥ १२ ॥

जो द्विज श्रेष्ठ दन्त हीन होने के कारण प्रति दिन चावलों का मांड पिया करता था, इसी कारण वह पृथ्वी मण्डल में मण्डगिल (मंडगिरा) नाम से विख्यात हुआ ॥१२॥

१३ – सुन्दरिया

सुन्दरस्तुन्दिलो योऽसौ त्रिवल्या परिशोभते ।
तेनैव सुन्दरो भूमौ विख्यातो विप्रसत्तमः ॥ १३ ॥

जिस श्रेष्ठ ब्राह्मण की तोंद त्रिवली से सुशोभित थी वह उसी कारण पृथ्वी पर सुन्दर (सुन्दरिया) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १३ ॥

१४ – झखनाडा

झषनर्तनमालोक्य परमानन्दमात्मनः ।
यो मेने मनसा धीमान् झषनाख्य इति स्मृतः ॥ १४ ॥

जो बुद्धिमान् ब्राह्मण मछलियों का नृत्य देखकर अपने मन में आनन्द का अनुभव करता था, वह झषनाख्य (झखनाडा) नाम से स्मरण किया गया ॥ १८ ॥

१५ – रूथला

चरुस्थाली करे कृत्वा प्रजपन्मत्रमुत्तमम् ।
अजोहवीत्तदा वन्हौ चरुस्थालीति विश्रुतः ॥ १५ ॥

जो चरुस्थाली को हाथ में लेकर उत्तम मंत्र जपता हुआ अग्नि में आहुतियां दिया करता था वह चरुस्थाली (रूथला) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

१६ – गोधला

गोधूली समये नित्यं यो भुनक्ति महामतिः ।
स तद्व्रतप्रभावेण गोधूलिरयातिमागतः ॥ १६ ॥

जो महामति गोधूलि वेला में भोजन किया करता था, वह उस व्रत के प्रभाव से गोधूली (गोधला) नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

१७ – गोरसिया

गोतक्रं यः पिबेन्नित्यं मन्यदन्नं न भक्षयेत् ।
गोरस इति ख्यातो विप्रः पुण्येन कर्मणा ॥ १७ ॥

जो नित्य केवल गोतक्र (गाय की छाछ) पिया करता था और दूसरा

अन्न नहीं खाता था, वह विप्र अपने पुण्य कर्म से गोरस (गोरसिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ १७ ॥

१८ – झुन्झुनाद

यज्ञस्यान्ते च यो नित्यं सामवेदं स्वरान्वितम् ।
धुनोति ब्राह्मणः श्रीमान् झुन्झुनाद इतीरितः ॥ १८ ॥

यज्ञ समाप्ति पर जो सस्वर सामवेद का गान करता था, वह झुन्झुनाद (झुन्झुनादा) नाम से पुकारा जाने लगा ॥ १८ ॥

१९ – भूमरा

भूगर्तान्यत्र कुत्रापि दृष्टवा भरति यः सदा ।
भूभरः स तु विख्यातः सर्वत्र सुखदो द्विजः ॥ १९ ॥

जहां कहीं पृथ्वी में गड्ढों को देखकर जो सदा उनको पाट देता था, सर्वत्र सुख देने वाला वह द्विज भूभर (भूमरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ १९ ॥

२० – वटोटिया

वटमूलमुपाश्रित्य नैत्यकं कुरुते तु यः ।
वटोधा वै समाख्यातो भूसुरेषु निरन्तरम् ॥ २० ॥

जो बरगद के नीचे बैठकर नित्य कर्म करता था, वह निरन्तर भूसुर वर्ग में वटोधा (वटोटिया अथवा वट ओटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ २० ॥

२१ – काछवाल

कक्षमाश्रित्य वेद्यास्तु जुहुयान्मंत्रसंयुतम् ।

कक्षावानिति सर्वत्र विख्यातः ऋषिपुङ्गव ॥ २१ ॥

जो वेदी के कोने में बैठकर मंत्रोच्चारण पूर्वक आहुति दिया करता था, वह ऋषि श्रेष्ठ सर्वत्र कक्षावान् (काछवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ २१ ॥

२२ – शिवोद्वाही (मोडवा)

शिवमुद्वहते कण्ठे नित्य भक्त्या मुनिमर्हान् ।
शिवोद्वाहीति लोकेऽस्मिन् तेन ख्यातो विदाम्वर ॥ २२ ॥

जो महामुनि भक्ति पूर्वक नित्य कण्ठ में शिवजी को धारण करता था, वह शिवोद्वाही (मोडवा) नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ २२ ॥

२३ – भाटीवाडा

भट्टस्य रूपमास्थाय युध्यते यो निरन्तरम् ।
तेनैव भूतले ख्यातो भाटीवानिति पण्डितः ॥ २३ ॥

योद्धा का रूप धारण कर जो निरन्तर युद्ध किया करता था वह पण्डित भाटीवान् (भाटीवाडा) नाम से पृथ्वी तल पर विख्यात हुआ ॥ २३ ॥

२४ – गोवला

गाः पालयति यः स्नेहान्नित्य धर्मपरायण ।
तासामेव बलो यस्य गोवल कथितो द्विजैः ॥ २४ ॥

जो प्रेम पूर्वक धर्मपरायण होकर नित्य गौओं का पालन करता था और जिसके गौओं का बल ही प्रधान था वह द्विजों द्वारा गोवल (गोवला) नाम से पुकारा गया ।

२५ – वशीवाल

वशीकृत्य जनान सर्वान् वर्तते क्षितिमण्डले ।

तत्प्रभावात् समाख्यातो वशीवानिति भूतले ॥ २५ ॥

जो सब जनों को वश में कर निवास करता था, वह उसी प्रभाव से पृथ्वी पर वशीवान् (वशीवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ २५ ॥

२६ – मंगलहारा

मनसा वचसा नित्यं सर्वेषामभिवाञ्छति ।
मंगलाहरति योऽसौ तस्मान्मंगलहारकः ॥ २६ ॥

मन और वाणि से जो सब का भला चाहता था और सब का मंगल करता था, वह मंगलाहर (मंगलहारा) नाम से विख्यात हुआ ।

२७ – बोचीवाल

अवोचद्यज्ञशालायां धर्मान्धर्मात्मकः कविः ।
तस्मादसौ च विख्यातो वोचीवानिति नामतः ॥ २७ ॥

जो क्रान्तकर्मा धर्मात्मा ऋषि यज्ञशाला मे धार्मिक उपदेश दिया करता था, वह इसी कारण वोचीवान् (वोचीवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ २७ ॥

२८ – दुगोलिया

दिवो गोलमथालम्ब्य वर्णितं व्योमविस्तरम् ।
तस्मादत्र समाख्यातो द्युगोल इति विद्वरः ॥ २८ ॥

खगोल का अवलम्बन कर जिसने खगोल का विस्तार पूर्वक वर्णन किया, इसी कारण वह ज्ञानियों में श्रेष्ठ द्युगोल (दुगोलिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ २८ ॥

ऋषियों में नाना प्रकार की गवेषणायें करने का प्रचलन था। इस सम्बन्ध में प्रवर्तक ऋषि ने भी खगोल का प्रामाणिक अनुसन्धान किया था।

२९ — कुञ्जवाड़ा

गुञ्जावितानमाछाद्य वटस्य परितो बुध ।
तत्र चोवास यो धीरो गुञ्जावाट इति श्रुत ॥ २९ ॥

जो विद्वान् गुञ्जा के लता कुञ्जों को बड़ पर चढ़ाकर उनके नीचे निवास किया करता था, वह गुञ्जावाट (गुञ्जावड़ा) नाम से विख्यात हुआ ॥ २९ ॥

३० — परवाल

प्रवालगौरवर्णश्च प्रवालैश्चैव मण्डित ।
प्रवालमालयोपेत प्रवाल स च कथ्यते ॥ ३० ॥

जो ऋषि प्रवाल के समान गौर वर्ण था और जो प्रवालों से विभूषित और प्रवाल मालाधारी था, उसका नाम लोगों ने प्रवाल (परवाल) रक्खा ॥ ३० ॥

३१ — हूचरा

हूहू नामानमाहूय चानयद्यज्ञवेश्मनि ।
चारयामास गान्धर्व तस्माद्धूचरको द्विज ॥ ३१ ॥

यज्ञगृह मे हूहू नामक गन्धर्व को बुलाकर जो गान्धर्व वेद का गायन करवाया करता था, वह द्विज (हूचरिया) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३१ ॥

३२ — नवहाल

जाम्बुद्रुममय नूत्न हलं जग्राह यो द्विज ।
चकर्ष याज्ञिकीं भूमि नवहाल प्रथा गत ॥ ३२ ॥

जिसने जामुन का नया हल बना कर यज्ञ की भूमि को जोता, वह

ब्राह्मण नवहाल नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥

३३ – वांठोलिया

यज्ञवाटमुपागम्य ह्यलिखन् स्थण्डिलं तु यः ।
जजाप परमं जापं तेन वांटोलिकः स्मृतः ॥ ३३ ॥

जो यज्ञ की वेदी में रंग भरा कर गायत्री का जप किया करता था, उसको लोग वांठोलिक (वांठोलिया) कहते थे ॥ ३३ ॥

३४ – पीपलवा

अश्वत्थमूलमासाद्य तस्यैव फलमत्ति यः ।
पिप्पलवानिति ख्यातो भूमौ विप्रवरस्ततः ॥ ३४ ॥

पीपल के पेड़ की जड़ों में बैठकर जो पीपल के ही फल खाया करता था, वह विप्रवर पिप्पलवान (पीपलवा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥

३५ – मुछावला

श्मश्रुभिर्मुखमाच्छन्नो वर्तते यज्ञमण्डले ।
श्मश्रुलो हि समाख्यातः समुद्रान्तर्गतो भुवि ॥ ३५ ॥

दाढ़ी मूछों से जिसका मुँह ढ़का रहता था, वह ऋषि द्वीपों में श्मश्रुल (मुछावला) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३५ ॥

३६ – तिवाड़ी

त्रिद्वारं समागम्य जजाप जननीं श्रुतिम् ।
त्रिवारीति च लोकेस्मिन् विख्यातिमधुना गतः ॥ ३६ ॥

जो तीन द्वार का मकान बनाकर उसमें गायत्री जपा करता था, वह इस लोक में त्रिवारी (तिवाड़ी) के नाम से विख्यात हुआ ॥ ३६ ॥

३७ — पराशला

पराशार्थं च यो लाति यस्मात्स्माद्धनं बहु ।
ततः पराशलो विप्रो विख्यातो भुवनत्रये ॥ ३७ ॥

जो ऋषि समिधा सचय के लिये इधर उधर से पर्याप्त धन लाया करता था, वह लोकत्रय मे पराशल (पराशला) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३७ ॥

३८ — घाटवाल

घट्टमाश्रित्य कुण्डस्य भारत्या मंत्रमुज्जपन् ।
घट्टवानिति विप्रेश सर्वत्र विदितो ह्यभूत् ॥ ३८ ॥

जो यज्ञवेदी के किनारे बैठकर सरस्वती का जप किया करता था वह सर्वत्र घट्टवान (घाटवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३८ ॥

३९ — वणसिया

वने च निवसन्यो वै मन्त्र च द्वादशात्मकम् ।
जजाप परया भक्त्या वानस्यो विश्रुतो भुवि ॥ ३९ ॥

जो वन में निवास करता हुआ द्वादश अक्षरात्मक "नमो भगवते वासुदेवाय" मत्र का जप किया करता था, उसको वनाश्रय (वणसिया अथवा वानसायिक) नाम से पुकारते थे ॥ ३९ ॥

४० — सिंहोटा

सिंहपृष्ठसमारूढ भगवत्या प्रसादत ।
सर्वत्राटति यो धीमांस्तत सिंहोटक स्मृत ॥ ४० ॥

जो बुद्धिमान ऋषि भगवती के प्रसाद से सिंह पर चढ़कर सर्वत्र

घूमा करता था, वह सिद्घोटक (सिद्घोटा अथवा सिद्घोटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४० ॥

४१ – भुरटिया

भूर्भटं च तृणं सम्यगादाय शयनं रचेत् ।
भूर्भट इति विख्यातो बभूव धरणीतले ॥ ४१ ॥

जो भरूंट घास को बिछाकर सोया करता था, वह धरणि तल पर भूर्भट (भरूंटिया अथवा भुरटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥

४२ – टंकहारी

टंकं टंकं समादाय चाहारं कुरुते सदा ।
टंकहारीति विख्यातो लोके च परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥

जो नित्य चार चार मासे के ग्रास लेकर भोजन किया करता था, वह महर्षियों द्वारा टंकहारी नाम से विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥

४३ – अजमेरिया

अजे ब्रह्मणि यो मेधां संयोज्य कर्म संचरेत् ।
अजमेधा महीपृष्ठे सर्वत्र विदितो ह्यभूत् ॥ ४३ ॥

जो ऋषि अजन्मा ब्रह्म में बुद्धि लगा कर कर्म किया करता था, वह सर्वत्र पृथ्वी तल पर अजमेधा (अजमेरिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४३ ॥

४४ – डीडवाणिया

डिंडिमं च पुरस्कृत्य विचचार महीतले ।
डिंडिमवानिति ख्यातो भूसुरो भूमिमण्डले ॥ ४४ ॥

जो डमरू लेकर पृथ्वी पर विचरण किया करता था, वह ब्राह्मण

डिंडिमवान (डीडवाणिया अथवा डीडवाणा) नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ ॥ ४४ ॥

४५ – निठाणिया

निधनानि च भूयांसि समानाय धनेश्वरात् ।
विभज्य याचकेभ्योऽदान्निधानियो हि सोप्यभूत् ॥ ४५ ॥

जो ऋषि कुवेर से बहुत सा धन लाकर याचकों में बांटा करता था, वह निधानीय (निठानिणिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४५ ॥

४६ – डाभडा अथवा डावस्या

दर्भभारं समानाय तस्यास्तरणमाकरोत् ।
तेनैव हेतुना विप्र दर्भशायीति विश्रुत ॥ ४६ ॥

जो डाभ विछा कर सोया करता था, वह दर्भशायी (डाभडा अथवा डावस्या) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४६ ॥

४७ – खड्भड़ा अथवा निठुरा

निष्ठुर वचनं यस्तु वदत्येव जनेष्विह ।
तन्नाम निष्ठुरो लोके बभूव परमाद्भुतम् ॥ ४७ ॥

जो ऋषि मनुष्यों के समूह में कठोर वचन बोला करता था, इसीसे वह परमाद्भुत काम करने वाला निष्ठुर (निठुर अथवा खड्भड़ा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४७ ॥

४८ – बोहरा अथवा भूसुरा

व्यवहारप्रियो लोके व्यवहरति जनेष्विह ।
व्यवहारीति विप्रोऽसौ सततं ख्यातिमागत ॥ ४८ ॥

व्यवहार प्रिय जो ऋषि संसार में लेन देन का व्यवहार करता था, वह विप्र निरन्तर व्यवहारी (बोहरा अथवा भृगुरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४८ ॥

४९. — चांटणा

आयान्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा तस्मै यच्छति यो धनम् ।
तस्मात्तु विप्रो विख्यातो विभाजीति जनेषु सः ॥ ४९ ॥

जो समागत ब्राह्मण को देखकर उन्हें धन दिया करता था, वह विभाजी (चांटणा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४९ ॥

५० — शकुन्या

शकुनानि च सर्वाणि विचचार विचारयन् ।
शाकुनीति ततो लोके विख्यातिं गतवान्मुनिः ॥ ५० ॥

जो मुनि समस्त शकुनों का विचार करता हुआ विचरण करता था, वह लोक में शाकुनि (शकुन्या) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५० ॥

विदित होता है कि जिस प्रकार आधुनिक युग में विज्ञान का अनुसन्धान किया जाता है उसी प्रकार पूर्व काल में ग्राह्य विषयों का अनुसन्धान होता था । उपर्युक्त श्लोक से शकुन शास्त्र के अनुसन्धान का परिचय मिलता है ।

गोत्र प्रवर गोत (सासन या अवटंक) से भिन्न हैं । गोत्र प्रवर्तक ऋषियों को माना गया है । सभी ऋषि गोत्र प्रवर्तक नहीं होते । गोत्र प्रवर्तक ऋषियों की संख्या ४२ है । किन्तु ४२ गोत्र प्रवर्तक ऋषियों की नामावली एक साथ कहीं संग्रहीत नहीं मिलती है । विभिन्न ग्रन्थों में गोत्र प्रवर्तक ऋषियों की नामावली विभिन्न प्रकार से मिलती है ।

साधारणतया गोत्र वंश परम्परा का आधार है । आर्य हिन्दू समाज

में गोत्र को सबसे अधिक महत्व इसीलिये दिया गया है, किन्तु यह ध्यान मे रखने की बात है कि गोत्र का आधार वैदिक शाखायें है। पहले वेद की अनेक शाखायें थी। उन शाखाओं के अनुयायी शाखा प्रवर्तक को अपना गोत्र प्रवर्तक मानते थे। इसी आधार पर गोत्र प्रधान माना जाता था। दैव दुर्विपाक से वैदिक शाखायें आज नहीं रही किन्तु उनके प्रतीक गोत्र आज भी प्रचलित हैं।

खाण्डलविप्र जाति के गोत्र प्रवरों का उल्लेख निम्न प्रकार से है —

सासन	गोत्र		प्रवर	
१ नवहाल	अङ्गिरस गोत्र	त्रिप्रवर	अङ्गिरसगास्यगौत्तमा	
२ डीडवाण	”	”	”	”
३ गोरस्या	”	”	”	”
४ चील	जैमिनि गोत्र	त्रिप्रवर	जैमन्युतथ्यसाकृत्य	
५ नानू नाणिया निठाण	”	”	”	”
६ पीपलवा	पराशर गोत्र	त्रिप्रवर	पराशरशक्तिवसिष्ठा	
७ गोधला	”	”	”	”
८ सुन्दनाल	”	”	”	”
६ सिहोटा	कृष्णात्रेय गोत्र	त्रिप्रवर	कृष्णात्रेयात्रेयवात्स्या	
१० गुजवाड़ा	”	”	”	”
११ तिवारी	”	”	”	”
१२ खड़भड़ा (निठुरा)	घृतकौशिक गोत्र	त्रिप्रवर	कुशकौशिरस्य घुता	
१३ हायस्या	”	”	”	”
१४ सुरटिया	भरद्वाज गोत्र	त्रिप्रवर	भरद्वाजकौशिकजमदग्न्य	

१५ भाटीवाड़ा	भरद्वाज	गोत्र	त्रिप्रवर	भरद्वाजमरीचिकौशिका:
१६ बीलवाल	कौशिक	गोत्र	त्रिप्रवर	कौशिकात्रिजमदग्न्य:
१७ सोडया, शिवोवाह	"	"	"	"
१८ दुगोलिया	"	"	"	"
१९ मङ्गलहारा	गौतम	गोत्र	त्रिप्रवर	गौतमवासिष्टबार्हस्पत्य:
२० टङ्कहारी	"	"	"	"
२१ चोटिया	वसिष्ठ	गोत्र	त्रिप्रवर	वसिष्ठात्रिसांकृतय:
२२ पराशला (भुवाल)	"	"	"	"
२३ मण्डगिरा	साँकृति	गोत्र	त्रिप्रवर	अव्यवहारात्रिसांकृतय:
२४ कुञ्जवाड़	"	"	"	"
२५ माठोलिया	जमदग्नि	गोत्र	त्रिप्रवर	जमदग्न्यौर्वत्रसिष्ठा
२६ शाकुनिया	"	"	"	"
२७ वांठोलिया	व्याघ्रपद	गोत्र	त्रिप्रवर	कुशाकौशिकघृतकौशिका:
२८ घाटवाल	"	"	"	"
२९ व्यवहारी (वोहरा)	"	"	"	"
३० बोचीवाल	शाण्डिल्य	गोत्र	त्रिप्रवर	शाण्डिल्यासितदेवला:
३१ झुन्झुणोदिया	"	"	'	"
३२ जोशी	भारद्वाज	गोत्र	त्रिप्रवर	भारद्वाजाङ्गिरसबार्हस्पत्य
३३ प्रवाल (परवाल)	"	"	"	"
३४ सोती, (लदाणियां)	कश्यप	गोत्र	त्रिप्रवर	कश्यपाश्यारजैध्रुवा:
३५ बाटणा (सठणियां)	"	"	'	"

३६ सेवदा	मुद्गल गोत्र पंचप्रवर और्वच्यवनभार्गव
३७ मामरा	जमदग्न्याप्नुवत
३८ भरतनाडिया	बृहस्पति गोत्र त्रिप्रवर बृहस्पतिकपिलपार्वणा
३९ अजमेरिया	” ” ” ”
४० बशीवाल	वत्स्य गोत्र पंचप्रवर और्वच्यवनभार्गवजमद-
४१ डूचरिया	ग्न्याप्नुवत
४२ रूथला	कात्यायन गोत्र त्रिप्रवर अत्रिभृगुवशिष्ठा
४३ शुभरा	” ” ” ”
४४ पर्णासिया	अत्रि गोत्र त्रिप्रवर आत्र्यात्रेयशातातपा
४५ पठोठिया	” ” ” ”
४६ मुझाढरा	कौडिन्य गोत्र त्रिप्रवर कौडिन्यस्तिमितिकौत्सा
४७ गोवला	गर्ग गोत्र त्रिप्रवर गार्ग्यकौस्तुभमाण्डव्या
४८ रणवा	” ” ” ”
४९ भाड्याल	अगस्त्य गोत्र त्रिप्रवर अगस्त्यदधीचिजामदग्न्य
५० डुन्दरिया	काण्व गोत्र त्रिप्रवर काण्वाश्वत्थदेवला

वैदिक शाखा

अपनी परंपराओं में चली आरही ब्राह्मण जातियों में वैदिक शाखाओं का जो प्रचलन था, वह दैव दुर्विपाक से नष्ट हो गया। आज ब्राह्मण जातियों में वेदों का पठन पाठन तो रहा ही नहीं केवल शाखाओं का स्मरण मात्र रह गया है। वैदिक शाखाओं के विषय में सर्व साधारण की जानकारी भी बहुत कम है।

वैदिक शाखाओं के विषय में सबसे अधिक प्रकाश श्रीमद्भागवत से मिलता है। श्रीमद्भागवत और पस्पशाह्निक महाभाष्य के उल्लेखानुसार समस्त वेदों की एक हजार एक सौ तीस शाखायें थी। इन शाखाओं को पढ़ने वाले अलग अलग समूह थे, अथवा यों कहना चाहिये कि महर्षि वेदव्यास के समय में वैदिक साहित्य के अध्यन के लिये ग्यारह सौ तीस शिक्षणालय थे। इन शिक्षणालयों के स्नातक अपनी अपनी शाखाओं के अनुयायी होते थे। उस समय भी वस्तुतः वेदत्रयी का ही पठन पाठन था, किन्तु उस वेदत्रयी के पठन पाठन के प्रकार विभिन्न थे। इन्हीं विभिन्न प्रकारों को वैदिक शाखाओं के रूप में स्मरण किया गया है।

किस स्थान में कौनसी वैदिक शाखा का प्रचलन था, इस विषय में साधिकार कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस परिपाटी को नष्ट हुए एक दीर्घ काल व्यतीत हो चुका है और अब उसके ध्वंसावशेष भी नहीं मिलते।

खाण्डलविप्र जाति की वैदिक शाखा माध्यन्दिनी है। इस विषय में विशेष पिष्टपेषण की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि यह सर्वजन विदित है कि नर्मदा नदी से उत्तर में सर्वत्र माध्यन्दिनी शाखा ही प्रचलित है। अतः इतना ही लिखना पर्याप्त है कि खाण्डलविप्र जाति माध्यन्दिनी नामक वैदिक शाखा की अनुयायिनी है।

खाण्डलविप्र जाति के आदि पुरुष

जातियो के आदि पुरुष, उनके इतिहास और जीवन के संस्थापक होते हैं। उन महापुरुषों के जीवन चरित्र ही जातीय इतिहासों के आधार होते हैं। इतिहास निर्माण में आदि पुरुष का जो स्थान है वह दूसरे का नहीं हो सकता। आदि पुरुष अपने महत्व का प्रतीक जाति के रूप मे छोडकर मर कर भी अमर होते हैं। जब तक वह जाति ससार मे जीवित रहती है तब तक उसके आदि पुरुष का नाम श्रद्धा पूर्वक स्मरण किया जाता है।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के आदि पुरुषों मे भरद्वाज और विश्वामित्र प्रधान है। वैसे तो मधुछन्दादि पचास ऋषि इस जाति के प्रवर्तक हैं अत उन्हे भी इनका आदि पुरुष माना जासकता है किन्तु मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों के मानसोत्पत्ति के आधार पर पिता भरद्वाज और उनको दत्तक पुत्र के रूपमें स्वीकार करने वाले विश्वामित्र को ही खाण्डलविप्र जाति का आदि पुरुष मानना उपयुक्त है। क्योंकि मधुछन्दादि ऋषियों के पिता होने के नाते मूल रूप से भरद्वाज और विश्वामित्र ही माह्य है। विश्वामित्र से भी पहले भरद्वाज का नामोल्लेख इसलिये उपयुक्त है कि मधुछन्दादि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति का आधार भरद्वाज ऋषि का मानसिक तपोबल है। विश्वामित्र के तो वे दत्तक पुत्र हैं जो उत्पन्न होने के बाद हुए हैं। अत आदि पुरुषों में प्रथम भरद्वाज और फिर विश्वामित्र माह्य है।

भरद्वाज

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की उत्पत्ति विषयक कथाओ मे इस जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों को मानस पुत्र अथवा मानस ऋषि लिखा है और प्राय सर्वत्र ही मधुछन्दादि ऋषियों के लिये "मानसा ऋषय" विशेषण का उल्लेख मिलता है। इस मानसिक उत्पत्ति का वैज्ञानिक

आधार अब तक प्रकाश में नहीं आया है; फिर भी अध्यात्मवाद से प्रभावित समाज में इस प्रकार की उत्पत्ति का उल्लेख बहुत कुछ अंश में नहीं जान पड़ता है। इस प्रकार की मानसिक उत्पत्ति प्राचीन ऐतिहासिक वाङ्मय में अन्यत्र भी देखने में आती है। इसको एक संज्ञा विशेष का रूप दिया जा सकता है।

'मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषि महर्षि भरद्वाज के मानसोत्पन्न पुत्र थे, यह पुराण सम्मत हैं। इन मानस ऋषियों को उत्पन्न करने वाले महर्षि भरद्वाज रामायण कालीन भरद्वाज ऋषि से भिन्न थे। मधुच्छन्दादि ऋषियों का समय रामायण, महाभारत के बाद उपनिषद् काल में स्थिर होता है। तात्कालिक ऐतिहासिक साहित्य भी इसी पक्ष में है।

उपनिषद् काल के भरद्वाज ऋषि का परिचय तात्कालिक चिकित्सा शास्त्र में विशेष रूप से मिलता है। इन्द्र द्वारा उनका आयुर्वेदाध्ययन भी प्रसिद्ध है। काशीराज दिवोदास के प्रसंग में भी उनका उल्लेख मिलता है। ऐसी स्थिति में यह लिखना अनुचित होगा कि मधुच्छन्दादि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति के आधारभूत महर्षि भरद्वाज उपनिषद् काल के ही ऐतिहासिक महापुरुष थे।

रामायण कालीन भरद्वाज ऋषि–जिनका राम के सामने ही महाप्रयाण प्रसिद्ध है–का इस घटनाक्रम के नायक मधुच्छन्दादि ऋषियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। रामायण कालीन भरद्वाज और मधुच्छन्दादि ऋषियों में सामयिक अन्तर की जो खाई है उसके आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि रामायण काल के भरद्वाज ऋषि मधुच्छन्दादि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति के आधारभूत महर्षि भरद्वाज से पहले हुए थे। पौराणिक कथाओं के आधार पर इस विषय में भ्रान्त धारणा तो यह है कि–रामायण में प्रसिद्ध भरद्वाज ऋषि से ही मधुच्छन्दादि ऋषियों की उत्पत्ति हुई थी। किन्तु आदि कवि अपने रामायण महाकाव्य में इस विषय पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालते। सामयिक निर्णय भी इसके विपरीत है।

इस विषय में उपनिषद् कालीन साहित्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। 'भरद्वाज मानसोत्पन्ना' इसी स्थिति में समझा जासकता है, जबकि भरद्वाज का निर्णय सही रूप में हो। पुराणों के पात्र एक नाम के कई व्यक्ति भी हैं और इसीलिये पौराणिक कथाओं में प्राय नाम साम्य के कारण भ्रम हो ही जाता है। इतिहास की परम्परा के आधार पर उनका वर्गीकरण ही इस विषय में पर्याप्त प्रमाण है।

उपर्युक्त "भरद्वाज मानसोत्पन्ना" स्कन्द पुराणोक्त रेवा खण्ड (आनन्त्यखण्ड) का वाक्य है। केवल इस वाक्य के आधार पर तो भरद्वाज ऋषि का कोई निर्णय नहीं हो सकता कि-वे भरद्वाज ऋषि कौन थे, जिनके मानसिक तपोबल से मधुछन्दादि ऋषियों की उत्पत्ति हुई? किन्तु मधुछन्दादि ऋषियों का सामयिक आधार इस विषय में पुष्ट प्रमाण है और उसीके सहारे यह कहा जासकता है कि मधुछन्दादि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति के आधारभूत भरद्वाज ऋषि उपनिषद् काल के ऋषि थे।

भरद्वाज ऋषि की वंश परम्परा तात्कालिक समाज के अनुसार आर्ष परम्परा में थी। आर्ष परम्परा म भी उनकी उत्पत्ति ब्राह्मण वंश में थी। वर्णों या जातियों का प्रभुत्व उस समय विशेष न था, इसलिये वर्ण या जाति विशेष के साथ उनका उल्लेख नहीं मिलता। केवल गोत्र परम्परा का उल्लेख ही भरद्वाज ऋषि के साथ मिलता है।

भारत के आयुर्वेदिक साहित्य में इस ऋषि का विशिष्ट स्थान है। उस समय के ऋषि एवं ब्राह्मण समाज में इस महर्षि का विशेष प्रभाव देख पड़ता है। महर्षि भरद्वाज अपने समय के प्रमुख ऋषि थे। उपनिषद् काल में इस ऋषि की लम्बी इतिहास परम्परा साहित्य के साथ जुडी हुई है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि मधुछन्दादि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति के आधारभूत महर्षि भरद्वाज उपनिषद् कालीन ऋषि हैं जिनका इन्द्र का शिष्य होना प्रसिद्ध है। ऐसा सुनते हैं कि भरद्वाज ऋषि ने इन्द्र द्वारा चिकित्सा शास्त्र

का अध्ययन कर संसार को रोग व्याधि से बचाने में अपना जीवन लगाया था। इस भरद्वाज ऋषि की शिष्य परम्परा बहुत लम्बी चौड़ी थी।

काशीराज दिवोदास-जिन्हें धन्वन्तरी का अवतार भी बतलाया जाता है-इसी भरद्वाज ऋषि के समकालीन थे। काशीराज दिवोदास का पट्ट शिष्य, भारतीय आयुर्वेद शास्त्र का जाज्वल्यमान रत्न आचार्य सुश्रुत मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषियों में से एक था। काशीराज दिवोदास के प्रधान शिष्य इस सुश्रुताचार्य ने अपनी "सुश्रुत संहिता" में स्थान स्थान पर महर्षि भरद्वाज का उल्लेख किया है।

यद्यपि सुश्रुत ने भरद्वाज का उल्लेख अपने पिता के रूप में नहीं किया है, किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध है कि महर्षि भरद्वाज आचार्य सुश्रुत के समकालीन थे और भरद्वाज तथा आचार्य सुश्रुत का अत्यधिक निकटतम पारिवारिक सम्बन्ध था। स्कन्द पुराण के रेवाखण्डोक्त कथाभाग का "भरद्वाज मानसोत्पन्नाः" लेख इस आधार पर भी युक्तिसंगत माना जाता है।

यह कहना कठिन है कि आचार्य सुश्रुत ने भरद्वाज के साथ अपने पारिवारिक सम्बन्ध को व्यक्त क्यों नहीं किया? आचार्य सुश्रुत भी भरद्वाज मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषियों में से एक था। श्रीमद्भागवत, महाभारत स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड (आवन्त्य खण्ड) आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में मधुच्छन्दादि ऋषियों की जो नामावली उपलब्ध हुई है, उसमें आचार्य सुश्रुत के नाम का भी उल्लेख है। इसलिये आचार्य सुश्रुत का मधुच्छन्दादि ऋषियों में होना भी सिद्ध है। तात्कालिक इतिहास परम्परा में अन्य किसी सुश्रुत का उल्लेख नहीं मिलता।

सम्भव है आचार्य सुश्रुत ने सामयिक परम्परा के अनुसार अपने निजी सम्बन्ध को महत्व न देकर केवल महर्षि भरद्वाज के पाण्डित्य को ही महत्व दिया है। उसी के अनुसार "सुश्रुत संहिता" में भरद्वाज ऋषि का मत उद्धृत करते हुए केवल उनका नाम मात्र ही ग्रहण किया है।

आज भरद्वाज ऋषि का चरित्र क्रमबद्ध तो नहीं मिलता, किन्तु प्रसगोपात्त उद्धरण मिलते हैं, जो सही रूपमे ग्रहण करने योग्य हैं। क्योंकि वे इतिहास परम्परा मे प्रमाणभूत हैं। महर्षि भरद्वाज मधुछन्दादि ऋषियों के अत्यन्त निकट थे। मधुछन्दादि ऋषियों के साथ महर्षि भरद्वाज का पितृ तुल्य कोई निकटतम सम्बन्ध अवश्य था। मधुछन्दादि ऋषि इन महर्षि भरद्वाज के परम आज्ञाकारी थे। वे उनके सरक्षण मे भी रहे थे।

विश्वामित्र

प्राचीन वैदिक एव पौराणिक साहित्य मे विश्वामित्र नामक ऋषि विशेष प्रसिद्ध हैं। आदि काव्य रामायण मे गाधि वशज विश्वामित्र का उल्लेख मिलता है। प्राग्वैदिक और उत्तर वैदिक काल मे भी विश्वामित्र नामक अनेक ऋषियों का उल्लेख मिलता है। आदि काव्य रामायण के बाद भी विश्वामित्र नामक ऋषि अथवा ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ था, इसका निर्देश तात्कालिक इतिहास परम्परा करती है।

वस्तुत विश्वामित्र नाम के अनेक ऋषि हुए हैं, जो भिन्न भिन्न समय मे विभिन्न वंश परम्पराओं मे उत्पन्न हुए थे, किंतु नाम साम्य के कारण इन सब की कथायें परसपर मे गुम्फित हो गई हैं। आज उनका सही निर्णय करना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। इस विषय में केवल इतिहास परम्परा ही उच्च पथ प्रदर्शन कर सकती है।

खाण्डलविप्र जाति के आदि पुरुषों मे महर्षि भरद्वाज के बाद विश्वामित्र का उल्लेख है। महर्षि विश्वामित्र मधुछन्दादि ऋषियों के पिता थे, अथवा महर्षि विश्वामित्र ने मधुछन्दादि ऋषियों को अपना पौत्य पुत्र बनाया था, इस प्रकार का उल्लेख खाण्डलविप्रोत्पत्ति प्रकरण मे मिलता है।

वैदिक सहिताओं में भी मधुछन्दादि ऋषियों को विश्वामित्र का पुत्र लिखा है। औरस या दत्तक का जहा तक सम्बन्ध है वहा भरद्वाज और

मधुछन्दादि ऋषियों के सम्बन्ध से यह प्रकट होता है कि-संभवतः मधुछन्दादि ऋषि भरद्वाज के पुत्र हों, और विश्वामित्र ने उनको गोद लिया हो।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि भरद्वाज के मानस पुत्र थे और विश्वामित्र के दत्तक अथवा पौष्य पुत्र थे। इस विषय का सर्वांगीण समीक्षात्मक विवेचन ऊपर कर दिया गया है। इस आधार पर मधुछन्दादि ऋषियों का जो सम्बन्ध भरद्वाज और विश्वामित्र से है, उसका स्पष्टीकरण अपने आप ही हो जाता है। फिर भी विश्वामित्र के विषय में प्रसंग वश अन्य बातों पर प्रकाश डालना उपयुक्त होगा।

विश्वामित्र से सम्बन्ध रखने वाली जो कथायें पुराणों में संगृहीत हैं। वे सभी गाधि वंशज विश्वामित्र से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रखती हैं। यह एक भ्रान्त धारणा है और इसी भ्रान्त धारणा के कारण पुराणों में प्रायः यह भ्रम सर्वत्र फैला हुआ है। इस भ्रम का कारण विश्वामित्र नामों की अनेकता है। नाम साम्य के कारण सभी पूर्वापर विश्वामित्रों की कथायें परस्पर में गुम्फित हो गई हैं और गाधि वंशज विश्वामित्र के अधिक प्रसिद्ध होने से सभी का केन्द्र विन्दु यहीं आकर स्थिर हो गया है।

स्कन्द पुराणोक्त रेवा खण्ड (आवन्त्यखण्ड) का खाण्डलविप्रोत्पत्ति प्रकरण खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जातीय इतिहास की पुष्टि के लिये विशेष प्रामाणिक है। उस प्रकरण में मधुछन्दादि ऋषियों की उत्पत्ति स्थिति का वर्णन मिलता और साथ ही घटना विशेष द्वारा प्रसिद्ध उनके खाण्डलविप्र नाम का स्पष्टीकरण भी मिलता है। खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति का आधारभूत प्रमाण भी इसी कथाभाग से सम्बन्धित है। वहां भी विश्वामित्र को गाधि वंशज ही लिखा गया है जो गाधि वंशज विश्वामित्र के विशेष प्रसिद्ध होने के कारण हुआ एक भ्रम कहा जा सकता है।

इस विषय में अभी तक विशेष गवेषणा न होने तथा किसी विशिष्ट विद्वान् द्वारा इस विषय पर प्रकाश न डालने के कारण कुछ लोगों ने अपनी

भ्रान्त धारणाओं को पुष्ट करने का प्रयास किया है। ऐसा खण्डोक्त भ्रान्ति के कारण प्राय खाण्डलविप्र जातीय विद्वान भी इसे सही मानते चले आ रहे हैं। इस विषय पर आज तक किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ कि—"खाण्डलविप्र जाति का प्रधान पुरुष एक क्षत्रिय उस दशा में कदापि नहीं हो सकता, जब कि समाज मे जातीयता रूढ रूप धारण कर चुकी थी, और "गुणकर्मविभागश' का वर्ण सम्बन्धी आधार मिटकर जन्मजात जातीयता का उदय हो गया था।" इतिहास इस बात का साक्षी है कि उपनिषद् काल के पूर्व तक भारतीय समस्त ब्राह्मण जाति एक ही सूत्र मे सगठित थी। इसके बाद इसमे वर्गीकरण हुआ और वे वर्ग ही अलग अलग नामों से व्यवहृत होकर जातियों के रूप मे प्रकट हुए। इस परम्परा को रूढ रूप मिल जाने के बाद गाधि वंशज विश्वामित्र और खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों मे पिता पुत्र का सम्बन्ध होना असम्भव है।

यदि मधुछन्दादि ऋषियों के पिता तथाकथित क्षत्रिय विश्वामित्र होते तो वे ब्रह्मर्षि भरद्वाज के मानस पुत्रों को गोद कभी नहीं ले सकते थे। क्योंकि रूढ जातीयता के कारण उस समय वर्ण अथवा जाति भिन्न को गोद लेने की प्रथा मिट चुकी थी। इसलिये विश्वामित्र को क्षत्रिय मानकर ब्राह्मण सन्तान मधुछन्दादि ऋषियों को उनकी दत्तक सन्तान मानें तो युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। इतिहास परम्परा के आधार पर उस समय क्षत्रिय विश्वामित्र का विद्यमान होना भी नहीं पाया जाता। अत निष्कर्ष यही निकलता है। कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियो के पिता विश्वामित्र तथाकथित गाधि वंशज क्षत्रिय विश्वामित्र नहीं थे।

गाधि वशज विश्वामित्र के इतिहास के लिये आदि काव्य रामायण एक प्रामाणिक ग्रन्थ है और उसमे प्राप्त विवरण के अतिरिक्त गाधि वंशज

विश्वामित्र से सम्बन्ध रखने वाली कथायें गाधि वंशज विश्वामित्र की इतिहास परम्परा के बाहर की समझी जा सकती हैं। इनका ऐतिहासिक महत्व न होकर चारित्रिक अथवा अन्य क्षेत्रोपयोगी महत्व हो सकता है। खाण्डलविप्रोत्पत्ति प्रकरण में इस गाधि वंशज विश्वामित्र का उल्लेख नाम साम्य के कारण ही हुआ है। अन्यथा खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों से इस विश्वामित्र का कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता; क्योंकि आदि काव्य रामायण में गाधि वंशज विश्वामित्र का जो वर्णन मिलता है उसमें विश्वामित्र द्वारा अपने पूर्वजों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है किन्तु वहां विश्वामित्र के उत्तराधिकारियों का कोई वर्णन नहीं मिलता, आगे चलकर एक स्थान पर जनक के पुरोहित शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के पुत्रों का नाममात्र का उल्लेख मिलता है जो शुनःशेप की कथा से सम्बन्धित है। आदि काव्य रामायण में इसके अतिरिक्त और कहीं विश्वामित्र के साथ मधुच्छन्दादि ऋषियों का उल्लेख नहीं मिलता।

मधुच्छन्दादि ऋषियों में देवरात नामक ऋषि का उल्लेख मिलता है। यह देवरात विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दादि ऋषियों में प्रमुख थे। इनके चरित्र चित्रण में तैत्तरेयारण्यक में जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनमें विश्वामित्र का गाथि शब्द से उल्लेख है। गाथि कथाव्यास या कथावाचक का द्योतक है। कहीं कहीं कथाव्यास या कथावाचक के अर्थ में गाथक शब्द का प्रयोग भी मिलता है। इस आधार पर रेवा खण्डोक्त गाधि को गाथि मान लेना समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि गाधि और गाथि में शब्द साम्य न होने पर भी लगभग ध्वनि-साम्य है। इसी कारण संभवतः गाथि को गाधि समझ कर रूढ़ परम्परा के कारण रेवा खण्ड में राजर्षि विश्वामित्र का उल्लेख हुआ है।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दादि

ऋषियों ने प्रसिद्ध लोहार्गल तीर्थ में परशुराम का विष्णुयाग सम्पन्न करवाया था। यदि मधुछन्दादि ऋषि राजर्षि विश्वामित्र के पुत्र होते तो यह सर्वथा असंभव था, क्योंकि यामदग्न्य परशुराम तो क्षत्रियों के कट्टर शत्रु थे। ऐसी अवस्था में वे अपने शत्रु राजर्षि वंशजों को अपने यज्ञ में ऋत्विक् रूप में क्योंकर वरण कर सकते थे।

यदि लोहार्गल तीर्थ में निष्पन्न इस विष्णुयाग का कर्ता यामदग्न्य परशुराम को न मानें और अन्य किसी परशुराम को ही इस यज्ञ का कर्ता मानें तो भी इतिहास परम्परा के आधार पर यही प्रतीत होता है कि रूढ परम्परा के अनुसार अन्य परशुराम भी उस समय ब्राह्मणेतर वंशजों को यज्ञ में ऋत्विक् रूप में वरण नहीं कर सकता, क्योंकि उस समय रूढ जातीयता की जडें पाताल प्रवेश कर गई थी। इस आधार पर विश्वामित्र और उनके पुत्र मधुछन्दादि ऋषि ब्रह्मर्षि वंशज ही सिद्ध होते हैं।

खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र तो ब्रह्मर्षि वंशज थे और उनकी वंश परम्परा पहले के समान ही मधुछन्दादि ऋषियों और उनके बाद भी अविच्छिन्न है। मधुछन्दादि ऋषियों के विषय में जो कथायें उपलब्ध हैं वे सभी इस विषय में प्रमाण भूत हैं। इसलिये यही समीचीन प्रतीत होता है कि मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र कृष्णात्रेय वंश परम्परा में उत्पन्न ब्रह्मर्षि विश्वामित्र थे। जो गाधि वंशज तथा अन्य उपनिषद् काल में पूर्वोत्तरवर्ती ऋषियों से भिन्न थे।

इस कृष्णात्रेय वंशज महर्षि विश्वामित्र का उद्भव उपनिषद् काल में हुआ था। ये इन्द्र के प्रधान शिष्य भरद्वाज ऋषि के निकटतम सम्बन्धी थे। इन विश्वामित्र और भरद्वाज का सम्बन्ध विशेष रूप से आपसी है। इस बात की पुष्टि प्राय सभी प्रामाणिक ग्रन्थों से होती है।

इस विश्वामित्र का वर्णन आयुर्वेदिक साहित्य में तो पर्याप्त मिलता ही

हैं किन्तु इनके पुत्र मधुछन्दादि ऋषियों के इतिहास में प्रमाणभूत स्कन्द पुराणादि ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख प्रायः सर्वत्र मिलता है, किन्तु स्कन्द पुराणादि ग्रन्थों में इस ऋषि के साथ कौशिक और गाधि आदि शब्द मिलते हैं जो कुशिक अथवा गाधि वंशज विश्वामित्र से सम्बन्धित हैं।

सामयिक निर्णय के आधार पर यह लिखना उपयुक्त होगा कि कृष्णात्रेय वंशज ब्रह्मर्षि विश्वामित्रगाधि वंशज विश्वामित्र के एक दीर्घकाल बाद हुए हैं इसलिये वे इतिहास में अपना अस्तित्व भिन्न रूप से प्रतिपादित करते हैं। पुराणादि ग्रन्थों के कथाभागों का सम्बन्ध देशकाल और इतिहास के आधार पर रामायण कालीन गाधि वंशज विश्वामित्र तथा उपनिषद् काल से पूर्वोत्तरवर्ती अन्य विश्वामित्र नामक ऋषियों से नहीं है। स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड में भी नाम साम्य के कारण इस विश्वामित्र के लिये कौशिक गाधि आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं, यह इतिहास सम्मत है।

स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड (आवन्त्य खण्ड) की इस कथा का सम्बन्ध उपनिषद् काल से है। उस समय आर्य हिन्दू समाज वर्णव्यवस्था की कट्टरता के कारण उत्पन्न क्रान्ति से विरत हो चुका था। समाज में जन्मजात जातीयता पूर्णतः समाविष्ट हो चुकी थी। इसलिये यह कहना नितान्त अनुचित होगा कि मधुछन्दादि ऋषि गाधि वंशज विश्वामित्र की सन्तान थे, क्योंकि गाधि वंशज विश्वामित्र जन्मतः क्षत्रिय थे।

सम्मिलित समाज में यह होना संभव था, किन्तु सहस्त्रों वर्षों तक चलने वाला रामायण कालीन संघर्ष मिली जुली व्यवस्था अर्थात् अन्तर्जातीयता को मिटा चुका था। उस समय रूढ़ीवाद की जड़ें पाताल प्रवेश कर चुकी थी। इसलिये स्कन्द पुराणोक्त विश्वामित्र को मधुछन्दादि ब्रह्मर्षियों का पिता मानकर उसे गाधि वंशज नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रथम तो उपनिषद् काल में गाधि वंशज विश्वामित्र का विद्यमान होना ही इतिहास सम्मत नहीं, फिर यदि पौराणिक आधार पर मान भी लें तो

जातीय कट्टरता तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाण इसकी पुष्टि नहीं करते।

उपनिषद् काल मे जातियों मे ऊँच नीच और भेद भाव के भाव पाये जाते हैं। सघर्षो का भी थोड़ा बहुत इतिहास मिलता है, किन्तु रामायण काल, के समान नहीं। इसलिये इस विषय में विशेष पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। केवल एतावन्मात्र ही पर्याप्त होगा कि स्कन्द पुराण तथा अन्य ग्रन्थों मे मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र के नाम के साथ कौशिकादि जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वे नाम साम्य और विश्वामित्र नामों की अनेकता के कारण हैं तथा गाधि वंशज विश्वामित्र के विशेष प्रसिद्ध होने के कारण बाद के पौराणिक लेखक भ्रम में रहे हैं।

इस प्रसग को विशेष कलुषित करना भी उपयुक्त नहीं है। आदिकाव्य रामायण में राजर्षि विश्वामित्र का जो चरित्र उपलब्ध है वह निश्चित रूप से ब्रह्मर्षि विश्वामित्र से भिन्न है। इस विचार धारा के क्रमबद्ध ऐतिह्य का ऊपर स्पष्टीकरण कर दिया गया है। अत सिद्ध रूप से इस बात को स्वीकार कर लेना ही समीचीन प्रतीत होता है कि आदि काव्य में विश्वामित्र के ऊर्जस्वल होने के सभी प्रमाण ब्राह्मण क्षत्रिय वंशों में एक पतली रूप रेखा के मनोमालिन्य के उदाहरण हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि खाण्डलविप्र जाति के उत्पत्तिक्रम म वह सामञ्जस्य किसी भी पुष्ट प्रमाण से नहीं बैठता। यह कहना भी नितान्त सत्य है कि इतिहास के पूर्वापर को पूर्णतया न समझने के कारण ये सब त्रुटियां रह गई हैं।

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि होने का यह पुष्ट प्रमाण है कि महर्षि भरद्वाज ब्रह्मर्षि थे और इसी आधार पर उनकी सन्तान मधुछन्दादि ऋषि भी ब्रह्मर्षि थे। तात्कालिक परम्परा के आधार पर ब्राह्मण की सन्तान को ब्राह्मण ही गोद ले सकता था गोद लेने वाला और देने वाला दोनों का ही एक जातीय होना आवश्यक था।

औरस और दत्तक के विषय में केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि इतिहास और शास्त्र दोनों ही औरस और दत्तक का समर्थन करते हैं। इसलिये यदि मधुछन्दादि ऋषि विश्वामित्र के औरस पुत्र हैं तो भी ठीक हैं और यदि दत्तक हैं तो भी युक्तिसंगत हैं। मधुछन्दादि ऋषियों का उत्पत्ति प्रकरण विशेष रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि वे भरद्वाज के मानसोत्पन्न और विश्वामित्र के दत्तक अथवा पोष्य पुत्र थे।

परम्परया भरद्वाज और विश्वामित्र का निकटतम सम्बन्ध प्रतीत होता है। यही कारण था कि ये दोनों ऋषि एक दूसरे के सहायक के रूप में देख पड़ते हैं। आयुर्वेदिक साहित्य में भी इन दोनों ऋषियों का साथ साथ उल्लेख मिलता है। इसीलिये यदि मानसबल का वैज्ञानिक आधार सही रूप में नहीं मिले तो भी यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि-"भरद्वाज और विश्वामित्र में सन्तान आदान प्रदान का सम्बन्ध नहीं था" सन्तान को गोद लेने की प्रथा भारतीय आर्य हिन्दू समाज में बहुत प्राचीन है और इस आधार पर यह समीचीन प्रतीत होता है कि संभवतः विश्वामित्र ने भरद्वाज के पुत्रों को गोद लेकर अपना वंश विस्तार किया हो।

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक और प्रमुख पुरुष मधुछन्दादि ऋषि कृष्णात्रेय वंशज ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के दत्तक अथवा पौष्य पुत्र थे। महर्षि भरद्वाज और विश्वामित्र का आपसी सम्बन्ध इसका मूलाधार है। महर्षि भरद्वाज के निकट सम्बन्धी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र इनके निजी और अत्यधिक निकटतम थे। वे मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों के गोद लेने वाले पिता थे। भविष्यत् में इन्हीं विश्वामित्र के पुत्र मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानें खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति के नाम से विख्यात हुई।

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक

मूल पुरुष अथवा आदि पुरुष और प्रवर्तक मे साधारणतया कोई भेद नहीं, किन्तु आदि पुरुष से प्रवर्तक के आदि पुरुष को ग्रहण करने से प्रवर्तक दूसरी श्रेणी में आजाता है। इसीलिये खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि और इनके आदि पुरुष भरद्वाज, विश्वामित्र का अलग अलग उल्लेख किया गया है। वस्तुत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि ही थे, क्योंकि खाण्डल सज्ञा मधुछन्दादि ऋषियों को ही प्राप्त हुई थी।

मधुछन्दादि ऋषि

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि थे, यह ऊपर उल्लेख हो चुका है। ये ऋषि पचास थे। इनमें सबसे बडे ऋषि का नाम मधुछन्द था। इसीलिये इन सब का नाम मधुछन्दादि ऋषि पडा। इन ऋषियों की उत्पत्ति के विषय मे भरद्वाज और विश्वामित्र के परिचय प्रकरण में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। ये ऋषि महर्षि भरद्वाज के यहा से विश्वामित्र के यहा गोद आये थे। इनके शिक्षा दीक्षा आदि संस्कार विश्वामित्र के यहा ही हुए, और ये पौष्य भावेन विश्वामित्र के पुत्र कहलाये। इनका बचपन विश्वामित्र के आश्रम में व्यतीत हुआ और युवा होने पर विवाह आदि संस्कार भी वहीं सम्पन्न हुए।

मधुछन्दादि ऋषि भी तात्कालिक ऋषि समाज की चर्या के अनुसार इन्द्रवृत्ति परायण थे। पठन पाठन और यज्ञादि कर्म करना करवाना इनका प्रधान कार्य था। इन्होंने परशुराम का प्रसिद्ध विष्णुयाग लोहार्गल तीर्थ में सम्पन्न करवाया था। इनका विशेष महत्व उसी यज्ञ से प्रकट होता है। इन ऋषियों का खाण्डल नाम भी उसी यज्ञ के कारण पडा था।

इन ऋषियों के विवाह का उल्लेख ऊपर होगया है। ये भी अन्य ऋषियों के समान सपत्नीक थे। ऋषि परम्परा में सपत्नीक होना एक विशेष महत्व का द्योतक है। यद्यपि ये ऋषि लोग जप, तप और संयम साधन में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे किन्तु फिर भी गार्हस्थ्य धर्म का पालन भी इनके यहां होता था। अर्थात् पूर्ण तपस्वी और श्रेष्ठ गृही के रूप में ये ऋषि अपना जीवन व्यतीत करते थे।

मधुछन्दादि ऋषियों के पचास बड़े भाई और भी थे, जिनका उल्लेख खाण्डलविप्रोत्पत्ति प्रकरण में होचुका है। वे अपने पिता विश्वामित्र के अनुशासन में नहीं रहे, इसलिये महर्षि विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर उन्हें म्लेच्छ होने का शाप दे डाला जिससे वे म्लेच्छ हो गये। इसलिये मधुछन्दादि ऋषियों से उनका कोई सम्पर्क न रह सका।

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों की उपलब्ध नामावली निम्नलिखित है :—

मधुछन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान्।
अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रु कालपथस्तथा॥
कमलश्चैव विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः।
उलूको यमदूतश्च तथर्षिसैन्धवायनः॥
पर्णजङ्घश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः।
ऋषिर्वज्रस्तथा ख्यातः सालंकायन एव च॥
लीलाढ्यो नारदश्चैव तथा कूर्चामुखः स्मृतः।
वादुलिर्मुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च॥
आंघ्रिको नैकदृक् चैव शिलायूपः सितः शुचिः।
चक्रको मारुतन्तव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायन॥
श्यामायनो यतिश्चैव जाबालिः सुश्रुतस्तथा।
कारीपिरथसंश्रुत्य परपौरवतन्तवः॥

महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्ताड्कायन ।
तथैव चोपमहनस्तथर्षिश्चासुरायण ॥
मार्दमर्षिर्हिरण्याक्षो जगारिर्वाभ्रवायणि ।
भूतिर्विभूतिसूतश्च सूरकृत्तु तथैव च ॥
अरालिर्नाचिकश्चैव चाम्पेयश्च महानृषि ।
म अ प अ ७

इन मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख मधुछन्द ऋषि वेद मन्त्रों के द्रष्टा हैं। ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के आदि के दस सूक्तों के मन्त्रों के द्रष्टा महर्षि मधुछन्द हैं। इसका स्पष्टीकरण यथावकाश आगे होगा। मधुछन्दादि ऋषियों के वेद मन्त्रों के द्रष्टा होने से यह सिद्ध होता है कि वैदिक मन्त्रों की रचना एक दीर्घ काल तक होती रही है। इसके साथ साथ इन ऋषियों का आर्षत्व भी इससे प्रकट रूप में आता है।

परशुराम के विष्णुयाग में इन ऋषियों का ऋत्विक् होना इसका द्योतक है कि मधुछन्दादि ऋषि यज्ञ विधान और याज्ञिक क्रिया के पूर्ण पण्डित थे। उन्हें जननेतृत्व तथा जनशिक्षण में भी प्रमुख स्थान मिला था। इन की भावी सन्तान इसी कारण विशेष से प्रसिद्ध होकर लोहार्गल क्षेत्र में आचार्य का गौरवशाली स्थान प्राप्त कर सकी।

मधुछन्दादि ऋषियों के विषय में अब तक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर प्रचलित आर्ष परम्परा के अनुसार वे अपने समय के मन्त्र द्रष्टा ऋषि और जननेतृत्व करने वाले महापुरुष हैं।

जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के चरित्र में आर्षत्व की जो विशेषता है सो तो है ही किन्तु उनमें इतिहास निर्माता और प्रवर्तक की मनोवृत्ति का भी समावेश है। मधुछन्दादि ऋषि खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तन तक ही सीमित नहीं रहे हैं, उन्होंने इतिहास निर्माण कर विरासत में भी खाण्डलविप्र जाति के लिये बहुत कुछ छोड़ा है।

[illegible]

ऋषि लोग भारतीय आर्य संस्कृति के रक्षक प्रारंभ से ही रहे हैं। लोहार्गल क्षेत्र में संस्कृति रक्षण का कार्य मधुछन्दादि ऋषियों ने किया। मधुछन्दादि ऋषियों के बाद भी एक दीर्घकाल तक इनके वंशज संस्कृति के रक्षा केन्द्रों के अधिष्ठाता रहकर लोहार्गल क्षेत्र में देश और समाज के हित का बहुत बड़ा कार्य सम्पादन करते रहे हैं। आज भी प्रायः लोहार्गल क्षेत्रस्थ अधिकांश सांस्कृतिक केन्द्र मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तति के ही अधिकार में चले आरहे हैं।

यद्यपि परिवर्तन प्रत्यावर्तनों के कारण आज पहले वाली परिपाटी नष्ट होगई है और पूर्व काल से चले आरहे सांस्कृतिक केन्द्र मन्दिर, मठ जनता के श्रद्धा पात्र नहीं रहे, फिर भी यह मानने में किसी को संकोच न होगा कि ये मन्दिर, मठ प्रारंभ में संस्कृति के रक्षण पोषण के लिये ही स्थापित किये गये थे। पहले इनका स्वरूप आज से भिन्न अवश्य था, किन्तु उद्देश्य समाज के रक्षण पोषण और शिक्षण का ही था। उस पहले वाली व्यवस्था में कुछ परिवर्तन अवश्य होगया है। पर नैतिक आधार तो आज भी वही है।

आज के मन्दिर और मठ ही पूर्व काल के समाज शिक्षण तथा संस्कृति रक्षण केन्द्रों के प्रतीक हैं। लोहार्गल क्षेत्र (जो आज बृहद् राजस्थान के नाम से प्रसिद्ध है) में मधुछन्दादि ऋषियों के वंशज खाण्डलविप्रों का प्रभुत्व उन तथाकथित केन्द्रों पर सदा से ही था और आज भी सबसे अधिक है।

तात्पर्य यह है कि मधुछन्दादि ऋषियों ने अपने जीवन में ऐसे ठोस कार्यों को अपनाया था जो क्षण स्थायी न थे अपितु पूर्ण रूप से चिरस्थायी थे। उनका कार्य क्षेत्र ही उनकी सन्तति को विरासत में मिला था। इस दृष्टिकोण से मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तान खाण्डलविप्र जाति का महत्व आज भी विशेष है।

मधुछन्दादि ऋषियों के अवशेष

जिस प्रकार नैमिषारण्यादि स्थानों में हजारों ऋषि रहते थे और आस पास के जनपदों में बसने वाले जन समाज के वे नेता होते थे, वैसे ही मधुछन्दादि ऋषि भी लोहार्गल क्षेत्रस्थ जन समाज का नेतृत्व करते थे।

लोहार्गल तीर्थ के आस पास का स्थान पहले मरुकान्तार के नाम से प्रसिद्ध था। सामयिक परिवर्तनों के साथ साथ धीरे धीरे इस मरुकान्तार में मानव बसतियां बस गई थी। ऋचिकादि ऋषियों की तपोभूमि होने के कारण लोहार्गल का महत्व विशेष था और अब भी है। इस तपोभूमि में रहकर जनता जनार्दन का कल्याण सम्पादन करने में निरत रहने के कारण ही मधुछन्दादि ऋषि भी विशेष रूप से पूज्य हुए।

इन मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख कपिल, गालव आदि ऋषियों के आश्रम लोहार्गल से भी दूर दूर फैल कर प्रसिद्ध हुए। लोहार्गल से पूर्व में गालव ऋषि का आश्रम था जो आज भी गलता के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान जयपुर के पास ही पूर्व में पहाड़ों से घिरा हुआ है। इस स्थान पर नाना ऋषि महर्षि और सन्त महन्तों ने सिद्धियां प्राप्त की है। यह गलता (गालवाश्रम) वर्तमान में राजस्थान का प्रसिद्ध तीर्थ है। इस स्थान की रमणीयता के कारण ही मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख गालव ऋषि ने इसे अपनी तपोभूमि बनाया था।

इसी प्रकार लोहार्गल से पश्चिम में कपिलायतन (कोलायत) भी इन्हीं मधुछन्दादि ऋषियों में हुए महर्षि कपिल का आश्रम था। यह स्थान भी वर्तमान में राजस्थान का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां भी खाण्डलविप्र जाति के पूर्व पुरुषों ने अपने तपोबल के प्रभाव से जन समाज का उद्धार किया था।

यद्यपि गालवाश्रम (गलता) और कपिलायतन (कोलायत) के विषय में बहुत से विद्वान् दूसरी धारणा करेंगे, क्योंकि उनकी दृष्टि में गालव ऋषि

दूसरे हो सकते हैं और कपिल ऋषि के नाम से वे कर्दम प्रजापति के पुत्र महर्षि कपिल को इस आश्रम का संस्थापक मानेंगे। किन्तु बात वैसी इसलिये नहीं है कि कर्दम प्रजापति के समय में यह प्रदेश समुद्र द्वारा आक्रान्त था। यहां सिवा जल के और कुछ न था। इसीलिये वर्तमान कपिलायतन (कोलायत) कर्दम प्रजापति के पुत्र महर्षि कपिल का आश्रम नहीं हो सकता।

गालवाश्रम (गलता) के विषय में भी इसी प्रकार का समीचीन तथ्य प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण के समकालीन गालव ऋषि का आश्रम हस्तिनापुर के पास था। गालव ऋषि के पुराणोपाख्यान में यह स्पष्ट है। तात्पर्य यह है कि कपिलायतन (कोलायत) और गालवाश्रम (गलता) मधुछान्दादि ऋषियों के अन्तर्गत हुए गालव और कपिल के आश्रम हैं।

इस प्रकार देखने में आता है कि गंगा यमुना के पश्चिम में आज जो प्रान्त राजस्थान के नाम से प्रसिद्ध है वह उस समय मधुछन्दादि ऋषियों की तपोभूमि था। आरंभ में ऋषियों के आश्रम नदी तटों पर बनते थे किन्तु धीरे धीरे अन्य जलाशयों के आस पास भी ऋषि आश्रम बनने लगे थे। संभवतः लोहार्गल में भी पहले पर्याप्त जल स्रोत थे, इसीलिये महर्षि ऋचीक ने अपना आश्रम लोहार्गल में बनाया था। विश्वामित्र का महर्षि ऋचीक के आश्रम के निकट रहना यही सिद्ध करता है कि संभवतः विश्वामित्र और ऋचीक ऋषि में भी कोई निकटवर्ती सम्बन्ध था। इससे परम्परया मधुछन्दादि ऋषि भी ऋचीक की शिष्य परम्परा में माने जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त मधुछन्दादि ऋषियों के और भी अनेक अवशेष हैं, जो समय की लम्बी परम्परा व्यतीत हो जाने के कारण अप्रकाशित है। संभवतः भविष्यत् में समय पाकर वे प्रकाश में आ सकेंगे। लोहार्गल तीर्थ के आस पास के स्थानों में जो देवालय हैं उनमें खाण्डलविप्र जाति की जो भावनायें प्रस्फुटित होती है उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि संभवतः ये स्थान किसी समय इस जाति के पूर्व पुरुषों के उपासना गृह रहे हैं।

परशुराम और उनका विष्णुयाग

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों के चरित्र चित्रण एवं खाण्डलविप्र जाति के इतिहास में परशुराम द्वारा लोहागर्ल तीर्थ में निष्पन्न यज्ञ की कथा विशेष महत्व रखती है। इसी यज्ञ के कारण मधुच्छन्दादि ऋषियों का नाम खाण्डल पड़ा था और खाण्डलविप्र जाति ने प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्द पुराण में यह कथा जिस रूप में उपलब्ध होती है, उसके अनुसार इस यज्ञ के कर्ता जामदग्न्य परशुराम हैं, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित किया था। यद्यपि उपनिषद् कालीन इतिहास उस समय परशुराम का वर्तमान होना स्वीकार नहीं करता किन्तु पुराणों की बहुत-सी कथायें इस कथा का नायक जामदग्न्य परशुराम को ही मानती हैं। परशुराम ने क्षत्रिय वध जनित पाप-शान्ति के लिये यह यह यज्ञ किया था, ऐसा उल्लेख प्राय मिलता है। किन्तु स्कन्द पुराणोक्त छै अध्यायों का सूक्ष्म पर्यालोचन करने से परस्थिति कुछ और ही प्रतीत होती है।

वैसे तो साधारणतया स्कन्द पुराण में भी परशुराम को जमदग्नि का पुत्र ही लिखा गया है और प्राय सारा ही कथाभाग उस परशुराम से सम्बन्धित है। किन्तु "अयमेव महीपालो विप्राणां कुलपोषक" स्कन्द पुराण का यह उल्लेख किसी दूसरे परशुराम की ओर संकेत करता है। विदित होता है कि परशुराम नाम के किसी राजा ने किसी विशेष पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप यह यज्ञ किया था।

महाभारत और श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों के उल्लेख भी प्रच्छन्न रूप से इसी के पोषक हैं, किन्तु प्रसिद्धि के लिये वहां भी इतिहास प्रसिद्ध पुरुष का उल्लेख नाम साम्य के कारण हो गया प्रतीत होता है। क्योंकि उपनिषद्

काल में यामदग्न्य परशुराम का विद्यमान होना इतिहास सम्मत नहीं है।

यदि परशुराम के इस यज्ञ को यामदग्न्य परशुराम कृत मान लिया जाय तो उस अवस्था में मधुछन्दादि ऋषियों का उद्भव भी त्रेता युग के प्रथम चरण में ही मानना होगा, जो किसी प्रकार भी उपयुक्त दिखाई नहीं देता। परशुराम नामक किसी राजा की कथा-जिसने लोहार्गल में यह प्रसिद्ध विष्णुयाग किया था-का पुराण साहित्य में इतिहास प्रसिद्ध यामदग्न्य परशुराम के नाम से जनश्रुति और किंवदन्ती के आधार पर संगृहीत हो जाना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसीलिये संभवतः कथा का स्वरूप भी बदल गया है। पौराणिक साहित्य में एक नहीं अनेकों कथायें इसी प्रकार अपना अस्तित्व खोये हुए हैं।

यह कथा भी परशुराम नामक किसी राजा से सम्बन्धित है। नाम साम्य या अन्य किसी विशेष कारण से इसका रूप परिवर्तित हो गया है। किन्तु इतिहास और पुराण दोनों ही इस यज्ञ के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि परशुराम नामक किसी राजा ने उपनिषद् काल में लोहार्गल तीर्थ में विष्णुयाग किया था, और उस यज्ञ में सोने की वेदी बनाई गई थी। मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों ने उस यज्ञ में ऋत्विक् का कार्य किया था। दक्षिणा स्वरूप उन्हें उस वेदी के खण्ड मिले थे और खण्ड ग्रहण के कारण उनका नाम खण्डल या खाण्डल पड़ गया था, इसीलिये उनकी सन्तान भविष्यत् में खाण्डलविप्र अथवा खण्डेलवाल ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुई। खण्ड ग्रहण करने वालों की सन्तानों का समूह आगे चलकर एक जाति का स्वरूप पकड़ गया, जो आज खाण्डलविप्र जाति के नाम से प्रसिद्ध है।

मधुछन्दादि ऋषियों का परशुराम से एतावन्मात्र सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इस विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता कि परशुराम और मधुछन्दादि ऋषियों में कोई सम्बन्ध था। क्योंकि मधुछन्दादि ऋषियों के

समय में परशुराम थे ही नहीं। ऐसी स्थिति में परशुराम के साथ मधुछन्दादि ऋषियो का सम्बन्ध क्योंकर हो सकता है।

यदि लोहार्गल में विष्णुयाग करने वाले महीपाल परशुराम के साथ मधुछन्दादि का सम्बन्ध स्थापित करना चाहें तो उसका जातीय आधार न होगा केवल गुरु शिष्य का सम्बन्ध हो सकता है। किन्तु इसका निर्णय अभी अन्तरगर्भ है। त्रेता के प्रथम चरण में हुए जामदग्न्य परशुराम के साथ तो मधुछन्दादि ऋषियों का सम्बन्ध सामयिक आधार के कारण भी नहीं हो सकता। यह केवल एक भ्रम मात्र है।

* * *

उपर्युक्त तथ्य के विद्यमान होने पर भी पौराणिक विद्वानों का मन्तव्य है कि मधुछन्दादि ऋषियों द्वारा लोहार्गल तीर्थ में निष्पन्न यज्ञ के यजमान जामदग्न्य परशुराम थे। महाभारत काल में उनका विद्यमान होना सिद्ध है। वे कुरुकुलावतंस भीष्म पितामह के अस्त्र गुरु थे।

इसके साथ साथ परशुराम के चिरजीवी होने का भी उदाहरण देकर इसकी पुष्टि की जाती है। संभव है अलौकिक तपोनिधि ऋषियो में ऐसा होना भी सभव हो। इस आधार पर परशुराम को यमदग्नि का पुत्र भी मानना सभवत उपयुक्त हो किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है मधु-छन्दादि ऋषियों के साथ तो परशुराम का यही सम्बन्ध था कि उनका यज्ञ मधुछन्दादि ऋषियों ने कराया था और इसीलिये परशुराम मधुछन्दादि ऋषियों के यजमान थे न कि मूल पुरुष।

कुछ लोग परशुराम को मधुछन्दादि ऋषियों का मूल पुरुष मानते हैं किन्तु यह एक भ्रामक विचार है। परशुराम तो एक यजमान के रूप में मधुछन्दादि ऋषियों से सम्बन्धित हैं।

शुनःशेप की कथा

"शुनःशेप अजीगर्त नामक निर्धन ब्राह्मण का पुत्र था। उसके माता पिता निर्धनता के कारण अपनी अधिक सन्तानों का पालन नहीं कर सकते थे। इसलिये उन्होंने शुनःशेप को बलि पशु के रूप में बेच दिया था। विश्वामित्र भी उस यज्ञ में गये हुए थे। उन्होंने शुनःशेप की आर्त प्रार्थना पर उसे वरुण को प्रसन्न करने की वैदिक ऋचा बतला दी, जिसके प्रभाव से बलिदान हुआ शुनःशेप बच गया।" वैदिक साहित्य में उपलब्ध शुनःशेप की कथा का सार यही है।

इसके अतिरिक्त इस कथा का जो स्वरूप उपलब्ध हैं उसके अनुसार यह समझ में आता है कि विश्वामित्र शुनःशेप को बचाकर अपने घर ले आये। उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि 'शुनःशेप तुम्हारा भाई है, तुम लोग इसे अपना बड़ा भाई समझो।

इस पर विश्वामित्र के पचास बड़े पुत्रों ने कहा कि—"हम इसे अपना बड़ा भाई नहीं मान सकते।"

यह सुनते ही ऋषि विश्वामित्र परम क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपने उन बड़े पचास पुत्रों को शाप दे डाला कि—"तुम म्लेच्छ हो जाओ।"

इसके बाद ऋषि विश्वामित्र ने अपने छोटे पचास पुत्र मधुछन्दादि ऋषियों से भी वही प्रश्न किया। मधुछन्दादि ऋषि विश्वामित्र के क्रोध से भयभीत थे। उन्होंने विश्वामित्र की आज्ञा सहर्ष स्वीकार की, जिससे प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उनको सुखी होने का आशीर्वाद दिया।

मधुछन्दादि ऋषियों से सम्बन्धित कथाओं में भी शुनःशेप की कथा इसी रूप में मिलती है। इसका कोई सही निर्णय नहीं कि इन ऋषियों से सम्बन्धित शुनःशेप कौन था? हरिश्चन्द्र के वारुणेष्टि यज्ञ के अतिरिक्त इस कथा का दूसरा कोई मूलाधार प्रतीत नहीं होता।

शतपथ ब्राह्मण, वैत्तरेयारण्यक, स्कन्द पुराण और एक दो अन्य ग्रन्थों में शुनःशेप की कथा का सम्बन्ध विश्वामित्र और मधुच्छन्दादि ऋषियों से मिलता है। इस विषय में केवल यही समझ में आता है कि संभवतः शुनःशेप के प्राण बचाने के कारण ऋषि विश्वामित्र को उसके प्रति मोह हो गया था और इसीलिये उन्होंने शुनःशेप के प्रति विशेष ममत्व दिखाया है।

किन्तु परम्परया निष्कर्ष यह निकलता है कि शुनःशेप के प्राण बचाने वाले ऋषि विश्वामित्र मधुच्छन्दादि ऋषियों के पिता नहीं थे। वे तो और ही कोई विश्वामित्र थे क्योंकि शुनःशेप राजा हरिश्चन्द्र का समकालीन था। इसलिये उनके प्राण रक्षक विश्वामित्र भी राजा हरिश्चन्द्र के ही समकालीन थे, न कि श्रीकृष्ण के उत्तरवर्ती काल में होने वाले विश्वामित्र।

शुनःशेप को विश्वामित्र का भागिनेय भी लिखा है किन्तु इस विषय में यही निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवतः राजा हरिश्चन्द्र के समकालीन विश्वामित्र का भानजा शुनःशेप ही वारुणेष्टि यज्ञ में बलिदान हुआ होगा। जिसकी प्राण रक्षा उसके मामा विश्वामित्र ने की।

स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड में शुनःशेप को विजातीय लिखा है जिसके आधार पर यदि इसका कोई सम्बन्ध मधुच्छन्दादि ऋषियों से हो तो भी वह उनका सजातीय नहीं हो सकता। इस विषय में केवल इतना ही लिखना उपयुक्त प्रतीत होता है कि—"शुनःशेप नामक कोई व्यक्ति मधुच्छन्दादि ऋषियों के सम्पर्क में आया होगा जिसके कारण उनकी कथाओं में वैदिक साहित्य में समहीत शुनःशेप की कथा का समावेश हो गया होगा। अन्यथा मधुच्छन्दादि ऋषियों से शुनःशेप का कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

इतिहास के अनुसार सामयिक आधार पर भी शुनःशेप के साथ मधुच्छन्दादि ऋषियों का सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। क्योंकि शुनःशेप रामायण काल से भी पहले हुए राजा हरिश्चन्द्र का समकालीन है जब कि मधुच्छन्दादि ऋषि श्रीकृष्ण के भी उत्तरवर्ती काल में हुए हैं।

विजातीय शुनःशेप को मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख स्थान अवश्य दिया गया है, किन्तु किसी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आधार के बिना इसका कोई प्रभाव खाण्डलविप्र जाति के इतिहास पर नहीं पड़ सकता।

मधुछन्दादि ऋषियों में देवरात नामक ऋषि का उल्लेख है। यह देवरात इन ऋषियों में प्रमुख है। इस देवरात ऋषि को लेकर लोग यह कल्पना करते हैं कि देवरात ही शुनःशेप है, क्योंकि यज्ञ में बलिदान होने पर भी बच जाने के कारण लोग इसे देवगणों से सरक्षित समझ कर देवरात के नाम से पुकारने लगे थे।

इस प्रकार शुनःशेप का नाम देवरात पड़ा और इधर मधुछन्दादि ऋषियों में भी देवरात नामक ऋषि हुए हैं। लोगों ने इस देवरात को ही शुनःशेप मान लिया और मधुछन्दादि ऋषियों के साथ शुनःशेप की कथा जोड़ दी गई। वस्तुतः इस प्रकार शुनःशेप का सम्बन्ध मधुछन्दादि ऋषियों से नहीं हो सकता। साधारणतया शुनःशेप नामक व्यक्ति से संभवतः मधुछन्दादि ऋषियों का सम्बन्ध रहा होगा। जिस रूप में शुनःशेप की कथा उपलब्ध है उस रूप में तो शुनःशेप का मधुछन्दादि ऋषियों के साथ कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

इस विषय में स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड की उनचालीसवीं अध्याय का यह उल्लेख विशेष रूप से चिन्त्य है :-

"तेपि सर्वे ततः क्षौण्यां खण्डलाः स्युर्द्विजोत्तमाः।
येन क्रीताश्च ते खण्डाः सोपि वैश्यस्तु खण्डलः॥
अस्यैव वैश्यवर्यस्य पूज्याश्चैते तु सर्वदा।
नावमान्याः कदा तेपि तस्य श्रेयःपरिप्सवः॥
शुनःशेपो विजातीयस्ततो जाताः विजातयः।"

"इसके वाद वे द्विज श्रेष्ठ पृथ्वी पर खण्डल नाम से विख्यात हुए, और जिस वैश्य ने उन खण्डों को खरीदा वह भी खण्डल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वे ऋषि उस वैश्यवर्य के लिये सदा पूज्य हैं। उस वैश्य का श्रेय चाहने वाले उन ऋषियों का अपमान उसे कभी नहीं करना चाहिये। शुन शेप विजातीय था, इससे विजातीय उत्पन्न हुए।"

इस उल्लेख के आधार पर यह मानना उपयुक्त होगा कि शुन शेप नामक किसी वैश्य ने उन सौवर्ण खण्डों को खरीदा था जिससे वह और उसके वंशज खण्डल (खाण्डल या खण्डेलवाल) कहलाये। संभवत यह उल्लेख खण्डेलवाल वैश्यों की उत्पत्ति की ओर संकेत करता हो और इसी आधार पर शुन शेप का मधुछन्दादि ऋषियों से कोई सम्बन्ध रहा हो।

इसके अतिरिक्त उसी वैश्यखण्ड में आगे चलकर चालीसवीं अध्याय में शुन शेप के विषय में निम्न उल्लेख मिलता है —

"शुन शेप स्वयसिद्धो देवमानवरक्षित ।
महत्पाख्यानमस्यासीच्छ्रुत देवि ! त्वया पुरा ॥ १ ॥
शुन शेपोथ वोहराख्यस्तौनापततुरध्वरे ।
वेदी खण्डौ तदा तस्माद्वैश्यौ तौ विदितौ क्षितौ ॥ २ ॥"

"देवि पार्वती ! देव मानवों से रक्षित शुन शेप स्वयं सिद्ध था, उसका उपाख्यान तुमने पहले सुन लिया है। शुनशेप और वोहरा नामक उस यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुए थे। उनको वेदी के खण्ड भी इसीलिये नहीं मिल सके। वे पृथ्वी पर वैश्य नाम से विख्यात हुए।"

इससे विदित होता है कि उस समय भी आज कल के समान वोहरा वृत्ति प्रचलित थी। संभवत शुन शेप इसी वृत्ति से अपना जीवन यापन करता था। उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर संभवत कोई दूसरा वोहरा भी शुन शेप का सहयोगी था। यद्यपि शुन शेप ब्राह्मण का पुत्र था, उसे जन्मत वैश्य नहीं माना जा सकता। विदित होता है कि वैश्य के साथ रहकर वोहरा वृत्ति से जीवन यापन करने के कारण लोग उसे वैश्य कहने लगे हों।

मधुछन्दादि ऋषियों का निवास स्थान

मधुछन्दादि ऋषियों के निवास स्थान के विषय में जो प्रमाण उपलब्ध हैं, वे स्पष्ट हैं। उनके विषय में पिष्टपेषण की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

तां कश्यपस्त्वनुमतः ब्राह्मणाः खण्डशस्तदा।
व्यभजंस्ते यदा राजन्? प्रख्याताः खाण्डवायनाः॥

इस श्लोक के कारण खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के निवास स्थान के विषय में जिस भ्रम की उत्पत्ति हो रही थी उसका स्पष्टीकरण ऊपर किया जा चुका है।

मधुछन्दादि ऋषियों के निवास स्थान के विषय में कुछ लिखने के पूर्व इनके पिता विश्वामित्र के निवास स्थान के विषय में दो शब्द लिखना उपयुक्त होगा। कारण ऋषि विश्वामित्र का आश्रम कहां था? यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विश्वामित्र के आश्रम के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। विश्वामित्र के आश्रम का भौगोलिक परिचय भी किसी ग्रन्थ मे नहीं मिलता।

स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि विश्वामित्र का आश्रम महर्षि ऋचीक के आश्रम के निकट था। ऋचीक के आश्रम के विषय में भी कुछ सन्देह है। यदि इतिहास प्रसिद्ध महेन्द्रगिरि पर ऋचीक का आश्रम मानें तब तो वह कलिंग देशस्थ महेन्द्रगिरि है। और यदि स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड की छैः अध्यायों के अनुसार ऋषि ऋचीक का आश्रम लोहार्गल में मान लें तब विश्वामित्र और मधुछन्दादि ऋषियों के आश्रम और निवास का निर्णय सहज में ही हो जाता है। वस्तुस्थिति यही है कि ऋचीक का आश्रम लोहार्गल में ही था और उसके अनुसार विश्वामित्र का आश्रम भी लोहार्गल में ही प्रतीत होता है।

आदिकाव्य रामायण और पद्मपुराणादि में विश्वामित्र के पुष्कर में तप

करने का उल्लेख मिलता है। इस आधार पर लोग विश्वामित्र का आश्रम पुष्कर में भी सिद्ध करते हैं किन्तु पुष्कर में गाधिवंशज विश्वामित्र ने तपस्या की थी। मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र ने नहीं। संभवतः यह विश्वामित्र भी पुष्कर में रहे हों। क्योंकि पुष्कर भी ऋषिभूमि है।

इसी आधार पर मधुछन्दादि ऋषियों का निवास स्थान भी लोहार्गल तीर्थ ही सिद्ध होता है। मधुछन्दादि ऋषियों की कथा में लोहार्गल मालावन्त (मालखेत) पर्वत का स्पष्ट उल्लेख है। इसी पर्वत पर मधुछन्दादि ऋषियों का आश्रम था।

स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड की छै अध्यायों में मधुछन्दादि ऋषियों के निवास स्थान के विषय में जो प्रमाण उपलब्ध हैं वे सब उनके निवास स्थान के विषय में लोहार्गल की ओर ही सन्केत करते हैं।

"तत्रैवाश्रमिणोभूत्वा तिष्ठन्ति सर्वदा प्रिये !"

प्रिये ! वे ऋषि लोग वहीं लोहार्गल तीर्थ में आश्रम बनाकर रहते हैं।

फिर वहीं मधुछन्दादि ऋषियों के निवास स्थान का संकेत मिलता है —

"तेपि तत्र तपस्तेपु मालवद्गिरिमूर्धसु"

वे मधुछन्दादि ऋषि वहा लोहार्गल में मालवद् पर्वत शिखर पर तपस्या करने लगे।

इस उल्लेख के अनुसार मालवद् गिरि का स्पष्टीकरण वान्छनीय है। साधारणतया लोहार्गल में मालखेत नाम से जो पर्वत शिखर प्रसिद्ध है, स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड में उस पर्वत शिखर को मालवद् या मालावन्त भी लिखा है।

लोहार्गल और मालखेत, मालवद् या मालावन्त पर्वत

जिस समय मधुछन्दादि ऋषि विद्यमान थे, उस समय लोहार्गल तीर्थ का भौगोलिक परिचय कैसा था? यह लिखना असम्भव है, क्योंकि उस

समय के बाद पर्याप्त भौगोलिक परिवर्तन प्रत्यावर्तन हो चुके हैं। महाभारत काल में लोहार्गल से पूर्व में मत्स्य जनपद था और पश्चिम में मरुकान्तार रेगिस्तान था। उत्तर में कुरुजांगल और दक्षिण पश्चिम में क्रमशः सौराष्ट्र और गुर्जर देश थे।

इस स्थिति में भी समय समय पर नाना परिवर्तन प्रत्यावर्तन होने के बाद आज लोहार्गल तीर्थ और उसके चारों ओर के प्रदेशों की जो भौगोलिक स्थिति है वह पहले से बिलकुल भिन्न है। यद्यपि प्रायः सभी बातों में पूर्वकालीन लोहार्गल और वर्तमान लोहार्गल में परिवर्तन है, किन्तु खाण्डलविप्र जातीय इतिहास के दृष्टिकोण से आज भी लोहार्गल पूर्व के समान ही इस जाति के निवास स्थान विषयक पहलूओं का केन्द्र बिन्दु है। उस समय खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि मुख्य तीर्थ भूमि में रहते थे, आज उनकी सन्तानें तीर्थ स्थान के चारों ओर बसकर प्रसार पा रही है।

आज लोहार्गल राजस्थान का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यहां परशुराम ने प्रसिद्ध विष्णुयाग किया था। परशुराम के यज्ञ प्रकरण में भी यह उल्लेख मिलता है कि उस यज्ञ में वहां के निवासी मधुछन्दादि मानसोत्पन्न ऋषि ऋत्विक् हुए। इस उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि मधुछन्दादि ऋषि लोहार्गल के ही रहने वाले थे। मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि का यह प्रधान उल्लेख है, जो प्रायः सभी प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा मान्य है। आज भी मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तान खाण्डलविप्र जाति का प्रधान निवास स्थान लोहार्गल क्षेत्र ही है। आज सामयिक परिवर्तनों के अनुसार खाण्डलविप्र जाति समस्त देश में फैली हुई है, किन्तु उसका प्रधान निवास स्थान लोहार्गल के आस पास का प्रदेश ही है।

वर्तमान राजस्थान प्रान्त का लोहार्गल तीर्थ भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में से एक है। इस तीर्थ स्थान पर अनेक ऋषि महर्षियों ने समय

वंशीधर सेक्सरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य से

खाण्डलविप्र जाति के ऐतिहासिक महापुरुष महाप्रतापी जगसा बोहरा
द्वारा निर्मित नॉगलगढ़ का दक्षिण-पश्चिमी भाग

समय पर कठोर तपश्चर्या कर अपने लोकोत्तर प्रभाव का परिचय दिया है। वस्तुत यह एक ऋषिभूमि है।

लोहार्गल राजस्थान के मध्य मे स्थित है। इसके पूर्व मे जयपुर, दक्षिण मे उदयपुर, पश्चिम मे जोधपुर और उत्तर मे बीकानेर राज्य स्थित है। इन बडे बडे राज्यों और नगरों के बीच में स्थित लोहार्गल तीर्थ विन्ध्याचल की पर्वत मालाओं से सुशोभित है।

राजस्थान के सीमावर्ती सिरोही राज्य से चला हुआ पहाडी सिलसिला अजमेर होता हुआ उत्तर मे लोहार्गल तक चला गया है और यहा से पूर्व की ओर घूमकर पूर्व मे वैराठ तक पहुँच गया है। लोहार्गल का मुख्य तीर्थ स्थल पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है और समस्त तीर्थ का क्षेत्र फल लगभग चौबीस कोस मे फैला हुआ है, जिसकी परिक्रमा प्रति वर्ष हजारों यात्री करते हैं। लोहार्गल क्षेत्र के प्रसिद्ध स्थानो में शाकम्भरी, मालखेत, बरखण्डी आदि प्रमुख स्थान हैं। इन सब का महत्व भी तीर्थ स्थानों के समान ही है।

जिस प्रकार लोहार्गल का धार्मिक महत्व अधिक है उसी प्रकार उसका प्राकृतिक सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। पार्वत्य भूमि वैसे ही सौन्दर्य शालिनी और आकर्षक होती है। लोहार्गल क्षेत्र सजल और सघन वनों से सुशोभित है। पार्वत्य भूमि की रमणीयता परम मनोहर और चित्ताकर्षक है। ऊ ची ऊ ची पर्वत श्रेणिया हरियाली के कारण दर्शकों की आँखों को बरबश मुग्ध किये बिना नहीं रहती।

लोहार्गल के निकट कोई बडे शहर नहीं हैं और अत्यन्त निकट रेल्वे लाइन भी नहीं है किन्तु फिर भी इस तीर्थ स्थान मे यात्रियों की अपार भीड होती है। लोहार्गल से पश्चिम मे लगभग दस कोश की दूरी पर शेखावाटी प्रदेश का प्रसिद्ध कस्बा सीकर स्थित है। सीकर शेखावाटी प्रदेश का प्रमुख नगर है और जयपुर स्टेट रेल्वे का जंकशन है। लोहार्गल जाने वाले यात्रियों की सुविधा के लिये सीकर अत्यधिक उपयोगी है।

लोहार्गल तीर्थ में वर्ष में दो मेले लगते हैं। एक वैशाख की अमावस्या को और दूसरा भाद्रपद की अमावस्या को। वैशाख की अमावस्या को यहां अधिक भीड़ भाड़ नहीं होती क्योंकि ग्रीष्म ऋतु के कारण यहां का तापमान सहन नहीं किया जा सकता, किन्तु भाद्रपद की अमावस्या को यहां सबसे अधिक भीड़ होती है। उस समय यहां का मौसम परम मनोहर होजाता है।

यात्रियों की सुविधा के लिये सीकर जंक्शन पर अमावस्या से पांच दिन पहले से ही लारी और अन्य सवारियों का प्रबन्ध होजाता है। जिससे यात्री लोग आराम से लोहार्गल पहुँच जाते हैं।

सीकर के अतिरिक्त शेखावाटी का दूसरा प्रसिद्ध कस्बा नवलगढ़ लोहार्गल के निकट पड़ता है। मेले के दिनों में नवलगढ़ स्टेशन से भी हजारों यात्री लोहार्गल जाते हैं। पश्चिमोत्तर से आने वाले यात्रियों के लिये नवलगढ़ स्टेशन उपयुक्त पड़ता है और पूर्व दक्षिण से आने वालों के लिये सीकर स्टेशन उपयुक्त है।

पश्चिम में लोहार्गल रघुनाथगढ़ से ही प्रारंभ होजाता है। यहीं से पर्वत माला पूर्व को घूमती है। पर्वत के नीचे नीचे लोहार्गल को जाने का मार्ग है। रघुनाथगढ़ से लगभग चार मील चलने के बाद तीर्थ भूमिका प्रारम्भ होता है। यहां से तीर्थ स्थान की धर्मशालाएं और अन्य स्थान प्रारम्भ हो जाते हैं। तीर्थ स्थल पर पहुँचने के लिये पूर्व को जाने वाले मार्ग को छोड़ कर दक्षिण में चलना होता है। दोनों ओर ऊंची ऊंची पर्वत मालायें हैं। बीच में मार्ग है जो लोहार्गल के प्रधान तीर्थ कुण्ड तक चला गया है। मार्ग के दोनों ओर पर्वत श्रेणियों का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुन्दर होता है।

इसी प्रकार दक्षिण में सांगरवा नामक स्थान से लोहार्गल तीर्थ पर पहुँचने का मार्ग है जो पहाड़ों के अन्दर ही अन्दर लोहार्गल के प्रधान तीर्थ कुण्ड तक पहुँच जाता है। पूर्व में उदयपुर और खण्डेला के बीच घाटी से लोहार्गल तीर्थ का मार्ग प्रारंभ होता है। पश्चिम में रघुनाथगढ़ से भी पहाड़ों

के अन्दर होकर तीर्थ स्थान तक आने का मार्ग है, किन्तु वह बहुत दुर्गम होने से बहुत कम काम में आता है।

चौवीस कोस मे परिमित इस तीर्थ क्षेत्र मे मालखेत, मालवद् या मालावन्त नामक पर्वत शिखर है। खण्डेलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों का निवास स्थान यही पर्वत शिखर था। इस विषय का उल्लेख ऊपर भी हो चुका था। यद्यपि यह मालखेत, मालावन्त या मालवद् पर्वत मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों का स्थायी निवास स्थान था, यह निर्विवाद है, फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो विवेचन की अपेक्षा रखती हैं।

कतिपय महानुभाव मालखेत, मालावन्त या मालवद् के नाम से मालवा स्थित माल्यवान नामक पर्वत को इस जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि मानते हैं, किन्तु इस विषय मे पर्याप्त प्रमाण न मिलने के कारण यह तथ्य रूप मे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

मालवा मे भी खण्डेलविप्र जाति के कुछ तथ्य प्राप्त हुए हैं। उन्हीं के आधार पर सम्भवत मालवा का माल्यवान पर्वत मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि बताया जाता है। किन्तु मालव-स्थित माल्यवान पर्वत से लोहार्गल का कोई सम्बन्ध न होने से यही समझ मे आता है कि लोहार्गलस्थ मालखेत, मालावन्त या मालवद् नामक पर्वत शिखर ही मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि था।

संभवत लोहार्गल क्षेत्र मे प्रसार पाकर मधुछन्दादि ऋषियों की सतान खण्डेलविप्र जाति के प्रतापी पुरुष मालवा की ओर बढे हों और वहां उन्हें अपनी प्रतिष्ठा जमाने मे अधिक सफलता मिल गई हो, जिससे उनका सम्पर्क मालवा के माल्यवान पर्वत से होगया हो।

अन्यथा मालवा का माल्यवान और लोहार्गल तीर्थस्थ मालखेत, मालावन्त या मालवद् पर्वत शिखर अलग अलग हैं। इस विषय के स्पष्टीकरण के लिये स्कन्द पुराणोक्त यह प्रमाण पर्याप्त होगा कि —

"मालावन्तं जगामाशु लोहार्गलसमन्वितम्"

यहां उल्लिखित लोहार्गल समन्वित 'मालावन्त' ही मालखेत या मालवद् नामक पर्वत शिखर है, जो लोहार्गलस्थ पर्वत श्रेणियों में प्रमुख शिखर है।

मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि तो लोहार्गल समन्वित मालखेत, मालवद् या मालावन्त पर्वत शिखर ही है। उनकी सन्तान खाण्डलविप्र जाति भले ही भविष्यत् में मालवा के माल्यवान पर्वत से परीचित हुई हो। इस विषय में कुछ ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनका स्पष्टीकरण भी प्रसंगवश यहीं उपयुक्त होगा।

मालवा प्रान्त में खाण्डलविप्र जाति के कई एक श्रोत्रिय कुल आज भी विद्यमान हैं, जिनकी प्रतिष्ठा पीढ़ी परम्परा से वहां के राजकुलों और जनसाधारण में चली आ रही है। पिछले युग में उन श्रोत्रिय कुलों का प्रभाव मालवा में देखकर ही यह धारणा की जाती है।

पिछले युग में खाण्डलविप्र जाति के कुछ विद्वान् मालवा की ओर चले गये थे। वहां उन्हें अपनी विद्वत्ता के बल पर पर्याप्त सम्मान और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। किन्तु केवल इसी कारण उनके पूर्वजों का आदि निवास स्थान मालवा या मालवास्थ माल्यवान पर्वत नहीं हो सकता।

युक्तियुक्त तथ्य यही प्रतीत होता है कि राजस्थान का प्रसिद्ध तीर्थ लोहार्गल और उसमें स्थित मालखेत या मालवद्, मालवन्त नामक पर्वत शिखर ही खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों की आवास भूमि था। यही परशुराम के यज्ञ प्रकरण में महाभारतादि ग्रन्थों का उल्लेख है। देश, काल और भौगोलिक परिस्थितियां भी इसी की पुष्टि करती हैं।

मधुच्छन्दादि ऋषियों का प्रादुर्भाव काल

सामयिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने से कुछ बातें ऐसी समझ में आती हैं जिनका पिष्टपेषण किये बिना ही मधुच्छन्दादि ऋषियों का सामयिक निर्णय किया जा सकता है। स्कन्द पुराणोक्त रेवाखण्ड में यह स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है कि मधुच्छन्दादि ऋषि द्वापर के अन्त में हुए। इस विषय में महाभारत और श्रीमद्भागवत तथा अन्य ग्रन्थों के प्रमाण भी स्पष्ट हैं।

स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड की चालीसवीं अध्याय में मधुच्छन्दादि ऋषियों के सामयिक निर्णय का स्पष्ट उल्लेख है, जैसा कि—

"तेपुस्ते तप उत्कृष्टं द्वापरान्ते महेश्वरि।
तत खण्डान् समादाय पत्निभि सह संस्थिता ॥

स्कन्द पुराण रे० ख० अ० ४० श्लो० १०

"महेश्वरि! इसके बाद उस सुवर्ण वेदी के खण्ड लेकर अपनी पत्नियों सहित वहां रहते हुए उन मधुच्छन्दादि ऋषियों ने द्वापर के अन्त में उत्कृष्ट तप किया।"

इस श्लोक को प्रमाण पुष्टि में रखने के बाद मधुच्छन्दादि ऋषियों के सामयिक निर्णय के विषय में किसी अन्य प्रमाण की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि यह पुष्ट प्रमाण खाण्डलविप्र जातीय इतिहास के आधार भूत ग्रन्थ का उल्लेख है। फिर भी अन्य कारणों पर प्रकाश डालना उपयुक्त ही होगा।

मधुच्छन्दादि ऋषियों के चरित्र चित्रण में शुनःशेप की कथा का समन्वय, जामदग्न्य परशुराम के त्रेता के प्रथम भागीय उल्लेख खटकते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण भी शुनःशेप की कथा और परशुराम के यज्ञ प्रकरण में किया जा चुका है। रेवाखण्ड में जामदग्न्य परशुराम का उल्लेख होने पर भी उसके लिये महीपाल शब्द का प्रयोग जामदग्न्य परशुराम से भिन्न किसी

परशुराम की ओर संकेत करता है। यामदग्न्य परशुराम का अस्तित्व दाशरथि राम के उदय तक ही सीमित है। इससे यह स्वतः ही सिद्ध होता है कि मधुछन्दादि ऋषियों द्वारा यज्ञ सम्पन्न करवाने वाला परशुराम कोई दूसरा परशुराम था, जो उनका सम सामयिक था।

लोहार्गल में मधुछन्दादि ऋषियों द्वारा जो यज्ञ सम्पन्न हुआ उसका कर्ता तात्कालिक परशुराम नाम का कोई राजा या व्यक्ति विशेष था। यामदग्न्य परशुराम इतिहास प्रसिद्ध एक अवतार थे, इसलिये संभवतः उस यज्ञ की कथा भी समय पाकर उनकी कथाओं में मिल गई

भारत के प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्रज्ञ महर्षि सुश्रुत भी मधुछन्दादि ऋषियों में से ही एक थे। सुश्रुत का प्रादुर्भाव काल ही मधुछन्दादि ऋषियों का प्रादुर्भाव काल है। सुश्रुत सम्बन्धी ऐतिहासिक गवेषणाओं में भी उसका समय द्वापर के अन्त में ही निश्चित किया गया है। इस विषय में एक नहीं चिकित्सा शास्त्र के अनेकों ग्रन्थों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। चिकित्सा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर आयुर्वेद धुरीण भरद्वाज का निर्णय भी प्रकट होता है, उनका समय भी सुश्रुत से पहली पीढ़ी में सिद्ध होता है।

मधुछन्दादि ऋषियों के सामयिक निर्णय के वाद सभी वातें स्पष्ट रूप में सामने आती है। सामयिक निर्णय होने के वाद गाधि वंशज विश्वामित्र, यामदग्न्य परशुराम और हरिश्चन्द्र समकालीन शुनःशेप की कथाओं का समन्वय मधुछन्दादि ऋषियों के चरित्र चित्रण में स्थान नहीं पा सकता।

उपर्युक्त सभी वातों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ साथ श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों के निर्णय और स्कन्द पुराण का उल्लेख इतिहास के आधार की पुष्टि करता है। अतः उसको प्रमाण पुष्टि में रखते हुए यह मानना पड़ेगा कि वस्तुतः मधुछन्दादि ऋषियों का प्रादुर्भाव द्वापर के अन्त में ही हुआ था। मधुछन्दादि ऋषियों का कोई दूसरा समय निश्चित करना ऐतिहासिक आधार के वाहर की वात है।

मधुच्छन्दादि ऋषियों में प्रमुख ऋषि महर्षि

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों के पूर्वज भरद्वाज, विश्वामित्र आदि ऋषि इतिहास में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। जिस प्रकार मधुच्छन्दादि ऋषियों के पूर्वज इतिहास में विशेष प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार मधुच्छन्दादि ऋषियों और उनकी सन्तानों में भी कतिपय महानुभाव ऐसे हो गये हैं जो वास्तविक इतिहास निर्माता हैं और जिनका इतिहास में गौरवशाली स्थान सुरक्षित है।

वैसे तो सभी मधुच्छन्दादि ऋषि जनसाधारण का नेतृत्व करने के कारण अपने युग के प्रतिनिधि थे, पर उनमें कई एक ऋषि महर्षि ऐसे हो गये हैं जिनका चरित्र सामान्य स्तर से ऊपर उठकर एक विशेष महत्व का प्रतीक बन गया है। मधुच्छन्दादि ऋषियों में इस प्रकार के विशेष महत्व शाली ऋषि मधुच्छन्द, देवरात, सुश्रुत, गालव, कपिल अथर्व वेद के आचार्य बभ्रु और सैन्धवायन आदि हैं, तथा इनकी सन्तति में महर्षि याज्ञवल्क्य और जेता आदि हैं।

इन ऋषि महर्षियों के कार्य क्षेत्र अलग अलग अवश्य हैं, किन्तु सभी अपने अपने विषय के पारदृश्वा, प्रतिनिधि और इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष हैं। इन सब ऋषियों में ज्येष्ठ–जिनके कारण ये ऋषि मधुच्छन्दादि नाम से प्रसिद्ध हुए– महर्षि मधुच्छन्द मंत्र द्रष्टा ऋषि थे। इनके अतिरिक्त महर्षि बभ्रु सैन्धवायन आदि भी मंत्र द्रष्टा हैं। देवरात मंत्र द्रष्टा तो नहीं प्रतीत होते किन्तु उनकी वैदिक संहिताओं में प्रसिद्धि इसलिये विशेष है कि उनके पुत्र याज्ञवल्क्य परम प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं जिन्होंने 'वाजसनेयी' नामक वैदिक शाखा का निर्माण किया था। इसी कारण देवरात वैदिक संहिताओं में विशेष प्रसिद्ध हैं। याज्ञवल्क्य विषयक प्राय सभी कथाओं में देवरात का उल्लेख मिलता है।

सुश्रुत भारतीय चिकित्सा शास्त्र के देदिप्यमान रत्न हैं। इनके विषय में बहुत भारी गवेषणा भारतीय इतिहास वाङ्मय में हो चुकी है। महर्षि सुश्रुत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख थे, यह ऊपर लिखा जा चुका है।

गालव और कपिल के विषय में भी पहले आंशिक उल्लेख हो चुका है। इन दोनों ऋषियों ने धार्मिक क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त कर अपने नाम से तीर्थ स्थानों की नींव डाली थी जो आज भी उनकी स्मृति में विद्यमान रहकर उनके कीर्ति स्तंभ बने खड़े हैं।

महर्षि मधुछन्द

खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषि दो प्रकार या दो नामों से इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन ऋषियों की प्रथम प्रसिद्धि या पहला नाम मानस ऋषि या मानसोत्पन्न ऋषि है और दूसरी प्रसिद्धि या दूसरा नाम मधुछन्दादि ऋषि है। इन उभयात्मक प्रसिद्धियों या दोनों नामों के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। यहां प्रसंग वश इतना ही लिखना उपयुक्त होगा कि—"इन ऋषियों की पहली प्रसिद्धि या पहला नाम महर्षि भरद्वाज के मानसिक तपोबल से इनकी उत्पत्ति होने से पड़ा और दूसरी प्रसिद्धि अथवा दूसरा नाम इसलिये पड़ा कि इनमें सब से ज्येष्ठ ऋषि का नाम मधुछन्द था। अतः इन पचास भरद्वाज मानसोत्पन्न ऋषियों को मधुछन्दादि ऋषि कहते हैं।"

"इन भरद्वाज मानसोत्पन्न ऋषियो में ज्येष्ठ ऋषि का नाम मधुछन्द था। यह महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्द पुराणादि ग्रन्थों से सिद्ध होता है। प्रायः सभी प्रामाणिक ग्रन्थों में उपलब्ध इन ऋषियों की नामावली में भी सबसे पहले महर्षि मधुछन्द का ही नामोल्लेख है। इतिहास परम्परा भी इसी तथ्य का समर्थन करती है।

ऋषि मधुच्छन्द केवल आयु में ही ज्येष्ठ न थे, वे कार्य, ज्ञान और तप में भी अपने लघुभ्राताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ थे। उनका ज्ञान, विज्ञान और तप विशेष बढा चढा था। उनके गौरवशाली ज्ञान, विज्ञान और अनुभव के कारण ही इनके सभी भाई उनके अनुशासन में रहते थे। उनमें सर्वाधिक पुरुषत्व वर्तमान था।

महर्षि मधुच्छन्द वेद मंत्रों के द्रष्टा थे। द्वैपायन वेदव्यास के आप सहयोगी थे। द्वैपायन वेदव्यास ने वेदों का सकलन किया था। उस समय आपने वेदव्यास को वैदिक साहित्य के सकलन में बहुत अधिक सहयोग देकर अपने ज्ञान गौरव का परिचय दिया था।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के आदि के "अग्निमीले०" इत्यादि दश सूक्तों के मंत्र द्रष्टा आप ही हैं। प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने इस विषय में स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि–

"तत्राग्निमित्यादिक नवर्चं अग्नि नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्र, इत्यनुक्रमणिकायामुक्तत्वात् विश्वामित्र पुत्रो मधुच्छन्दो नामकस्तस्य सूक्तस्य द्रष्टृत्वात्।" अर्थात्–ऋग्वेद सहिता के प्रथम मण्डल के नौ ऋचा वाले प्रथम सूक्त के मंत्रों का द्रष्टा विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्द नामक ऋषि है। यह वैदिक अनुक्रमणिका का उल्लेख है। इसका स्पष्टीकरण सायण ने भी इसी प्रकार किया है कि–विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्द नामक ऋषि ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के "अग्निमीले०" इत्यादि ऋचा वाले आदि के दश सूक्तों के मंत्र द्रष्टा हैं।

इस विषय में उठ खडी होने वाली समस्या का हल रूप में स्पष्टीकरण पहले भी हो चुका है। प्रसगोपात्त यहा भी पुन इसका स्पष्टीकरण उपयुक्त प्रतीत होता है। मधुच्छन्दादि ऋषियों का प्रादुर्भाव काल श्रीकृष्णावतार के उत्तरवर्ती काल म हुआ था। इस आधार पर विद्वान् लोग यह आपत्ति कर सकते हैं कि वेदों का निर्माण काल श्रीकृष्णावतार से बहुत पहले का है।

किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वेदों का निर्माण एक दीर्घकाल तक होता रहा है और उनका लिपिबद्ध रूप में संकलन द्वैपायन वेदव्यास ने श्रीकृष्ण के उत्तरवर्ती काल में किया था। उस समय से पहले वेदों का रूप सीमित था, और उनका पठन पाठन मौखिक रूप में ही होता था। मूल वेद ऋग्वेद ही था। साम और यजुः इसके अंग थे जिनका उद्भव ऋग्वेद से ही है।

द्वैपायन वेदव्यास के प्रादुर्भाव से पूर्व तक ऋग्वेद का स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से लेकर नवम मण्डल तक था। द्वैपायन वेदव्यास ने अपने समकालीन ऋषि महर्षियों के सहयोग से वेदों का सर्वांगीण संकलन किया। उन्होंने अपने समकालीन ऋषियों से उपयुक्त मंत्रों की रचना करवाकर प्रथम मंडल उपोद्घात के रूप में और दशम मण्डल उपसंहार के रूप में जोड़कर ऋग्वेद का सर्वांगीण संकलन किया।

यद्यपि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में मधुछन्द ऋषि से पूर्ववर्ती ऋषियों के मंत्रों का भी संग्रह है, किन्तु प्रथम मंडल के आदि के दश सूक्तों के मंत्र द्रष्टा मधुछन्द ऋषि वेदव्यास के समकालीन थे, इसीलिये उनकी रचना को प्रथम स्थान दिया गया। इससे यह भी प्रकट होता है कि मधुछन्द ऋषि अपने समय के गौरवशाली ऋषि थे। उनका पाण्डित्य अद्वितीय था। वे ख्याति प्राप्त ज्ञान वृद्ध महापुरुष थे। द्वैपायन वेदव्यास से उनकी अवस्था भले ही कम रही हो किन्तु वे द्वैपायन वेदव्यास के लिये ज्ञानवृद्ध अवश्य थे।

खाण्डलविप्र जाति के लिये यह विशेष गौरव की बात है कि इस जाति के प्रवर्तकों में वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषि हैं, जिनका अनुमोदन इतिहास भी करता है। महर्षि भरद्वाज और विश्वामित्र के उत्तराधिकारी मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों में ज्येष्ठ महर्षि मधुछन्द ने अपने आत्मीय का जो परिचय दिया वह खाण्डलविप्र जाति के इतिहास की एक मूल्यवान कड़ी है।

यों तो सभी जातियों में इतिहास निर्माता महापुरुष हुए हैं और होते रहते हैं, किन्तु वेद मंत्रों के द्रष्टा और अपने युग का सही प्रतिनिधित्व करने

में खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक महापुरुषों और उनकी सन्तानों ने जो वैशिष्ट्य प्राप्त किया वैसा इतिहास में बहुत कम मिलता है।

- महर्षि मधुच्छन्द खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक ऋषियों में तो प्रमुख थे ।, किन्तु इसके साथ साथ वे अपने समकालीन अन्य ऋषियों में भी अपना मुख स्थान रखते थे। अखिल शास्त्र विचार दक्ष महर्षि द्वैपायन वेदव्यास जिस महर्षि मधुच्छन्द को अपने वैदिक संग्रह में प्रमुख स्थान दिया उसके ाण्डित्य के विषय में तो कहना ही क्या है।

़हर्षि देवरात

महर्षि मधुच्छन्द के कनिष्ठ भ्राता का नाम देवरात था। महर्षि देवरात के ांबन्ध में पौराणिक कथाओं के आधार पर एक भारी भ्रम फैला हुआ है। ौराणिक कथाओं के अनुसार अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप—जो हरिश्चन्द्र ा यज्ञ में बलि पशु के रूप में बेच दिया गया था—देवरात है। इस कथा के ाथ मधुच्छन्दादि ऋषियों की कथा भी जोडी गई है, और देवरात को जो पर्युक्त कथा के अनुसार पहले शुनःशेप था—मधुच्छन्दादि ऋषियों में प्रमुख ाना है। किन्तु इस काल्पनिक कथा से विपरीत ऐतिहासिक तथ्य ऐसे भी ं जो देवरात की इससे भिन्न उत्पत्ति के समर्थक है और उन्हीं के आधार पर ाह कहा जा सकता है कि मधुच्छन्दादि ऋषियों में प्रमुख देवरात का सम्बन्ध किसी शुनःशेप से नहीं है।

शुनःशेप का 'देवरात' नाम घटना विशेष से केवल ग्राह्य मात्र है। ुनःशेप के लिये 'देवरात' शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य प्रयोग केवल तैत्तरेयारण्यक ा किया गया है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि देवरात शब्द का प्रयोग देखते ही शुनःशेप का समन्वय सभी देवरात नामक व्यक्तियों से कर लिया ााय। वस्तुतः शुनःशेप देवरात मधुच्छन्दादि ऋषियों में हुए देवरात से भिन्न था। शुनःशेप देवरात रामायण काल से भी पहले राजा हरिश्चन्द्र का

समकालीन था। उससे मधुछन्दादि ऋषियों के भाई देवरात का कोई सम्बन्ध न था। मधुछन्दादि ऋषियों के भाई देवरात का प्रादुर्भाव द्वापर के अन्त में है। अतः शुनःशेप देवरात सामयिक आधार पर मधुछन्दादि ऋषियों से भिन्न है। द्वापर के अन्त में मधुछन्दादि ऋषियों के भाई देवरात के सिवा अन्य किसी देवरात का उल्लेख नहीं मिलता।

ऋषि देवरात ऋषि वैशम्पायन के समकालीन और उनके सहयोगी हैं। तैत्तरेयारण्यक में इस प्रकार की कथा मिलती है जिसके आधार पर ऋषि वैशम्पायन और देवरात का मैत्री सम्बन्ध स्पष्ट होता है। महर्षि देवरात का पुत्र याज्ञवल्क्य ऋषि वैशम्पायन का अन्तेवासी था।

देवरात स्वयं एक प्रसिद्ध महर्षि थे। वे मधुछन्दादि ऋषियों में अपने अग्रज मधुछन्द के समान ही प्रमुख थे। इनकी विशेष ख्याति इनके पुत्र याज्ञवल्क्य द्वारा हुई, जो एक प्रसिद्ध महर्षि हुआ है, जिसने श्रुति स्मृति विषयक निर्माण के द्वारा अपना स्थान बहुत अधिक गौरवशाली बनाया था।

आचार्य सुश्रुत

मधुछन्दादि ऋषियों में महर्षि सुश्रुत का नाम विशेष उल्लेख योग्य है, क्योंकि महर्षि सुश्रुत अपने समय का एक परम ऐतिहासिक महापुरुष है। महर्षि सुश्रुत द्वारा प्रणीत 'सुश्रुत संहिता' भारतीय चिकित्सा शास्त्र में अपना गौरवशाली स्थान रखती है।

यद्यपि आयुर्वेद धुरीण इस विषय में अपना मत दूसरा ही रखते होंगे किन्तु परम्परया यह स्वतः सिद्ध है कि उपनिषद् काल में होने वाले महर्षि सुश्रुत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के अन्तर्गत थे और वही अपने निन्यानवें भाइयों को साथ लेकर काशीराज दिवोदास के पास आयुर्वेदाध्ययन के लिये गये थे। प्रतीत होता है कि मधुछन्दादि सभी ऋषि आयुर्वेद में प्रगति रखते थे।

मधुच्छन्दादि ऋषियों से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं और आयुर्वैदिक ग्रन्थों से भी यही स्पष्टीकरण होता है कि महर्षि सुश्रुत उपनिषद् कालीन कृष्णात्रेय वंशज महर्षि विश्वामित्र के पुत्र और काशीराज दिवोदास के प्रधान शिष्य थे। इस विषय पर समीक्षक के रूप में विचार करने वाले प्राय सभी विद्वानों का एक ही मत है।

साधारणतया लोग महर्षि सुश्रुत को खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक महापुरुषों में मानने से हिचकिचाते हैं, किन्तु शास्त्रीय ग्रन्थों द्वारा सुपुष्ट प्रमाणों की उपलब्धि के बाद इसमें हिचकिचाने की कोई बात नहीं है क्योंकि मधुच्छन्दादि ऋषियों की नामावली में सुश्रुत का नामोल्लेख है। जिन ग्रन्थों के आधार पर मधुच्छन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र का निर्णय होता है वे ग्रन्थ ही सुश्रुत को खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों के अन्तर्गत मानने में पुष्ट प्रमाण उपस्थित करते हैं।

तात्पर्य यह है कि यदि महर्षि सुश्रुत किसी अन्य ऋषि परम्परा में होते तो उनका वंशागत परिचय किसी भिन्न रूप में उपलब्ध होता। अब तक महर्षि सुश्रुत के विषय में जो गवेषणा हुई है वह केवल आयुर्वैदिक दृष्टिकोण से ही की गई है। यही कारण है कि महर्षि सुश्रुत का जातीय गौरव विद्वानों की दृष्टि में नहीं आया।

आयुर्वैदिक दृष्टिकोण से हुई गवेषणा भी महर्षि सुश्रुत को महर्षि विश्वामित्र का पुत्र मानती है। उनका समय भी उपनिषद् काल में स्थिर किया गया है। यह ध्यान देने की बात है कि उपनिषद् काल में मधुच्छन्दादि ऋषियों के अन्तर्गत ही सुश्रुत नामक महर्षि हुआ था। अन्य किसी सुश्रुत का और तात्कालिक इतिहास परम्परा में नहीं मिलता।

काशीराज दिवोदास के पास सौ सहपाठियों सहित सुश्रुत का अध्ययनार्थ जाना भी इसका प्रबल प्रमाण है। मधुच्छन्दादि ऋषियों के पचास बड़े भाई और थे जो महर्षि विश्वामित्र के शाप से म्लेछ हो गये थे, अर्थात् विश्वामित्र के

सौ पुत्र थे। अपने भाइयों को छोड़कर सुश्रुत अन्य सौ सहपाठी कहां से प्राप्त करता! सुश्रुत संहिता में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है कि अपने पिता विश्वामित्र की आज्ञा से सुश्रुत अपने भाइयों को साथ लेकर काशीराज दिवोदास के आश्रम में आयुर्वेदाध्ययनार्थ गया था।

उपर्युक्त उल्लेखों से यही स्पष्ट होता है कि सुश्रुत संहिता का निर्माता भारतीय चिकित्सा शास्त्र का आचार्य महर्षि सुश्रुत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों के अन्तर्गत ही था। उसका स्थान अन्य क्षेत्रों में तो नहीं किन्तु चिकित्सा शास्त्र में विशेष महत्वशाली है।

समाज और राष्ट्र के जीवन में अपना गौरवशाली स्थान बनाने वाले महर्षि सुश्रुत ने खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक महापुरुषों में जन्म लेकर इस जाति के इतिहास को विशेष गौरवान्वित किया है।

सुश्रुत की सन्तति का वंशानुक्रम से कोई परिचय आज नहीं मिलता। जिस प्रकार अन्य मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानें खाण्डलविप्र जाति में विद्यमान हैं उसी प्रकार महर्षि सुश्रुत की सन्तानें भी इस जाति का अंग बनी हुई हैं। समय की लम्बी परम्परा को पार करने के कारण आज इसका निर्णय विशेष कठिन हो गया है कि खाण्डलविप्र जाति का कौनसा वर्ग किस महर्षि की सन्तान है।

किन्तु यह मानने मे किसी को आपत्ति नहीं होगी कि महर्षि सुश्रुत खाण्डलविप्र जाति की सामूहिक सम्पत्ति था। भारतीय आर्य हिन्दू समाज में उसका स्थान बहुत ऊंचा है। महर्षि सुश्रुत द्वारा प्रवर्तित जातीय इतिहास राष्ट्र के विशाल ऐतिहासिक वाङ्मय से सम्बन्धित है।

महर्षि सुश्रत का यह आंशिक परिचय देकर केवल यही प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है "कि महर्षि सुश्रुत खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख था।" उसका शास्त्रीय परिचय आयुर्वेदीय ग्रन्थों में विशेष रूपसे मिलता है।

गालव ऋषि और उनका गालवाश्रम (गलता)

राजस्थान के प्रसिद्ध नगर जयपुर से पूर्व मे पहाड़ो के बीच गलता नामक तीर्थ स्थान है। यह तीर्थ स्थान गालवाश्रम या गलता के नाम से प्रसिद्ध है। राजस्थान राज्य का यह प्रसिद्ध तीर्थ है। गालवाश्रम या गलता के विषय मे प्रचलित किंवदन्ती यह है कि-यहा गालव ऋषि ने तपस्या की थी। इस स्थान पर उनका परम पवित्र आश्रम था। आज जिस प्रकार यहा जल का स्रोत है, वैसे ही पहले भी था। सुनते हैं कि पहले यहा अविरल जल धारा प्रवाहित होती थी।

गालवाश्रम (गलता) प्राकृतिक सौन्दर्य का आगार है। ऊँची ऊँची पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ यह पवित्र तीर्थ स्थान वस्तुत प्रकृति देवी का नेपथ्य स्थल है जयपुर से गालवाश्रम (गलता) को जाने के दो मार्ग हैं। एक तो जयपुर के सूरजपोल दरवाजे से होते हुए पहाडी मार्ग से गलता पहुँचा जाता है। दूसरे सागानेर दरवाजे से निम्लकर पूर्व मे पुराना घाट होते हुए गलता को कच्ची सड़क चली गई है। गालवाश्रम (गलता) के प्रधान तीर्थ स्थल पर अनेक मठ और मन्दिर हैं तथा चारों और प्रकृति की अपूर्व रमणीयता विद्यमान है।

गालव ऋषि द्वारा स्थापित इस गालवाश्रम (गलता) का कोई क्रमबद्ध इतिहास पुराने समय का नहीं मिलता, किन्तु परम्परया यह सुनिश्चित है कि मधुच्छन्दादि ऋषियो मे हुए गालव ऋषि ने इस तीर्थ की नींव डाली थी। प्रारम्भ मे इस तीर्थ स्थल का वही रूप और व्यवस्था थी जो ऋषि आश्रमो की पूर्व काल मे होती थी।

ऋषि का आश्रम होने के कारण यह स्थान साधु सन्तो के लिये विशेष उपयोगी हुआ और ऋषि गालव के महाप्रस्थान के बाद इस तीर्थ स्थान में प्राय साधु सन्त बसते रहे। धीरे धीरे समय पाकर इस आश्रम ने तीर्थ का

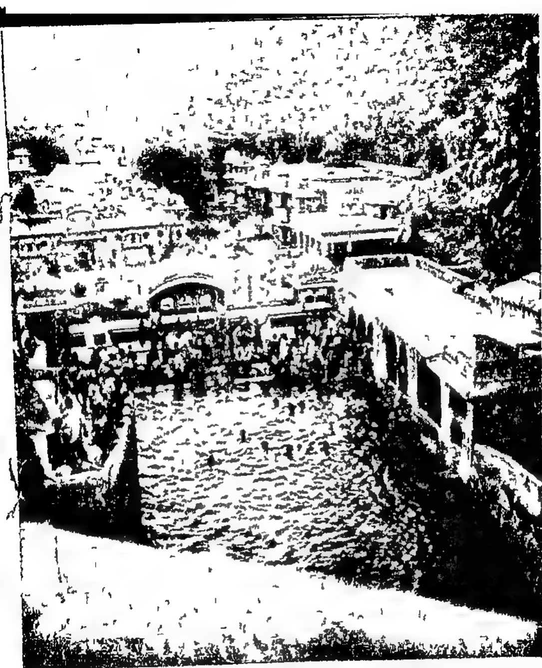
स्वरूप ग्रहण किया। यहां बड़े बड़े साधु सन्तों ने तपस्यायें की। भूतपूर्व जयपुर राज्य की राजधानी आमेर आने के बाद यह स्थान विशेष प्रसिद्ध हुआ।

जयपुर राज्य की राजधानी आमेर में आने से पहले इस गालवाश्रम (गलता) तीर्थ में नाथ मतानुयायी सन्तों का प्रभुत्व था। नाथों का गुरू लोकोत्तर प्रभावशाली था। उसका प्रभाव तात्कालिक नरेशों पर भी पड़ा। उन्होंने उस नाथ गुरु का प्रभाव देखकर नाथ मत की दीक्षा ले ली।

कुछ समय बाद यहां रामानन्दोपभुक्त रामानुज मतानुयायी पयोहारीजी महाराज का पदार्पण हुआ। पयोहारीजी महाराज भी अपूर्व लोकोत्तर प्रभावशाली थे। उनके प्रभाव के सामने उपर्युक्त नाथ गुरु न टिक सके और परिणाम यह हुआ कि आमेर नरेश ने नाथ मत का परित्याग कर पयोहारीजी महाराज से वैष्णव मत की दीक्षा ली।

आमेर राज्य के संस्थापक मूल पुरुष महाराजा पृथ्वीराज के समय में इस गालवाश्रम (गलता) तीर्थ की ख्याति बहुत अधिक बढ़ गई थी। उन दिनों रामानन्द सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वैष्णव श्री कृष्णदास पयोहारी जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है जो एक प्रसिद्ध और सिद्धिप्राप्त योगी थे—यहां तपस्या करते थे। इसके पूर्व इस स्थान में नाथ मत का प्रभुत्व था, यह भी ऊपर लिखा जा चुका है।

महाराजा पृथ्वीराज की पटरानी बालां बाई पयोहारीजी महाराज की शिष्या थी। श्रीकृष्णदासजी पयोहारी दाहिमा ब्राह्मण थे। नाभाजी ने अपनी भक्तमाल में उनका परिचय विस्तार पूर्वक दिया है। यहां इतना ही लिखना उपयुक्त होगा कि गलता की वर्तमान परम्परा के संस्थापक श्री कृष्णदासजी पयोहारी थे। उनकी साम्प्रदायिक परम्परा का उल्लेख स्वामी रामानुज से ही मिलता है। श्री कृष्णदासजी पयोहारी स्वामी अनन्तानन्द के शिष्य और स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य थे।



वंशीधर सेगसरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य से

गालवाश्रम (गलता)

तात्कालिक आमेर नरेश महाराजा पृथ्वीराज और उनकी पटरानी श्री बाला बाई के वैष्णवमत की दीक्षा लेने के बाद यहा गुरुगद्दी की स्थापना हुई। समृद्धिशाली आमेर (जयपुर) राज्य ने इस गुरुगद्दी को एक भारी जागीर प्रदान की जो आज भी गद्दी के अधिपतियों के अधिकार में है, जिससे रामानन्दी वैष्णवों का सेवा लाभ निर्बाध चल रहा है।

राजस्थान और विशेषकर जयपुर राज्य में रामानन्दोपभुक्त जितने वैष्णव मन्दिर हैं उन सबका उद्गम स्थल यह गालवाश्रम (गलता) है। उपर्युक्त पयोहारीजी महाराज जीवन मुक्त सन्त थे। वैष्णवमत की दीक्षा लेने पर उनको आमेर नरेश ने जो जागीर भेंट में दी थी, वह पयोहारीजी महाराज के शिष्यों ने संभाली।

पयोहारीजी महाराज के कील्हदास और अग्रदास नामक के नामक दो शिष्य थे। जिनमें ज्येष्ठ तो यहा गालवाश्रम (गलता) में रहे और दूसरे कनिष्ठ शिष्य शेखावाटी में रैवासा नामक स्थान में जा बसे, जहा उनको भी भारी जागीर प्राप्त हुई।

पयोहारीजी महाराज के दोनों शिष्यों ने रामानन्द सम्प्रदाय के दो प्रमुख पीठ स्थापित किये थे, जिनमें पहला गालवाश्रम (गलता) में और दूसरा लोहार्गल के पास रैवासा नामक स्थान में है। सयोग की बात है कि लोहार्गल के आस पास शेखावाटी में खाण्डलविप्र जाति का विशेष आवास होने से रैवासा के पीठाधिपति तबसे आज तक खाण्डलविप्र जाति के महानुभाव ही होते आये हैं। जयपुर राज्य के समस्त रामानन्दोपभुक्त वैष्णव मन्दिरों में क्रमश पहला स्थान गालवाश्रम (गलता) का और दूसरा रैवासा का है। इन मन्दिरों की परम्परा एक धार्मिक इतिहास को जन्म देती है, जो परम महत्वशाली है।

इस विषय में एक जन श्रुति इस प्रकार भी है कि "पहले गालवाश्रम वाले शैव थे और इनकी शिष्य परम्परा में जितने मन्दिर स्थापित हुए वे

सब शैवमतानुयायी हुए। तेरहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द ने उत्तर भारत में वैष्णव मत का प्रचार किया और सोलहवीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदासजी के मानस काव्य से उत्तर भारत में घर घर में वैष्णवता का प्रचार हो गया तो यहां के राजा भी वैष्णव मत की ओर झुक गये। राजा का झुकाव वैष्णव मत की ओर देखकर राज प्रदत्त भूसम्पत्ति का उपभोग करने वाले मन्दिरों के अधिपतियों ने भी वैष्णव मत को स्वीकार कर लिया। क्योंकि जब राजा वैष्णव मतानुयायी हो गये तो उनके द्वारा प्रदत्त जागीर और मन्दिरों के अधिकारियों का भी वैष्णव मतानुयायी होना आवश्यक हो गया। परिणाम स्वरूप मन्दिरों के सब अधिकारियों को भी वैष्णव मत की दीक्षा लेनी पड़ी। निदान जयपुर राज्य के सब मन्दिर वैष्णव होगये।"

किन्तु विशिष्ट स्रोतों और ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह जनश्रुति नितान्त निर्मूल और निराधार है। अतः इसको तथ्य रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि पयोहारीजी महाराज गलता की गद्दी के संस्थापक थे और वे कट्टर वैष्णव थे। उनके बाद तो इस प्रकार का परिवर्तन यहां हुआ नहीं। यदि महाराजा रामसिंहजी के शैव मत ग्रहण से इस जन श्रुति का कोई सम्बन्ध हो तो दूसरी बात है।

आज भी जयपुर राज्य के रामानन्दोपसुक्त समस्त वैष्णव मन्दिरों के अधिपति गालवाश्रम (गलता) की गद्दी को अपना गुरु मानते हैं। जयपुर राज्य के सभी रामानन्दोपसुक्त वैष्णव मन्दिरों में परम्परया गलता की शिष्य परम्परा है। इसके अतिरिक्त जयपुर में निम्बार्क, वाल्लभ और गौड़ीय आदि सम्प्रदायों के भी मन्दिर एवं महापीठ हैं, जिनका अपनी अपनी सम्प्रदायों के अनुसार सेवा का सुप्रबन्ध चलता है। इन अनेक मन्दिरों में भी खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न महानुभाव अधिपति हैं।

गालवाश्रम (गलता) की इस शिष्य परम्परा में स्थापित पीठ, मन्दिर और मठों का वही उद्देश्य है जो ऋषि गालव का था। अर्थात् गालव

ऋषि ने तात्कालिक सामाजिक जीवन के आधार पर लोकशिक्षण के लिये अपना आश्रम स्थापित किया था। उनके बाद भी उनकी शिष्य परम्परा में सभी धर्मपरायण और लोक शिक्षक महानुभाव होते रहे हैं जिन्हों ने सामाजिक जीवन में अपना प्रमुख स्थान रक्खा है।

मधुछन्दादि ऋषियों के प्रकरण में लिखा जा चुका है कि मधुछन्दादि ऋषि अपने समय के युग प्रतिनिधि थे। उन्हों ने अपने युग प्रतिनिधित्व को भली प्रकार निभाया था। अर्थात् लोहार्गल तीर्थ के आस पास बसने वाले जन समाज का नेतृत्व करने के साथ साथ मधुछन्दादि ऋषियों ने लोक शिक्षण की ओर भी प्रगति की थी। उनके द्वारा स्थापित गालवाश्रमादि स्थान इसके परिचायक हैं।

सम्भव गालवाश्रम के इतिहास के कुछ अन्य तथ्य भी अन्तर्गर्भ हों, किन्तु यह सुनिश्चित है कि प्रारम्भ में इस तीर्थ स्थान की स्थापना लोक शिक्षण के उद्देश्य से हुई थी। इस प्रकार के महान् तीर्थ स्थान के उद्भव का कारण लोक शिक्षण के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यह आर्य संस्कृति की एक परम्परा थी। पूर्वकाल में तो ऋषि आश्रमों में ही समाज के सब अंगों का वैध शिक्षण होता था।

मधुछन्दादि ऋषियों से गालवाश्रम का सम्बन्ध कतिपय महानुभाव कल्पित ठहराने की चेष्टा अवश्य करेंगे, किन्तु इस विषय का स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका है कि लोहागल तीर्थ के आस पास जो ऋषि समुदाय बसता था, उसमें प्रधानता मधुछन्दादि ऋषियों की थी और वे इस प्रदेश के जन नेतृत्व करने वाले युग प्रतिनिधि थे। मधुछन्दादि ऋषियों में हुए ऋषि गालव के अतिरिक्त अन्य किसी गालव ऋषि का उल्लेख इस विषय में नहीं मिलता। श्रीकृष्ण के समकालीन गालव ऋषि का आश्रम यहां नहीं था। वह तो हस्तिनापुर के पास यमुना नदी के किनारे था अतः इस विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

देश काल और इतिहास के आधार पर यह सुनिश्चित है कि जयपुर के पूर्व में दो मील की दूरी पर स्थित गालवाश्रम (गलता) मधुच्छन्दादि ऋषियों में हुए गालव ऋषि का आश्रम था। इस आश्रम द्वारा आगे चलकर जो सामाजिक हित हुए उनका उल्लेख प्रसंग वश यथावकाश हो सकेगा।

कपिलायतन (कोलायत) के संस्थापक महर्षि कपिल

मधुच्छन्दादि ऋषियों की नामावली में कपिल नामक ऋषि का उल्लेख मिलता है। यह कपिल ऋषि विशेष प्रतिभाशाली और लोकशिक्षक थे। कपिल ऋषि ने अपना आश्रम लोहार्गल तीर्थ से पश्चिम में बनाया था, जो आज भी कपिलायतन (कोलायतजी) के नाम से प्रसिद्ध है। यह कपिलायतन अर्थात् कोलायतजी पुष्कर के समान ही इस प्रान्त में मनोरम तीर्थ है। कार्तिक की की पूर्णिमा को यहां भी लक्षावधि यात्री आते हैं। सुन्दर घाट और मन्दिरों की मनोहर छटा मरुभूमि में दर्शनीय है। ऐसे सुन्दर सरोवर का ऐसे स्थान में स्थित होना ऋषियों का प्रभाव ही मानना चाहिये। यह स्थान वर्तमान राजस्थान राज्य के प्रसिद्ध नगर और भूतपूर्व बीकानेर राज्य की राजधानी बीकानेर से पश्चिम में है। प्रधान तीर्थ स्थान पर एक झील है, जिसमें यात्री लोग स्नान कर अपने पापों का प्रक्षालन करते हैं।

कपिलायतन (कोलायत) भी वर्तमान राजस्थान राज्य का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, यह उल्लेख ऊपर हो चुका है। धार्मिक दृष्टि से इसका महात्म्य भी विशेष है। यहां वर्ष में एक बार मेला लगता है महर्षि कपिल के बाद इस स्थान की इतिहास परम्परा लुप्तप्राय है।

साधारणतया लोग इस स्थान को कर्दम प्रजापति के पुत्र कपिल का आश्रम मानते हैं। वस्तुतः यह स्थान उस कपिल का नहीं है। क्योंकि जिस समय कर्दम प्रजापति के पुत्र कपिल ऋषि विद्यमान थे, उस समय वर्तमान कपिलायतन (कोलायत) के आसपास का सारा प्रदेश सागर-गर्भ में लीन

था। इसके बाद लम्बी इतिहास परम्परा में किसी दूसरे कपिल का उल्लेख नहीं मिलता।

कर्दम प्रजापति के पुत्र साख्य शास्त्रोपदेष्टा कपिलमुनि का आश्रम समुद्र-गर्भ मे कलकत्ता के पास है। यहा मकर सक्रान्ति को बहुत बडा मेला लगता है और ऐसी प्रसिद्धि है कि समुद्र का जल प्रवाह स्वत दूर हट कर भावुकों की श्रद्धा का निरास करता है।

उपनिषद् काल मे मधुच्छन्दादि ऋषियों मे कपिल नामक ऋषि हुए हैं, जिनका उपर्युक्त कपिलायतन से ऐतिहासिक व भोगोलिक सम्बन्ध वस्तुत ठीक है। यहा भी समय पाकर सन्त समाज की परम्परा चालू हुई। यह स्थान भी लोकशिक्षण के उद्देश्य से स्थापित ऋषि आश्रम था। यहा भी गालवाश्रम के समान लोकशिक्षण की पद्धति महर्षि कपिल ने प्रचलित की थी। पर यहा का प्रदेश शुष्क एवं रेतीला था, इसलिये यह स्थान विशेष जनोपयोगी सिद्ध न हो सका। फिर भी ऋषि आश्रम होने के कारण यह तीर्थ स्थान अवश्य बन गया। जनसाधारण मे इसके प्रति भी विशेष श्रद्धा पाई जाती है।

अथर्व वेद के आचार्य महर्षि अथर्वा और मैन्धरायन

आर्य हिन्दू जाति के प्राचीन वाङ्मय मे वैदिक साहित्य का स्थान बहुत ऊँचा है। विद्वानों का कथन है कि आर्य जाति के समृद्ध साहित्य निर्माण की आधारशिला वेद हैं। वैसे तो वेद तीन माने गये हैं और वेदों को वेदत्रयी कहते हैं, किन्तु जिस प्रकार ऋक्, यजु और साम वेद परम प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार अथर्व वेद भी विशेष प्रसिद्ध है। इस विषय में यह लिखना अनुचित न होगा कि अथर्व वेद की रचना अपेक्षा कृत अन्य वेदों के बाद में हुई है। इतिहास के आधार पर यह निर्संकोच कहा जा सकता है कि अथर्व वेद की रचना उस समय हुई थी जबकि आर्य जाति अपने

जीवन के प्रत्येक पहलू पर उन्नति कर चुकी थी और उसके सामाजिक जीवन में आर्थिक विषमतायें बढ़ रही थी। अथर्व वेद में जिन विषयों का वर्णन है वे प्रायः सांसारिक सुख दुःख घात अपघात प्रतिघात, मारण उच्चाटन, वशीकरण आदि तंत्रोक्त विधियों से परिपूर्ण हैं। इसके साथ साथ अथर्व वेद में कतिपय राष्ट्रीय विषयों का भी समावेश है, जैसे पृथिवी सूक्त इत्यादि।

जिस प्रकार महर्षि मधुच्छन्द, जेता, याज्ञवल्क्य आदि अन्य वेदों के मंत्र द्रष्टा हैं उसी प्रकार महर्षि बभ्रु और सैन्धवायन आदि अथर्व वेद के आचार्य माने गये हैं। अथर्व वेद के आचार्यों की परम्परा में बभ्रु, सैन्धवायन आदि के नाम प्रमुख हैं। इन आचार्यों ने अपनी लम्बी शिष्य परम्परा स्थापित कर अथर्व वेद का बहुत अधिक विस्तार किया था। अथर्व वेद के आचार्यों की परम्परा के विषय में श्रीमद्भागवत का यह प्रमाण प्रस्तुत विषय की सर्वांगीण पुष्टि करता है कि :—

अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम्।
संहितां सोपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान्॥ १ ॥

अथर्व वेद के ज्ञाता सुमन्तु ने अपने कबन्ध नामक शिष्य को अपनी संहिता पढ़ाई। कबन्ध ने उसके दो भाग कर पथ्य और वेददर्श नामक अपने दो शिष्यों को पढ़ाई॥ १ ॥

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः।
वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु
कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित्॥ २ ॥

वेददर्श ने अपनी संहिता के चार भाग किये और अपने चारों शिष्यों को क्रमशः एक एक भाग पढ़ाया। वेददर्श के चारों शिष्यों के नाम क्रमशः शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि थे। पथ्य के शिष्य कुमुद शुनक और जाजलि तीनों अथर्व वेद के ज्ञाता हुए॥ २ ॥

बभ्रु शिष्योऽथांगिरस सैन्धवायन एव च ।
अधीयेता संहिते द्वे सावर्ण्यायास्तथापरे ॥ ३ ॥
नक्षत्रकल्प शान्तिश्च कश्यपांगिरसादय ।
एते आथर्वणाचार्यो ॥ ४ ॥

शुनक के शिष्य बभ्रु और सैन्धवायन थे। इन दोनों ने दो संहितायें पढ़ी। बभ्रु और सैंधवयान के शिष्यों में सावर्णि आदि नक्षत्र कल्प, शान्ति कल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए, ये सभी अथर्व वेद के आचार्य कहे गये हैं।

इन अथर्व वेद के आचार्यों में महर्षि शुनक के प्रधान शिष्य बभ्रु और सैन्धवायन खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों में से थे। इन ऋषियों का नामोल्लेख अथर्व वेद संहिता के अतिरिक्त भी सर्वत्र मिलता है, अथर्व वेद की परम्परा में इन ऋषियों का आचार्य पद के साथ जो परिचय उपलब्ध है उसमें इनको मधुच्छन्दादि ऋषियों के अन्तर्गत माना है। अत यह सुस्पष्ट है कि मधुच्छन्दादि ऋषि वेद वेदांत, पुराण और उपनिषदादि सभी शास्त्रीय विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। ऋषि समुदाय में उनका गौरवशाली स्थान था। खाण्डलविप्र जाति के इतिहास में इन ऋषियों ने अपना जो स्थान बना रखा है वह जातीय जीवन का आलोक स्थल है।

महर्षि याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्य मधुच्छन्दादि ऋषियों में हुए महर्षि देवरात के पुत्र थे। देवरात के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है कि वे एक परम प्रतिभाशाली तपस्वी ऋषि थे। इनके पुत्र याज्ञवल्क्य ने इनका नाम बहुत अधिक समुज्ज्वल किया। उपनिषद्काल में वैदिक संहिताओं में विशेष ख्याति प्राप्त करने वाले महर्षि याज्ञवल्क्य ही हैं जो वैदिक शाखा के निर्माता और स्मृतिकार हैं।

याज्ञवल्क्य के विषय में उल्लेख करते हुए तैत्तरेयारण्यक में यह कथा मिलती है कि-"गुरु वैशम्पायन की ब्रह्महत्या दूर करने में प्रवृत्त चरक आदि सहपाठियों का याज्ञवल्क्य ने अपमान कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर गुरु, वैशम्पायन ने उन्हें अधीत वेदों का परित्याग करने का आदेश दिया। याज्ञवल्क्य ने गुरु की आज्ञानुसार अधीत वेदों को वमन रूपसे त्याग दिया। वमन रूप में परित्यक्त वेदों के कणों को वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिर पक्षी बनकर चुन लिया।

इधर वेद त्याग के कारण अब्राह्मण होने के भय से याज्ञवल्क्य ने भगवान् सूर्य का उपस्थान किया। भगवान् सूर्य ने अश्वरूप में उपस्थित होकर याज्ञवल्क्य को वेद प्रदान किये। इसीलिये याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवर्तिता वैदिक शाखा 'वाजसनेयी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

यद्यपि आज 'वाजसेनयी' शाखा मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित है किन्तु इसके प्रवर्तक महर्षि याज्ञवल्क्य हैं, जो खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों से दूसरी पीढ़ी में हुए थे। मधुच्छन्दादि ऋषि महर्षियों के जाति प्रवर्तन सम्बन्धी ऐतिहासिक तथ्यों के निर्माण के बाद खाण्डलविप्र जाति में सर्व प्रथम इतिहास निर्माता महर्षि याज्ञवल्क्य ही हुए। यद्यपि महर्षि याज्ञवल्क्य जाति के प्रवर्तकों में नहीं हैं किन्तु उनका प्रभाव और महत्व उनके समान है अतः उनका उल्लेख भी प्रवर्तकों के साथ ही कर देना उपयुक्त है।

महर्षि यज्ञवल्क्य केवल वैदिक शाखा प्रवर्तक ही न थे अपितु वे स्मृतिकार भी थे। महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा उपदिष्ट याज्ञवल्क्य स्मृति धर्मशास्त्र में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इतिहास के आधार पर इतिहास वेत्ता विद्वान् 'याज्ञवल्क्य स्मृति' को आठवीं नवीं शताब्दी में निर्मित मानते हैं, कुछ अंशों में यह बात ठीक ही प्रतीत होती है किन्तु यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'याज्ञवल्क्य स्मृति' तो महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा ही उपदिष्ट

है। ग्रन्थ रूप में उसका संकलन संभवत आठवीं नवीं शताब्दी मे हुआ होगा। जिस प्रकार मधुछन्दादि ऋषियो मे प्रधान ऋषि मधुछन्द वेद मंत्रों के द्रष्टा हैं, उसी प्रकार याज्ञवल्क्य प्रमुख स्मृति निर्माता हैं। जन साधारण में 'याज्ञवल्क्य स्मृति' का आदर मनु, पाराशर आदि स्मृतियों के समान ही विशेष रूप से है।

मधुछन्दादि ऋषियों का मान, सम्मान, और गौरव महर्षि याज्ञवल्क्य ने पूर्ण रूप से अक्षुण्ण रक्खा और अपनी वंश परम्परा के अनुसार ऋषि आदर्श को फलीभूत होने में योग दिया। जिस प्रकार मधुछन्दादि ऋषि अपने समय के युग प्रतिनिधि थे, उसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य भी अपने समय के युग प्रतिनिधि महापुरुष थे।

याज्ञवल्क्य मधुछन्दादि ऋषियों की योग्य सन्तान थे। मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानों मे महर्षि याज्ञवल्क्य के समकालीन और भी अनेक ऋषि महर्षि हुए किन्तु जो पाण्डित्य, प्रभाव, कीर्ति और आर्षत्व महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्राप्त किया, वह दूसरा कोई नहीं पा सका।

महर्षि याज्ञवल्क्य अपने समय के सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ और योगी थे। बृहद् आरण्यकोपनिषद् मे महर्षि याज्ञवल्क्य के विषय में एक कथा मिलती है, जिससे महर्षि याज्ञवल्क्य का सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता होना सिद्ध होता है। उस कथा का सारांश नीचे उद्धृत किया जाता है —

"याज्ञवल्क्य के समकालीन विदेह राजा जनक ने बहुदक्षिणा नामक बड़ा यज्ञ किया था। उस यज्ञ मे कुरु पाञ्चाल और अन्य भू भागों से बहुत से ब्राह्मण एकत्र हुए। जनक राजा ने ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी, अन्त में राजा ने सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता का परिचय पाने के लिये एक हजार गौएँ एकत्रित की और ब्राह्मणो से कहा कि—"आप लोगोंमे जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मिष्ठ हो, वह गौओं को अपने घर ले जाय।"

सब ब्राह्मण चुप होगये। कोई सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मिष्ठ होने का दावा न कर सका।

अन्त में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों को गौएं अपने घर ले चलने की आज्ञा दी। याज्ञवल्क्य के शिष्यों ने गुरु आज्ञा का पालन किया और वे एक हजार गौओं को महर्षि याज्ञवल्क्य के घर ले जाने लगे। इस पर सभी ब्राह्मण क्रुद्ध हुए। वे लोग इस बात को सहन नहीं कर सके कि—"हमारे सामने याज्ञवल्क्य "सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मिष्ठ" होने का दावा करे।

महाराज जनक के होता ऋत्विक् अश्वल ने आगे बढ़कर पूछा—"याज्ञवल्क्य ! क्या तुम्हीं हम सब में ब्रह्मिष्ठ हो !" यद्यपि ये शब्द अपमानजनक थे, परन्तु याज्ञवल्क्य ने इस उद्धतपन से किसी प्रकार का बुरा न माना और नम्रता पूर्वक उत्तर दिया :—

"ब्रह्मिष्ठ को तो हम नमस्कार करते हैं। हमें तो गौओं की चाह है, इसलिये हमने गौयें ली हैं।"

ब्रह्मनिष्ठाभिमानी अश्वल याज्ञवल्क्य को नीचा दिखाने के लिये उनसे एक के बाद एक बड़े बड़े जटिल प्रश्न करने लगे। याज्ञवल्क्य भी सबका उत्तर तुरन्त ही देते गये। इसके बाद ऋतभाग पुत्र आर्तभाग, लह्यपुत्र भुज्यु, चक्रपुत्र उषस्ति, कुषीतक पुत्र कहोल, वचक्नु पुत्री गार्गी और अरुण पुत्र उद्दालक ने कई गंभीर प्रश्न किये, जिनका उत्तर याज्ञवल्क्य ने तत्काल ही दे डाला। सब ब्राह्मण थक गये, तब अन्त में आगे बढ़कर गार्गी ने कहा—

"पूज्य ब्राह्मणो ! यदि आप लोगों की अनुमति हो तो मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न और करलूँ। यदि याज्ञवल्क्य मेरे दो प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे तो मैं यह मानलूंगी कि आपमें से कोई भी इस ब्रह्मवादी को न जीत सकेंगे।"

'ब्राह्मणों ने गार्गी को प्रश्न करने की अनुमति देदी।'

गार्गी ने गम्भीर स्वर से कहा—'याज्ञवल्क्य ! जिस प्रकार वीर पुत्र विदेहराज अथवा काशीराज उतारी हुई डोरी के धनुष पर फिर डोरी चढ़ाकर शत्रु को अत्यन्त पीड़ा देने वाले दो बाणों को हाथ में लेकर शत्रु के सामने खड़ा होता है उसी प्रकार मैं भी दो प्रश्न लेकर तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। यदि

तुम ब्रह्मवेत्ता हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। मेरे प्रश्नों का उत्तर देने पर ही हम तुम्हें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता मानेंगे।

याज्ञवल्क्य ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

"याज्ञवल्क्य! जो ब्रह्माण्ड से ऊपर है, जो ब्रह्माण्ड से नीचे है और जो स्वर्ग और पृथिवी के बीच में स्थित है तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्य रूप है, ऐसा शास्त्र जानने वाले लोग कहते हैं, वह 'सूत्रात्मा' (जगद्रूप सूत्र) किस में ओतप्रोत है!" गार्गी का प्रश्न था।

उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा—"गार्गी! जो स्वर्ग से ऊपर है, जो पृथिवी से नीचे है और जो स्वर्ग और पृथिवी के बीच में स्थित है तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्य रूप है, इस प्रकार शास्त्रवेत्ताओं द्वारा लक्षित व्याकृत (विकृति को प्राप्त कार्यरूप स्थूल) जगद्रूप सूत्र अन्तर्यामी रूप आकाश में ओतप्रोत है।"

याज्ञवल्क्य द्वारा प्रदत्त अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर गार्गी प्रसन्न हुई। उसने कहा—"याज्ञवल्क्य तुम्हारे स्पष्ट उत्तर के लिये मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। अब दूसरे प्रश्न के लिये तैयार हो जाओ।"

याज्ञवल्क्य दूसरा प्रश्न सुनने को तैयार हो गये।

एक बार उसी प्रश्न को दोहरा कर गार्गी ने याज्ञवल्क्य से कहा—"तुम कहते हो व्याकृत जगद्रूप तीनों कालों में सर्वदा अन्तर्यामी रूप आकाश में ओतप्रोत है तो वह अकाश किसमें ओतप्रोत है।"

"गार्गी! अन्तर्यामी रूप अव्याकृत का अधिष्ठान वही यह अक्षर है, इस अविनाशी शुद्ध ब्रह्म का वर्णन ब्रह्मवेत्तागण इस प्रकार करते हैं—यह स्थूल से भिन्न, सूक्ष्म से भिन्न, ह्रस्व से भिन्न, दीर्घ से भिन्न, लोहित से भिन्न, स्नेह से भिन्न, प्रकाश से भिन्न, अन्धकार से भिन्न, वायु से भिन्न, आकाश से भिन्न, संग रहित, रस रहित, गन्ध रहित, चक्षु रहित, श्रोत्र रहित, वाणी रहित, मन रहित, तेज रहित, प्राण रहित, मुख रहित, परिमाण रहित, छिद्र

रहित और देश, काल, वस्तु आदि परिच्छेद से रहित सर्वव्यापी अपरिच्छिन्न है, वह कुछ भी खाता नहीं और उसे भी कोई खाता नहीं, वह सब विशेषणों से रहित एक ही अद्वितीय है।"

इस प्रकार समस्त विशेषणों का ब्रह्म में निषेध करके उसका नियन्तापन बतलाते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा :—

"इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा में सूर्य और चन्द्रमा नियमित रूपसे वर्तते हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा से ही स्वर्ग और पृथिवी हाथ में रक्खे हुए पाषाण के समान मर्यादा में रहते हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा में रहकर हो निमेष, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और सम्वत्सर इस काल के अवयवों की गणना करने वाले सेवक के समान नियमित रूप से आते जाते हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर के शासन में रहकर ही पूर्ववाहिनी गंगा आदि नदियां श्वेत हिमालय आदि पर्वतों में से निकलकर समुद्र की ओर बहती हैं तथा पश्चिम वाहिनी सिन्धु आदि और अन्यान्य दिशाओं की ओर बहती हुई दूसरी नदियां इसी अक्षर के नियंत्रण में आज तक वैसे ही बहती हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा से मनुष्य दाताओं की प्रशंसा करते हैं और इन्द्रादि देवगण यजमान और पितृगण दर्वी के अनुगत हैं, अर्थात् देवता यजमान द्वारा किये हुए यज्ञ से और पितृगण उनके लिये किये गये होम में घी डालने वाले पात्र से पुष्ट होते हैं।"

फिर विचार पूर्वक बोलते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा :—

"गार्गी! इस अक्षर को बिना जाने यदि कोई पुरुष इस लोक में हजारों वर्षों तक देवताओं को उद्देश्य करके यज्ञ करता है, व्रतादि तप करता है तो भी उस कर्म का फल तो सान्त ही होता है। अर्थात् फल प्रदान कर वह कर्म नष्ट हो जाता है, वह अक्षय परम कल्याण को प्राप्त नहीं होता।

जो पुरुष इस अक्षर को नहीं जानकर मरता है, वह कृपण है और जो इस अक्षर को जानकर मरता है, वह ब्राह्मण हो जाता है।"

इसके बाद ब्रह्म का उपाधि रहित स्वरूप बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा—

"यह प्रसिद्ध अक्षर किसी को नहीं दीखता, परंतु यह सबको देखता है। इसकी ध्वनि कानों से कोई नहीं सुन सकता, परन्तु यह सबकी ध्वनि सुनता है। यह किसी की धारणा में नहीं आता परन्तु यह सबका मन्ता है। कोई इसे बुद्धि से नहीं जान सकता परन्तु यह सबका विज्ञाता है। इससे भिन्न द्रष्टा नहीं है, इससे भिन्न श्रोता नहीं है, इससे भिन्न कोई मन्ता नहीं है और इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है। वह अव्याकृत आकाश इसी प्रसिद्ध अक्षर अविनाशी ब्रह्म में ही ओतप्रोत है।"

महर्षि याज्ञवल्क्य के इस अद्भुत व्याख्यान को सुनकर गार्गी सन्तुष्ट हो गई। उसने प्रसन्नता पूर्वक अन्य ब्राह्मणों से कहा—कि तुम लोग याज्ञवल्क्य को नमस्कार करो। ब्रह्म सम्बन्धी विवाद में इसे कोई नहीं हरा सकता। इसकी पराजय कल्पना में भी नहीं आ सकती। यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है।

गार्गी के चुप होने के बाद शकल के पुत्र शाकल्य अथवा विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से कई प्रश्न किये। फिर याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा कि—अब मैं तुमसे भी एक प्रश्न करता हूँ, यदि इसका उत्तर तुम नहीं दे सकोगे तो तुम्हारा मस्तक कट कर पृथिवी पर गिर जायगा।

शाकल्य याज्ञवल्क्य के प्रश्न का उत्तर न दे सका। उसका मस्तक धड़ से अलग हो गया। याज्ञवल्क्य के ज्ञान और तेज को देखकर सारी सभा चकित हो गई।

पश्चात् याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मणों से कहा—"तुम लोगों में से कोई एक या सब मिलकर मुझ से कुछ पूछना चाहो तो पूछो।" किसी ने कुछ भी नहीं पूछा। चारों ओर याज्ञवल्क्य की जयध्वनि होने लगी। विज्ञानानन्द से याज्ञवल्क्य और गार्गी का चेहरा चमक रहा था। वस्तुतः महर्षि याज्ञवल्क्य अपने समय के सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता थे।

महर्षि जेता

महर्षि जेता दिव्य महर्षि मधुछन्द के पुत्र थे। जैसे महर्षि मधुछन्द वेद मंत्रों के द्रष्टा थे, वैसे ही महर्षि जेता भी वेद मंत्र द्रष्टा थे। ऋग्वेद संहिता के प्रथम मंडल के ग्यारहवे सूक्त के मंत्रों के द्रष्टा महर्षि मधुछन्द के पुत्र यही जेता ऋषि हैं। वैदिक अनुक्रमणिका में इनका भी उल्लेख मिलता है।

द्वैपायन वेदव्यास ने महर्षि मधुछन्द की रचना के बाद ही इनकी रचना को स्थान दिया है। इससे विदित होता है कि महर्षि जेता भी अपने पिता के समान ही उत्कृष्ट ऋक् प्रणेता थे। यदि इनकी रचना सामान्य होती तो इनकी रचना को इतना विशिष्ट स्थान न मिलता, किन्तु ऋग्वेद में प्रमुख स्थान पाने वाली महर्षि जेता की रचना ही इस दिव्य चक्षु महर्षि का गौरव प्रतिपादित करती है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ग्यारहवें सूक्त में उल्लिखित ऋचाओं के अतिरिक्त मंत्रों की रचना इन्होंने की या नहीं इसका पूर्ण परिचय अभी तक नहीं मिला है फिर भी धारणा की जाती है कि संभवतः महर्षि जेता ने और भी ऋक्प्रणयन किया था।

महर्षि जेता भी अपने पिता के समान ही परम प्रभावशाली और लोकोत्तर महापुरुष थे। उन्होंने अपने पिता के समान ही ऋषि समाज में अपना आदर्श स्थान बनाया था। महर्षि मधुछन्द के बाद यह ही याज्ञवल्क्यादि ऋषियों में प्रमुख थे। यद्यपि याज्ञवल्क्य इनसे विशेष प्रभावशाली थे किन्तु वे भी गौरव के कारण इनका सम्मान करते थे।

मधुछन्दादि ऋषियों की दूसरी पीढ़ी में महर्षि जेता ने खाण्डलविप्र जाति का नेतृत्व करते हुए उसका पथप्रदर्शन किया था। पूर्वजों के गौरव को इस महर्षि ने भी पूर्ववत् अक्षुण्ण रक्खा था।

प्रारम्भ काल के बाद

पहिले लिखा जा चुका है कि खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषि द्वापर के अन्त में हुए थे। उनके बाद उनका वंशक्रम याज्ञवल्क्यादि ऋषियों के द्वारा प्रसारित होकर सर्वत्र फैला था। द्वापरान्त के कुछ समय बाद ही सामाजिक संघर्ष जोर पकड़ गया था। और समाज का जीवन इतना अधिक अव्यवस्थित होगया था कि प्रत्येक वर्ग की ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन असंभव सा प्रतीत होने लगा था। इसीलिये उस समय वर्गों के इतिहास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। केवल सामूहिक रूप से समाज और प्रचलित संस्कृति को जीवित रखने के लिये तात्कालिक विद्वानों ने सामयिक इतिहास पर सामूहिक रूप से प्रकाश डाला।

एक दूसरा कारण यह भी था, उस समय तक आर्य अर्थात् हिन्दू जाति का ज्ञान विज्ञान चरम सीमा पर पहुँच चुका था। लोग भौतिकवाद की अन्तिम सीमा पर पहुँच कर अध्यात्मवाद की ओर झुक चले थे। समाज का मुख्य उद्देश्य परलोक चिन्तन बन गया था। इहलोक की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान था। यही कारण था कि महाभारत के उत्तरवर्ती काल से लेकर ईशा से छै सौ वर्ष पूर्व के पहले का भारतीय इतिहास बहुत कुछ अंधेरे में है। इसीलिये उक्त समय में खाण्डलविप्र जाति ने इतिहास पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ा।

बौद्ध कालीन संघर्ष के समय प्रायः सभी ब्राह्मण जातियां आन्तरिक समझौता कर बौद्ध धर्म से लोहा ले रहीं थी, इसलिये उस समय का इतिहास एक मिलेजुले रूप में है; अतः बौद्ध कालीन जातीय इतिहासों पर विभिन्नता से विचार नहीं किया जा सकता। तात्पर्य्य हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाभारत काल से लेकर विक्रम की पहली शताब्दी तक खाण्डलविप्र जाति का इतिहास भी अपना अस्तित्व भारतीय विशाल ब्राह्मण

समाज के इतिहास में व्याप्त किये हुए है। इसीलिये वह विशेष रूप से विभिन्नता की अपेक्षा नहीं रखता।

विक्रम की पहली शताब्दी के प्रारंभ से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक खाण्डलविप्र जाति का इतिहास कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट रूप से चलता है। इसके जो कुछ तथ्य इस दीर्घकाल में प्रकट हुए उनका उल्लेख भी यत्र तत्र मिलता है। विक्रम की आठवीं शदी में खाण्डलविप्र जाति में चतुर्भुज मिश्र का उदय हुआ जिसका उल्लेख इसी ग्रन्थ में अन्यत्र किया गया है। इसके बाद दसवीं, बारहवीं और चौदहवीं शदी में भी साधारणतया जाति के समुन्नत रूप का परिचय वहीभाटों (वड़वों) की पुस्तकों से मिलता है। फिर सोहलवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से उत्तरोत्तर विकासशील इतिहास का जो क्रम प्राप्त होता है वह पूर्णतया सुसम्बद्ध है। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से खाण्डलविप्र जातीय इतिहास का जो क्रम प्रचलित हुआ वह आज तक अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है।

खाण्डलविप्र जाति के प्रारंभिक इतिहास की सामग्री भारतीय पुराण साहित्य में पूर्ण रूप से उपलब्ध है। किन्तु इस विषय में यह लिखना अनुचित न होगा कि आज तक इस सामग्री का संकलन नहीं किया गया। थोड़ा बहुत प्रयास इस विषय में अवश्य हुआ किन्तु वह अधूरा रहा। यही कारण था कि इस जाति के इतिहास निर्माता आज तक छिपे हुए ही हैं। जाति का वर्तमान समाज भी अपने पूर्वजों से बहुत कम अंश में परिचित है। अपने इतिहास के प्रति जातीय सज्जनों की अनभिज्ञता और उपेक्षा का ही यह परिणाम है कि जातीय वैमनस्य फैलाने वाले लोगों ने खाण्डलविप्र जाति और उसके पूर्व पुरुषों के विषय में नाना प्रकार की जनश्रुतियां प्रचलित कर डाली जो जातीय सम्मान के लिये ठेस पहुंचाने वाली कही जा सकती हैं।

खाण्डलविप्र जाति के विषय में कलम उठाने वाले जातीय सज्जनों ने उन्हीं लोगों की मिथ्या कल्पना को मिटाने के लिये जो श्रम किया था, वह

इसलिये अधूरा रह गया कि उस समय तक खाण्डलविप्र जाति के जन समाज पर वर्तमान तार्किक युग का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। यदि आज के समान जागृति आज से पचास वर्ष पहले होती तो हमारा जातीय इतिहास अधूरा न रहता।

प्रकट रूप में एक दीर्घकाल से राजस्थान की ब्राह्मण जातियों में यह धारणा बद्ध मूल होगई है कि खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति गाधिनंदन क्षत्रिय विश्वामित्र से है। वे पहले राजर्षि थे। बाद में तपस्या के प्रभाव से ब्राह्मण होगये किन्तु जन्मत वे क्षत्रिय थे। इस विषय का स्पष्टीकरण विश्वामित्र के प्रकरण में हो चुका है।

इस भ्रान्त धारणा के बद्धमूल होने का कारण यह था कि राजस्थान की प्रमुख ब्राह्मण जातियों के विद्वानों ने भी सर्वसाधारण के सामने इसी प्रकार की बातें कहना अपनी प्रकृति में सम्मिलित कर लिया था।

वर्तमान प्रगति युग के प्रारम्भ में जब सभी जातियां उत्थान की ओर अग्रसर होने लगी और जातियों के इतिहास लिखे जाने लगे तो प्राय सभी जातियों में जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ। खाण्डलविप्र जाति में उस समय देश काल और साधनों के अनुसार शिक्षा का अत्यन्ताभाव था। इसलिये यह जाति अन्य जातियों के साथ साथ प्रगति पथ में अग्रसर न हो सकी। उन्नति पहले रुकी हुई थी। नवीन युग में प्रविष्ट होने पर सबल नेतृत्व के अभाव में यह जाति एक दीर्घकाल तक पूर्ववत् प्रसुप्तप्राय ही रही।

इस युग में इस जाति के साथ की जातियां आगे बढ़ रही थी। उन्होंने इसको मृतप्राय जाति समझकर हर प्रकार से इसका असहयोग किया और नाना प्रकार से इसे हेय ठहराने की चेष्टा की। उसी उन्नति की घुड़दौड़ में आगे बढ़ने वाली शिक्षित जातियों ने इस जाति के अतीत इतिहास पर छींटा कसी की और इसके पूर्व पुरुषों को क्षत्रिय की सन्तान बतला कर इसे निम्न कोटि की जाति सिद्ध करने की चेष्टा की।

यद्यपि इस प्रकार की मिथ्या कल्पना और आधारों पर खाण्डलविप्र जाति का प्रकट में कोई अनिष्ट न हुआ, किन्तु उन किम्वदन्तियों के कारण ऐतिहासिक परम्परा में संशय करने का अवसर उत्पन्न होगया क्योंकि खाण्डलविप्र जाति के उत्पत्ति विषयक प्रकरण पुराण साहित्य में जहां जहां उपलब्ध हैं, वहां वहां भी प्रायः एक भ्रम समाविष्ट है।

यद्यपि पौराणिक कथाओं और उपाख्यानों में ऐतिहासिक परम्परा से जो असंगत प्रकरण हैं उनका सही हल निकालने के लिये पुराण साहित्य के प्रामाणिक उल्लेखों का सर्वांगीण पर्यवेक्षण पर्याप्त होता है और सर्वांगीण पर्यवेक्षण के बाद प्रायः सभी सही व प्रामाणिक उल्लेख अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो जाते हैं किन्तु जिन उल्लेखों का सम्यगालोचन अभी तक नहीं हुआ और जिनका वास्तविक स्वरूप जन समाज के सामने प्रकट नहीं हुआ, उन्हीं को लेकर कोई मिथ्या कल्पना सर्व साधारण के सामने रखदी जाय तो इतिहास क्रम को समझने की गलती हो सकती है, जैसा कि आज खाण्डलविप्र जाति में हो रहा है।

खाण्डलविप्र जाति के शिक्षित परिवार तो अब बहुत कुछ अंश में वास्तविकता से परिचित होगये हैं किन्तु अशिक्षित अथवा साक्षर परिवारों की यह दशा है कि वे लोग अब भी अपने को एक निम्न कोटि का ब्राह्मण समझते हैं।

इस विषय में खाण्डलविप्र जाति के सर्वसाधारण की यही धारणा है कि "हम अन्य ब्राह्मणों से निम्न स्तर के हैं। हमारा मुख्य कर्तव्य अन्य ब्राह्मणों को बड़ा मानने का है।" इस प्रकार की मिथ्या धारणा बहुत कुछ अंश में अब भी है। इसका कोई परम्परागत आधार नहीं है। केवल पिछले सौ पचास वर्ष से प्रचलित धारणा मात्र है जो शनैः शनैः शिक्षा के सहारे दूर होती जा रही है। यह धारणा शीघ्र ही निर्मूल हो जायगी, ऐसी आशा की जारही है।

पुराण साहित्य में उपलब्ध जातीय इतिहास सम्बन्धी सामग्री का समीक्षात्मक रूप से सकलन कर जाति के सामने यह तथ्य रखने का प्रयत्न किया गया है कि खाण्डलविप्र जाति भी अन्य ब्राह्मण जातियों के समान ऋषि परम्परा में है। इस जाति के पूर्व पुरुष भी ब्रह्मर्षि वंश में उत्पन्न हुए थे। इस जाति के प्रधान आदि पुरुष महर्षि भरद्वाज और विश्वामित्र का उल्लेख पहले हो चुका है। उनका सर्वांगीण परिचय भी दिया जा चुका है।

महर्षि भरद्वाज और विश्वामित्र के बाद की पीढी में मधुछन्दादि ऋषि हुए हैं, जो खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक हैं, अर्थात् मधुछन्दादि ऋषियों का नाम खाण्डल पडा था और उनकी सन्तान खाण्डलविप्र जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सभी प्रामाणिक ग्रन्थों में खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तकों का मधुछन्दादि व मानसोत्पन्न मधुछन्दादि नाम से उल्लेख है। इन ऋषियों के मधुछन्दादि नाम के पूर्व तथा कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप से भी "मानसा" अथवा "मानसोत्पन्ना" शब्द का प्रयोग मिलता है।

इस विषय में पहले लिखा जा चुका है कि मधुछन्दादि ऋषि महर्षि भरद्वाज के मानसोत्पन्न पुत्र हैं और विश्वामित्र के पौष्य पुत्र हैं। मानसिक उत्पत्ति से सभी वेद शास्त्र सहमत हैं। प्रारभ काल में ब्रह्माजी ने भी अत्री, अंगिरा आदि ऋषियों की मानसिक उत्पत्ति कर सृष्टि का निर्माण किया था। यदि इसके आधार पर अलौकिक तपोबल सम्पन्न ऋषि महर्षियों में मानसिक सृष्टि उत्पन्न करने का बल सही रूप में मान लिया जाय तो कोई आपत्ति न होगी।

वेदादि शास्त्रों के आधार पर मानसिक उत्पत्ति को प्रमाण मान लेने पर भी वर्तमान युग के तार्किक इस विषय में अवश्य असहमत हो सकते हैं। इस असहयोग की भावना को दूर करने के लिये इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महर्षि भरद्वाज से मधुछन्दादि ऋषियों के पिता विश्वामित्र का कोई

न कोई निकटतम सम्बन्ध था और उसी के कारण मधुछन्दादि ऋषियों से भरद्वाज का भी पितृ तुल्य अथवा किसी प्रकार का ऐसा ही कोई अन्य सम्बन्ध था। मानसिक-उत्पत्ति का वैज्ञानिक आधार प्राप्त न होने से पारिवारिक सम्बन्ध ही मुख्य प्रतीत होता है। दूसरी कोई बात इस विषय में उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। शास्त्र सम्मत निर्णय की उपेक्षा कर काल्पनिक आधार पर चलना भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

मधुछन्दादि ऋषियों के नामकरण के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। इन पचास ऋषियों के अग्रज महर्षि का नाम मधुछन्द था इसीलिये इनका नाम मधुछन्दादि प्रसिद्ध है और मानसिक उत्पत्ति के कारण इन्हें मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषि भी कहते हैं।

इन मधुछन्दादि ऋषियों में प्रमुख महर्षि मधुछन्द वेद मंत्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के आदि के दस सूक्तों के मंत्रों के द्रष्टा मधुछन्द ऋषि ही हैं। इसके अनुसार पुराणों के आधार पर यदि ऋग्वेद के मंत्रों की रचना के साथ मधुछन्दादि ऋषियों का उत्पत्ति क्रम मिलाया जाय तो असंगति प्रतीत होती है।

किन्तु ऐतिहासिक वाङ्मय ऋग्वेद की रचना के दो समयों का निर्धारण करता है। जिनमें ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से लेकर नवम मण्डल की रचना पहले की और प्रथम तथा दशम मण्डल की रचना बाद की मानी जाती है। विद्वानों का यह विश्लेषण वास्तव में उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि वेदों का संकलन द्वैपायन वेदव्यास ने किया था। उससे पहले वैदिक साहित्य यज्ञों और आश्रमों में मौखिक रूप से ही प्रचलित था। जब वेदव्यास ने उनका संहिता रूप में संकलन किया तो वैदिक संहिताओं में एक क्रमबद्ध परिपाटी प्रचलित की गई। उसके लिये उन्हें विशेष मंत्रों की आवश्यकता का अनुभव हुआ और उन्होंने अपने समकालीन ऋषियों द्वारा आवश्यक मंत्रों की पूर्ति करवा कर वेदों का सर्वांगीण संकलन किया।

द्वैपायन वेदव्यास द्वारा संगृहीत वेदों का स्वरूप ही आज उपलब्ध है। इस आधार पर महर्षि मधुच्छन्द को वेद मंत्र द्रष्टा मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने भी अपने भाष्य में मधुच्छन्द ऋषि को वेद मंत्र द्रष्टा लिखा है। वैदिक अनुक्रमणिका भी इसका समर्थन करती है।

यद्यपि वैदिक कालीन ऋषियों में भी विश्वामित्र नामक ऋषि हुए हैं जो मंत्र द्रष्टा ऋषि हैं, किन्तु वे विश्वामित्र ऋषि प्राग्वैदिक काल के हैं। उनके साथ मधुच्छन्द ऋषि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार रामायण में महाभारत कालीन पात्रों का नाम नहीं मिलता उसी प्रकार प्राग्वैदिक काल की इतिहास परम्परा में भी मधुच्छन्द नामक ऋषि का उल्लेख न मिलने से प्राग्वैदिक कालीन विश्वामित्र के साथ मधुच्छन्द ऋषि का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

मधुच्छन्दादि ऋषियों के पुत्र महर्षि याज्ञवल्क्य और जेता आदि अपने पूर्वजों की सुयोग्य सन्तान थे। जिस प्रकार मधुच्छन्दादि ऋषि लोकोत्तर प्रभावशाली थे, उसी प्रकार याज्ञवल्क्य और जेता आदि भी परम प्रभावशाली थे। याज्ञवल्क्य के विषय में तो कहना ही क्या! क्योंकि वे तो वेद मन्त्रों के द्रष्टा और स्मृति उपदेष्टा थे। उनका स्थान इतिहास में बहुत अधिक ऊंचा है। किन्तु महर्षि जेता भी कुछ कम नहीं थे। जिस प्रकार द्वैपायन व्यास ने महर्षि मधुच्छन्द की वैदिक रचना को अपने वैदिक सङ्कलन में प्रमुख स्थान दिया है उसी प्रकार महर्षि जेता को भी वैदिक संग्रह में अपने पिता महर्षि मधुच्छन्द के बाद प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

मधुच्छन्दादि ऋषि और उनके पुत्र याज्ञवल्क्य, जेता आदि के बाद की पीढ़ी परम्परा आर्ष रूप में पूर्ववत् चलती रही। महाभारत कालीन संघर्ष के कारण आर्ष प्रभाव दिनों दिन गिरता जा रहा था किन्तु फिर भी ऋषि सन्तानों ने एक दीर्घकाल तक अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा की। आर्ष

प्रभाव की समाप्ति के साथ साथ ऋषि सन्तानों का इतिहास भी अन्धकार में विलीन होता दिखाई देता है क्योंकि द्वापर के अन्त में प्रायः ऋषियों का आदर्श समाप्त हो चला था। इससे पहले महाभारत काल में भी ऋषियों का महत्व कम दिखाई देता है।

उस युग में प्रधानतया सैनिक शक्ति का प्राबल्य था। इसीलिये महाभारत काल में सैनिक वर्ण (क्षत्रिय) प्रबल हो गया था। प्रसिद्ध महाभारत युद्ध के कारण देश की राजनैतिक स्थिति डांवाडोल हो गई थी। इसलिये एक दीर्घकाल से प्रचलित परम्परा में विशेष परिवर्तन हुए। ऋषि आश्रमों का महत्व कम हो गया। राज्याश्रित पुरोहित समाज के नेता बने। ऋषि सन्तानों ने ही सामयिक आधार पर प्रचलित परिपाटी को छोड़कर समाज शिक्षण का यह बाना पहना। किन्तु यह कहना कठिन है कि मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानें किस राज्य के आश्रय में रहीं।

लोहार्गल तीर्थ से पूर्व में महाभारत में उल्लिखित मत्स्य राज्य था। मधुछन्दादि ऋषियों की सन्ताने भी समय पाकर उस जनपद की ओर बढ़ गई। यह कहना कठिन है कि उस समय उनकी सामाजिक अवस्था कैसी थी? किन्तु धीरे धीरे देश कालानुसार मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानों ने नागरिक जीवन को अपना लिया। वे लोग भी राजाओं की पुरोहिताई में आगे बढ़े। समय पाकर उन्हें अपने पुरोहित पद पर गौरव प्राप्त करने का अवसर मिला।

मत्स्य जनपद के ह्रास की कथा अन्तर्गर्भ है। इसलिये उससे सम्पर्क रखने वाली खाण्डलविप्र जाति के विकास ह्रास का तात्कालिक विवेचन करना कठिन है। किन्तु मालवा में श्रोत्रियान्वय खाण्डलविप्र परिवारों का जो परिचय प्राप्त होता है उससे सिद्ध है कि ऋषि आदर्श परित्याग के बाद खाण्डलविप्र जाति के पूर्व पुरुषों ने अपनी विद्वत्ता को बहुत समय तक अक्षुण्ण रक्खा है।

जयपुर राज्य (जिसका अस्तित्व आज बृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हो गया है) के संस्थापक सामन्त दुलहराय ग्वालियर से यहा आये थे। उन्होंने सबसे पहले दौसा में अपनी राजधानी स्थापित की थी। सामन्त दुलहराय के कुलगुरु और उनके राजनैतिक सलाहकार मान मिश्र खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। वे प्रसिद्ध श्रोत्रिय कुल मे उत्पन्न हुए थे। उन्हें राजगुरु का प्रतिष्ठित पद मिला हुआ था। उनके वंशज आज भी दौसा में राजगुरु के नाम से प्रसिद्ध हैं। मान मिश्र के कुल में वर्तमान मे पण्डित गौरीशंकरजी राजगुरु विद्यमान हैं।

मान मिश्र के कुल के समान अन्य श्रोत्रिय कुल भी मालवा मे थे, जो नाना राजा महाराजाओं और सामन्तों से पूजित थे। इस तथ्य के आधार पर यह मान लेना समीचीन प्रतीत होता है कि 'खाण्डलविप्र जाति के पूर्व पुरुषों ने देश काल के आधार पर परिवर्तन प्रत्यावर्तनों को अपनाकर अपना अस्तित्व रखा था।

वर्तमान मे खाण्डलविप्र जाति समस्त भारतवर्ष मे फैली हुई है किन्तु उसका प्रारंभिक निवास स्थान महाभारत काल के बाद का मत्स्य जनपद और दशम शतक में स्थापित इक्कीसवीं शदी के प्रारंभ काल तक का जयपुर राज्य तथा इसके बाद बृहद् राजस्थान राज्य है। राजस्थान में भी विशेषत जयपुर राज्य ही खाण्डलविप्र जाति का आवास स्थान है, जो महाभारत कालीन मत्स्य जनपद का एक भाग है।

मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तान खाण्डलविप्र जाति लोहार्गलस्थ ऋषि आश्रम को छोडकर इधर ही बढ गई और तात्कालिक मत्स्य जनपद की सस्य श्यामला भूमि मे बस गई। क्योंकि लोहार्गल तीर्थ के पश्चिम का प्रदेश शुष्क और रेतीला था। उस समय उधर अधिक बसती भी न थी। इस समय मत्स्य जनपद की ओर इस जाति का बढ जाना उपयुक्त प्रतीत होता है।

वहां से धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए लोग मेवाड़ और मालवा की ओर चले गये। महाभारत काल से लेकर विक्रम की पहली और दूसरी शताब्दी तक का समय साधारणतया व्यतीत हुआ प्रतीत होता है। उस समय भी खाण्डल विप्र जाति के जीवन में उतार चढ़ाव हुआ होगा, उसका ऐतिहासिक तथ्य अप्रकाशित है, संभवतः समय पाकर उसका उद्घाटन हो। उस समय में देश का राजनैतिक जीवन विशेष रूप से परिवर्तित होता रहा है, अतः सामाजिक जीवन पर इतना अधिक प्रकाश नहीं पड़ता कि जातियों में हुए महापुरुष और विद्वानों का उल्लेख वंशानुक्रम से इतिहास में हो।

विक्रम की दूसरी, तीसरी शताब्दी के विषय में विचार करना इसलिये आवश्यक हो गया है कि इस जाति के वहीभाटों (वड़वों) की पुरानी पुस्तकों में यत्र तत्र सम्वत् ७८, ८५, ८७, १५६ आदि का उल्लेख मिलता है। उस समय की जातीय जीवन की परिस्थितियों के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उस समय खाण्डलविप्र जाति भी अन्य जातियों के समान समाज में अपना स्थान वनाये हुए थी।

वहीभाटों (वड़वों) की पुरानी पुस्तकों के आधार पर जो तथ्य प्राप्त हैं, उनके अनुसार जाति की सामाजिक स्थिति साधारण रूप में दिखाई देती है, फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि समय समय पर लोकोत्तर प्रभावशाली विद्वान् और ऐतिहासिक महापुरुष इस जाति में भी अवश्य होते रहे हैं। वहीभाटों (वड़वों) की पुस्तकों में वहुत से ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि वहुत से खाण्डलविप्र महानुभावों ने लोहार्गल से पश्चिम में अपने नामों पर ग्रामों की स्थापनायें की थी। इसी तथ्य को प्रमाण रूप में रखकर यह कहा जा सकता है कि खाण्डलविप्र जाति में भी समय समय पर महा पुरुष होते रहे हैं।

समय पाकर जव परिस्थितियां वदली तो खाण्डलविप्र जाति के इतिहास में भी परिवर्तन हुआ। आठवीं–नवीं शताब्दी में भारतवर्ष के अन्य भागों से

आगर यहा लोहार्गल तीर्थ के चारों ओर जिसे पहले राजपूताना प्रान्त कहते थे (जो अब राजपूताना की समस्त रियासतों को मिलाकर वृहद् राजस्थान राज्य बना दिया गया है) के प्रदेश मे राजपूत राजाओं ने अपने राज्य स्थापित किये। जिनके कारण कम बसती वाला यह भू भाग फिर समृद्धि शाली हुआ।

खाण्डलविप्र जाति के तात्कालिक पुरुषों को भी अपनी उन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ। जो लोग शनैं शनैं लोहार्गल तीर्थ से पूर्व और दक्षिण की ओर बढ रहे थे वे उत्तर पश्चिम की ओर भी बढे। संघर्ष काल में जिसको जैसे अवसर मिला वह वैसे ही बढ गया।

पहले लोहार्गल तीर्थ से उत्तर पश्चिम मे बसती बहुत कम थी किन्तु धीरे धीरे उधर पर्याप्त बसती हो गई। ऊपर लिखा जा चुका है कि मधुछन्दादि ऋषियों की सन्तानों ने सामयिकता के आधार पर नागरिकता को अपना लिया था, इसलिये समय पाकर उन पर सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े बिना न रहा। धीरे धीरे खाण्डलविप्र जाति भी एक सामान्य ब्राह्मण जाति रह गई।

मध्य युग मे खाण्डलविप्र जाति का इतिहास कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट रूप मे मिलता है। चतुर्भुज मिश्र (जिनका उल्लेख अगले प्रकरण में है) के उदय के पूर्वोत्तरवर्ती काल मे भी इस जाति के महापुरुष समय समय पर प्रकट होते ही रहे हैं। दशवीं शताब्दी तक इस प्रान्त मे राजपूत राजाओं का प्राबल्य हो गया था। नवीं शदी मे जयपुर राज्य की नींव ढल चुकी थी और उसके कुछ समय बाद ही जोधपुर (जिसकी राजधानी पहले मण्डोवर थी) राज्य स्थापित हो चुका था। मत्स्य जनपद पहले से था ही। इस प्रकार जब यह प्रदेश एक वृहद् जनपद का रूप धारण कर रहा था, तब इसमें पहले से बसने वाले खाण्डलविप्रों का उत्थान भी अवश्यम्भावी था।

मध्ययुगीन महापुरुष

खाण्डलविप्र जाति के इतिहास की प्रारंभिक इतिहास परम्परा पूर्णतया सुसम्बद्ध है और उसके बाद मध्ययुग में भी इस जाति का ऐतिहासिक महत्व पूर्ववत् गौरवशाली है। प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि तथा जेता; याज्ञवल्क्य आदि उनकी सन्तानों के बाद की मध्ययुगीन इतिहास परम्परा में जिन ऐतिहासिक पुरुषों का उल्लेख मिलता है, वे भी अपने पूर्वजों के समान ही प्रभावशाली और जननेतृत्व करने वाले महापुरुष थे। आर्ष युग में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने वाले ऋषियों की सन्तानों ने नागरिक जीवन में भी जनता का पथप्रदर्शन करते हुए अपने इतिहास का निर्माण किया। मध्ययुग में इतिहास निर्माताओं में पंडित चतुर्भुज मिश्र, राजगुरु श्री मान मिश्र, महात्मा श्रवणदासजी और पण्डित विलासराय चोटिया आदि महापुरुषों के नाम प्रमुख है। इन्होंने अपने पूर्वजों द्वारा प्रचलित इतिहास परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए भावी सन्तानों के सामने जो आदर्श रक्खा, वह लोक के लिये अनुकरणीय है।

पण्डित चतुर्भुज मिश्र

पण्डित चतुर्भुज मिश्र ने "रसहृदय तंत्र" नामक आयुर्वैदिक ग्रन्थ की टीका लीखी है। इसी कारण वे इतिहास में विशेष प्रसिद्ध हैं। पण्डित चतुर्भुज मिश्र के विषय में विशेष वृतान्त तो उपलब्ध नहीं होता, पर उन्होंने "रसहृदय तंत्र" के मंगलाचरण में अपने को 'खण्डेलवालान्वय' लिखा है।

"रसहृदय तंत्र" के प्रणेता आद्य शंकराचार्य के गुरु भगवद् गोविन्दपाद हैं, जिनका स्थान रससिद्धों में प्रमुख माना जाता है। आयुर्वेद के रस शास्त्रीय अंग में इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता एवं दुरुहता प्रसिद्ध है। ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ की टीका विधान का साहस चतुर्भुज मिश्र की विद्वत्ता का परिचायक

है। प्रसंगवश यह कहना उचित है कि 'रसविद्या' प्रारंभिक भारतीय भौतिक विज्ञान का एक उज्ज्वल शास्त्र है।

"रसहृदय तंत्र" में पण्डित चतुर्भुज मिश्र के नाम के साथ खण्डेलवाल और मिश्र दोनों शब्द मिलते हैं, जिससे समझ में आता है कि खाण्डलविप्र जाति में भी लोग तथाकथित मिश्र श्रेणी में गिने जाते थे अर्थात् साधारणतया राजस्थान प्रान्त में मिश्र शब्द पुरोहितों के लिये प्रयुक्त होता है। मिश्र शब्द का अर्थ आदरणीय होता है। पुरोहित समाज में सदा से ही आदरणीय रहे हैं। आठवीं शताब्दी में खाण्डलविप्र जाति के लोग पौरोहित्य में विशेष रूपसे चढ़े बढ़े थे, यह चतुर्भुज मिश्र के जीवन चरित्र से विदित होता है।

चतुर्भुज मिश्र ने अपने को खण्डेलवाल वंशज के अतिरिक्त मिश्र तो लिखा ही है, किन्तु उन्होंने अपने को कुरलकुलोद्भव भी लिखा है। यह एक सन्देहास्पद बात है क्योंकि खाण्डलविप्र जाति में कुरल शाखा का कहीं उल्लेख नहीं है। कुरल शाखा दाहिमा ब्राह्मणों में होती है। किन्तु 'खण्डेलवालान्वये' का स्पष्ट उल्लेख मिश्रजी को दाहिमा ब्राह्मण सिद्ध नहीं करता। सभवत उस समय तक भी दाहिमा और खण्डेलवालों में उत्पत्ति विषयक समन्वय चलता रहा हो और उसी आधार पर मिश्रजी कुरल कुलोद्भव हों।

आयुर्वेद के रसविषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ "रसहृदय तंत्र" के टीकाकार पण्डित चतुर्भुज मिश्र का जन्म खाण्डलविप्र जाति में हुआ था। इस विषय में जो सन्देहास्पद बात थी उसका निराकरण ऊपर किया जा चुका है। यद्यपि जिस ग्रन्थ ने पण्डित चतुर्भुज मिश्र का खण्डेलवाल होना सिद्ध किया, वही उन्हें कुरलकुलोद्भव भी सिद्ध करता है, फिर भी मिश्र शब्द के सम्पर्क से विदित होता है कि पण्डित चतुर्भुज मिश्र खाण्डलविप्र जाति के ही अनन्य रत्न थे। जिस प्रकार दाहिमा ब्राह्मणों में यजमानी वृत्ति के कारण मिश्रों का बाहुल्य है, उसी प्रकार खाण्डलविप्र जाति में यजमानी वृत्ति वाले जोशियों

का बाहुल्य है। इस आधार पर यह समझ में आता है कि संभवतः जोशी के स्थान पर पूर्वकाल में मिश्र शब्द का व्यवहार होता रहा है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि "संभवतः चतुर्भुज मिश्र के समय तक ब्राह्मण जातियों में विशेष भेदभाव न रहा हो। अथवा दाहिमा और खण्डेलवाल ब्राह्मणों में उत्पत्ति विषयक समन्वय उस समय तक चलता रहा हो और इसी आधार पर मिश्रजी ने अपने को कुरलकुलोद्भव अथवा कुरल शाखोपाह्व लिखा हो।"

इस विषय की पुष्टि इस आधार पर होती है कि खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) और दाहिमा ब्राह्मण राजपूताना के निवासी हैं, अर्थात् इन दोनों ब्राह्मण वर्गों के ऋषि महर्षि राजपूताना (वर्तमान बृहद् राजस्थान) में रहते थे। इसी आधार को मुख्य मानकर यह लिखा गया है कि संभवतः इनमें उत्पत्ति विषयक अधिक दूरी न हो।

दाहिमा ब्राह्मणों की उत्पत्ति का आधार दधिमथि है, जिसके विषय में महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्त शर्मा ने पर्याप्त लिखा है। दधिमथि का स्थान धन्वदेश (ढूंढार) है। धन्वदेश राजस्थान का प्रमुख भू भाग है। इस धन्वदेश के पश्चिमोत्तर में ही लोहार्गल तीर्थ स्थित है। भौगोलिक दृष्टिकोण से तो खाण्डलविप्र और दाहिमा ब्राह्मण निकटतम हैं। उत्पत्ति में भी संभवतः इनके निकटवर्ती होने का कोई आधार हो।

इस प्रकार सूक्ष्म पर्यालोचन और गवेषणा के आधार पर पण्डित चतुर्भुज मिश्र खाण्डलविप्र जाति में उत्पन्न सिद्ध होते हैं। उन्होंने 'रसहृदय तंत्र' में अपना कोई विस्तृत परिचय नहीं दिया है। केवल अपना पूरा नाम दिया है जिसके अनुसार उनकी यह ऐतिहासिक परम्परा सिद्ध होती है।

यह कहना अनुचित न होगा कि मधुच्छन्दादि ऋषियों की सन्तानों में प्रमुख महर्षि याज्ञवल्क्य और जेता के बाद पण्डित चतुर्भुज मिश्र खाण्डलविप्र जाति में ऐतिहासिक महापुरुष हुए है। उन्होंने पूर्वजों के समान ही इतिहास

क्रम को बराबर चालू रखने में सहयोग दिया और भावी सन्तान के लिये वे आदर्श छोड़ गये।

महर्षि याज्ञवल्क्य और जेता के बाद होने वाले पण्डित चतुर्भुज मिश्र के पहले भी संभवत खाण्डलविप्र जाति में बहुत से इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष हो गये हैं किन्तु समय की लम्बी परम्परा निकल जाने और संघर्ष काल में इतिहासों का सर्वांगीण संकलन न होने से आज वे महापुरुष अज्ञात हैं। समय उनका उद्घाटन करेगा।

बारहवीं शताब्दी में होने वाले खाण्डलविप्र जातीय विद्वान् विलासराय ने 'मातृवंश विबोधन' नामक एक काव्य लिखा है। उस काव्य में प्रधानतया चतुर्थीलाल नामक विद्वान् का चरित्र चित्रण है। कथाभाग पण्डित चतुर्भुज मिश्र के जीवन चरित्र से मिलता जुलता है किन्तु उसमें चतुर्भुज मिश्र का नाम कहीं नहीं है। चतुर्थीलाल का यह सर्वांगीण चरित्र है। चतुर्थीलाल का उस काव्य के अतिरिक्त कहीं कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इन पंक्तियों के लेखक ने उस काव्य को सन् १६४१ ई० में प्रकाशित किया था।

सम्भवत 'मातृवंश विबोधन' काव्य चतुर्भुज मिश्र का जीवन चरित्र हो किन्तु उसमें कवि वर्णित चतुर्थीलाल को अपना नाना और समकालीन मानता है अत 'रसहृदय तन्त्र' के टीकाकार चतुर्भुज मिश्र का जीवन चरित्र यह नहीं हो सकता। संभवत बारहवीं शताब्दी में कोई अन्य चतुर्थीलाल नामक विद्वान् हुआ हो। 'मातृवंश विबोधन' में चतुर्थीलाल को टीकाकार नहीं अपितु ग्रन्थकार लिखा है।

प्रसंगवश यहां यह लिखना भी उचित होगा कि 'मातृवंश विबोधन' काव्य के लेखक पण्डित विलासराय चोटिया का उल्लेख हम प्रस्तुत ग्रन्थ में विस्तारभय के कारण भिन्न रूप से नहीं कर रहे हैं क्योंकि 'मातृवंश विबोधन' में पण्डित विलासराय चोटिया का सर्वांगीण चरित्र चित्रण हो गया है। यह ग्रन्थ १२२६ वि० में समाप्त हुआ था। इसके निर्माता पण्डित

विलासराय चोटिया खाण्डलविप्र जाति के अनन्य रत्न और कवि थे। उन्होंने १२ वीं शदी में इतिहास परम्परा को सुरक्षित कर जाति के जीवन को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया था।

मान मिश्र

जयपुर राज्य (जिसका अस्तित्व अब बृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हो गया है) के संस्थापक सामन्त दुलहराय कछावहा जब ग्वालियर से यहां आये तब उनके साथ उनके गुरु मान मिश्र भी थे। मान मिश्र खाण्डलविप्र जाति के श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे।

ऊपर लिखा जा चुका है कि खाण्डलविप्र जाति के कुछ श्रोत्रिय परिवार मालवा की ओर बढ़ गये थे, वहां उन्होंने अपने पाण्डित्य के बल पर अच्छी प्रतिष्ठा जमाली थी। मान मिश्र के वंशज भी उसी सिलसिले में मालवा की ओर चले गये थे। वहां उन्होंने कछावहा वंशीय क्षत्रियों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर उनका राजगुरु पद प्राप्त किया। मान मिश्र का दुलहराय के साथ आना यह सिद्ध करता है कि वे साधारण राजगुरु न थे अपितु विशेष रूप से राजाओं द्वारा पूजित थे। मान मिश्र ने भी दुलहराय के साथ साथ दौसा में ही अपना निवास स्थान बनाया था।

यद्यपि मान मिश्र के वंशज दुलहराय के वंशजों के साथ न चल सके और वे राजगुरु के प्रभावशाली पद पर भी आसीन न रह सके, फिर भी उन्होंने अपने राजगुरु पद को अक्षुण्ण अवश्य रक्खा। मान मिश्र का घराना सदा ही विद्या और यश में बढ़ा चढ़ा रहा है। इस घराने में समय समय पर विद्वान और कलाकारों का उदय होता रहा है। मान मिश्र के घराने में अश्वविद्या विशारद भी हुए हैं, जिसके प्रमाण लेखक ने अपनी आँखों से देखे हैं। मान मिश्र के वर्तमान वंशज पण्डित गौरीशंकरजी श्रोत्रिय ने लेखक को अपने पूर्वजों का संचित साहित्य दिखाया था, जिसमें एक दो घोड़ों का चित्र

मिला था, जो शुभाशुभ लक्षणों से युक्त था और
ानिक विश्लेषण भी किया गया था।

सोलहवीं शदी में लिखी हुई 'नरपति जयचर्या' नामक पुस्तक
साहित्य मे देखने को मिली थी, जो १६८१ विक्रम मे खाण्डलविप्र आत्युत्पन्न
छीतरमल श्रोत्रिय द्वारा लिखी गई थी। इसी प्रकार और भी कई एक चीजें
यहा देखने को मिली जिनसे विदित होता था कि इस घराने मे प्रारभ से ही
यशस्वी विद्वानों का उद्भव होता रहा है।

वर्तमान मे पडित गौरीशंकरजी इस घराने में प्रमुख हैं। पण्डित
गौरीशंकरजी के बडे भाई कन्हैयालालजी थे, जो बडे ही विद्वान् और
यशस्वी थे, उनका देहान्त लेखक के दौसा पहुँच ने से छै मास पूर्व हो
चुका था। अन्यथा इस घराने का विलुप्त इतिहास बहुत कुछ प्रकाश
मे आता।

आज भी मान मिश्र के वंशज दौसा के आस पास के राजपूत सरदारों
राजगुरु के नाम से ही पूजे जाते हैं। दौसा के आस पास बसने वाले
राजपूत मान मिश्र और उनके वंशजों को पूर्ण रूप से अपना गुरु मानते है।
काम पडने पर उनके यहा राजगुरु ही सर्वविध पौरोहित्य कार्य सम्पन्न
करते हैं।

सामन्त दुलहराय दशवीं शताब्दी के प्रारंभ में यहा आये, अत मान
मिश्र का प्रादुर्भाव काल दसवीं शताब्दी सुनिश्चित है। एक हजार वर्ष पुराने
इस महापुरुष की तपस्या का यह प्रभाव है कि आज भी उसका घराना
प्रतिष्ठा सहित विद्यमान है, जिससे इस महापुरुष का परिचय प्राप्त कर जाति
प्रेरणा प्राप्त कर रही है।

मान मिश्र के सहस्र वर्ष पूर्व का यह प्रभाव और परिचय यह सिद्ध
करता है कि दशवीं शताब्दी में खाण्डलविप्र जाति समुन्नत रूप मे विद्यमान
थी। मानवा मे बसने वाले श्रोत्रिय परिवार विशेष प्रभावशाली थे। उनका

सम्मान राजपरिवारों में अति विशेष था। जातीयता के दृष्टिकोण से भी खाण्डलविप्र जाति के समृद्ध रूप का अनुमान होता है।

महात्मा श्रवणदासजी

यहां आकर राज्य स्थापित करने वाले राजपूत राजाओं ने खाण्डलविप्र जाति के विद्वानों को पर्याप्त संरक्षण दिया। वैसे तो प्रायः सभी राजाओं के साथ विद्वान् रहते थे और वे विद्वान् ही राजाओं को परामर्श देते थे, पर इधर नये राज्यों की स्थापनाओं में राजाओं ने इधर के ब्राह्मणों को भी विशेष प्रोत्साहन दिया था।

खाण्डलविप्र जाति के माटोलिया (जामदग्न्य) गोत्र में उत्पन्न महात्मा श्रवणदासजी ने भी उस समय राज्याश्रय प्राप्त किया था। यद्यपि श्रवणदासजी की सन्तति के पास जमीन और कोठी, कुओं के जो पट्टे आज हैं वे महात्मा श्रवणदासजी के उद्भव के बाद के हैं किन्तु परम्परया यह सुनने में आया है कि महात्मा श्रवणदासजी के वंशजों के पास जो जमीनें और कोठी कुए हैं, वे अधिकतर राज्य द्वारा महात्मा श्रवणदासजी को ही मिले हुए हैं।

महात्मा श्रवणदासजी का प्रादुर्भाव दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। उनका जन्म भूतपूर्व जयपुर राज्यान्तगत श्यामजी के खाटू नामक स्थान में हुआ था। यह स्थान जयपुर स्टेट रेल्वे के प्रसिद्ध स्टेशन पलसाना से कुछ दूर दक्षिण में स्थित है।

श्रवणदासजी प्रसिद्ध महात्मा थे। यद्यपि वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे, किन्तु उनका आत्मबल उच्च कोटि का था। वे एक सिद्ध पुरुष के रूपमें विद्यमान थे। उनका परिवार बहुत बड़ा था। आज तो वह परिवार और भी अधिक प्रसार पा चुका है। महात्मा श्रवणदासजी को जयपुर (आमेर) के तात्कालिक नरेशों ने बहुत बड़ी जागीर प्रदान की थी, जो समय पाकर उनकी सन्तानों में विभक्त हो गई।

महापुरुष श्रवणदासजी के जीवन चरित्र का क्रमबद्ध इतिहास अभी तक छिपा हुआ है। अब उसकी प्रामाणिक खोज हो रही है। समय पर वह पाठकों के सामने प्रस्तुत हो सकेगा, ऐसी आशा है। श्रवणदासजी और उनके घराने का इतिहास इतना अधिक गौरवशाली और प्रेरणाप्रद है कि उससे जाति अपने जीवन मे स्फूर्ति का अनुभव कर सकती है।

महात्मा श्रवणदासजी और उनके वशजों को स्थान स्थान पर जो जागीरें मिली उनसे प्रतीत होता है कि यह घराना सदा से ही प्रसिद्ध, शिक्षित एव राजपूजित रहा है। इस घराने से जाति को जो जो लाभ हुए वे इतिहास मे विशेष उल्लेख योग्य हैं।

श्रवणदासजी का निर्वाण भी श्यामजी के खाटू मे हुआ था, उनके समाधि स्थान की छत्री आज भी विद्यमान है। रामद्वारा नामक एक पुराना मन्दिर खाटू में प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। सभवत: यह स्थान महात्मा श्रवणदासजी का उपासना गृह रहा हो। उनकी छत्री पर अब भी मनौतिया होती हैं, यह जन विदित है।

शेखावाटी मे खण्डेलवाल ब्राह्मणों के घरों में श्यामजी के खाटू के देवता श्यामजी की पूजा का विशेष रूप से होना यह सिद्ध करता है कि महात्मा श्रवणदासजी के कारण ही शेखावाटी के खाण्डलविप्र विशेष रूपसे श्यामजी के उपासक हुए। खाटू के इस श्याम देवता का ऐतिहासिक तथ्य तो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु महात्मा श्रवणदासजी के इतिहास के आधार पर यह समझ में आता है कि संभवत: खाटू में श्यामजी की स्थापना महात्मा श्रवणदासजी ने ही की हो। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित जातीय समाज मे उस देवता का पूजित होजाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

वस्तुस्थिति यही प्रतीत होती है कि श्रवणदासजी के आराध्य देव श्यामजी थे। श्रवणदासजी का प्रभाव अपनी जाति मे विशेष था। इससे उनके प्रभाव से प्रभावित जाति वालों ने भी श्रवणदासजी के आराध्य देव श्यामजी को

अपना पूज्य माना। इसी कारण संभवतः श्रवणदासजी की छत्री पर भी मनौतियां मानी जाती हैं।

महात्मा श्रवणदासजी का घराना बहुत बड़ा था। उनका परिवार भी पर्याप्त फैला हुआ था। उनकी सन्तति ने बहुत अधिक प्रसार पाया। वर्तमान में श्रवणदासजी के वंशज श्यामजी की खाटू, पलसाना, गोविन्दपुरा, दांता-रामगढ़, चौमूं, जयपुर आदि कई स्थानों में बस रहे हैं। महात्मा श्रवणदासजी का घराना उनके अनुरूप ही उत्तरोत्तर प्रगतिशील हो रहा है।

नवयुगारम्भ

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही जाति में नवयुग की भावना प्रस्फुटित होने लगी थी। सामयिक परिवर्तन प्रकृति के आधार पर जन समाज का मानसिक धरातल बदल देते हैं। नवयुग के आरम्भ के साथ साथ खाण्डलविप्र जाति का मानसिक धरातल भी बदला और उसने भी अपनी भावी उन्नति के लिये सामयिक प्रवाह का अनुसरण किया।

ऊपर उल्लेख हो चुका है इस जाति के पूर्व पुरुष प्रारम्भ से ही जन नेतृत्व की दिशा मे आगे बढ़ते रहे हैं। ऋषियों के तात्कालिक जीवन को परिवर्तित कर नागरिक जीवन अपना लेने पर भी लोगों मे पूर्व संस्कार यथावत् विद्यमान थे। नवयुग मे भी खाण्डलविप्र जाति राज्यों द्वारा प्रोत्साहन पाकर समाज शिक्षण की दिशा मे पुन आगे बढी।

यद्यपि शिक्षा के प्रति बढती हुई समाज की उदासीनता तात्कालिक शिक्षकों का उत्साह मन्द कर रही थी, फिर भी मध्य युग से चली आ रही समाज शिक्षण की परिपाटी के अनुसार समाज की शिक्षा दीक्षा का कार्य नवयुग मे भी एक दीर्घकाल तक खाण्डलविप्र जाति के हाथ में रहा। यहा यह न भूलना चाहिये कि एक विशेष परिस्थिति ने इधर के समाज और शिक्षकों की प्रगति को रोक दिया था।

देश मे बराबर विदेशियों के आक्रमण हो रहे थे, जिनसे समस्त जन जीवन आक्रान्त था। इस समय केवल आत्मरक्षा ही प्रधान समझी जा रही थी। शिक्षा दीक्षा की ओर समाज विशेष ध्यान न दे सकता था। अहर्निश के लड़ाई झगड़ों के कारण शिक्षा के क्षेत्र मे सर्वत्र उदासीनता व्याप्त थी। केवल प्रचलित परम्परा ही चल रही थी।

लगातार के संघर्ष थोडे-से समय मे समाप्त न हुए। परिणाम स्वरूप समाज और उसके शिक्षक दोनों ही पथ भ्रष्ट हो गये। यद्यपि खाण्डलविप्र

जाति के तात्कालिक प्रतिनिधियों के शरीर में ऋषियों का पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा था किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी शिक्षा के केन्द्रों से दूर रहने और सञ्चित ज्ञान कोष का उपयोग न होने के कारण उनके पास की विद्या का ह्रास होता जा रहा था।

समाज की अशिक्षा और देश के राजनैतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप कुछ आन्तरिक अव्यवस्थायें भी हुई। देश में नाना मतमतान्तरों की सृष्टि होगई थी, इसलिये समाज का एक मार्ग न था। प्रायः समाज का जनजीवन अस्तव्यस्त था।

खाण्डलविप्र जाति के तात्कालिक प्रतिनिधि भी समय का प्रवाह देखकर चुप थे। समस्त जन समुदाय और समाज के प्रवाहानुसार खाण्डलविप्र जाति में भी कतिपय विशिष्ट पुरुषों को छोड़कर अशिक्षा का प्रसार होगया। सामान्यतया जब सारे समाज में अशिक्षा प्रविष्ट होगई तो खाण्डलविप्र जाति कैसे बच सकती थी! परिणाम यह हुआ कि समाज की सभी जातियों के साथ साथ इस जाति का जन समाज भी समय के उतार चढ़ाव के अनुसार अपने अतीत आदर्शों को छोड़कर साधारण जनजीवन में मिल गया।

एक दीर्घ काल तक समाज का जीवन अव्यवस्थित रहा। राजपूत राजा लोग रात दिन विदेशियों से लोहा लेते रहते थे, इसीलिये देश में स्थायी शान्ति न हो पाती थी। समाज के लोग प्रायः आत्मरक्षण और पोषण में ही व्यस्त रहते थे। धीरे धीरे जब विदेशियों के आक्रमण कम हुए और कुछ आन्तरिक शान्ति हुई तो लोगों ने अपने जीवन को प्रगतिशील बनाने की ओर ध्यान दिया।

सोलहवीं शताब्दी में खाण्डलविप्र जाति का इतिहास बहुत कुछ परिवर्तित हुआ। इस शतक से पहले लोग विदेशियों के आक्रमणों से आक्रान्त थे और अव्यवस्थित-सा जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु मुगल

साम्राज्य के सुव्यवस्थित हो जाने से आतंक बहुत कुछ कम होगया था और लोग अपने काम धन्धों की ओर ध्यान देने लगे थे।

सामूहिक रूप से रहने की प्रथा के अनुसार खाण्डलविप्र जाति के लोग भी समूहात्मक रूप में सुरक्षित प्रदेशों की ओर बढने लगे। सुरक्षित प्रदेशों में ही कृषि आदि उद्योग धन्धे पनप सकते थे। लोहार्गल के पूर्व दक्षिण का भाग मुगल बादशाहों की राजधानी दिल्ली के पास पड़ता था और दिल्ली से दक्षिण की ओर जाने आने का प्रधान मार्ग था, इसलिये यह प्रदेश विशेष सुरक्षित न समझा जाता था।

यद्यपि आमेर के तात्कालिक नरेशों ने मुगल बादशाहों से अपने सम्बन्ध अच्छे बना रक्खे थे और आक्रमण का कोई भय नहीं था, किन्तु रात दिन का सैनिक आवागमन जनता को सुख से न रहने देता था। इसलिये प्राय लोग इस उपजाऊ भाग को छोडकर उत्तर पश्चिम की ओर बढ गये। शेखावाटी का रेतीला भाग सोलहवीं शताब्दी मे ही अधिकतर आबाद हुआ। खाण्डलविप्र जाति के लोग भी पर्याप्त परिमाण में तोरावाटी और राजावाटी से उठकर शेखावाटी, मारवाड़ आदि प्रदेशों में जा बसे।

विदित होता है कि खाण्डलविप्र जाति अपने निवास काल से लेकर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक साधारणतया परिवर्तन प्रत्यावर्तनों की आवृत्ति करती हुई सामयिक प्रवाह में बहती रही। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे इस जाति के कई एक घराने विशेष प्रतिष्ठित रूप मे दिखाई देते हैं। उस समय के प्रतिष्ठित घरानों ने इतिहास के क्षेत्र मे भावी सन्तान का मार्ग विशेष रूप से प्रशस्त किया है। इस विषय में मारवाड प्रदेश के कई एक घराने विशेष उल्लेख योग्य हैं। इधर आमेर के आस पास भी कई एक धनी और विद्वानों का उदय हो रहा था। महात्मा श्रवणदासजी के वंशज भी उस समय प्रगतिशील थे। श्रवणदास जी की सतति में कई एक महानुभाव उस समय ख्याति प्राप्त हो रहे थे। उसी समय अपने समय के

धन कुबेर परम प्रतापी जयसा वोहरा और इनके सम्बन्धी परशुराम जी मंगलिहारा का उदय हुआ था।

जोधपुर (मारवाड़) के नागोर परगने में खाण्डलविप्र जाति के पर्याप्त लोग बस चुके थे। वहां भी कई एक घराने अपनी प्रतिष्ठा के बल पर ऐतिहासिक गौरव प्राप्त कर रहे थे। जोधपुर राज्य में बसने वाले खाण्डलविप्र बन्धुओं को राज्य की ओर से भी पर्याप्त प्रश्रय मिला था। वहां के खाण्डल-विप्रों को पर्याप्त भूसम्पत्ति राज्य द्वारा प्राप्त हो चुकी थी।

बीकानेर राज्य में उसी समय के लगभग रतनगढ़ के पुरोहित घराने का उदय हुआ था। रतनगढ़ के पुरोहितों का घराना उस समय बीकानेर राज्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता था। रतनगढ़ के पुरोहितों का गोत (सासन या अवटंक) रूंथला है किन्तु राज्याश्रय में रहकर पौरोहित्य सम्पादन के कारण वे पुरोहित के नाम से विख्यात हुए। उन्हें बीकानेर राज्य की ओर से भूसम्पत्ति प्राप्त हुई।

- उसी समय उदयपुर (मेवाड़) में सौभागपुरा (भीलवाड़ा, उदयपुर) में वसीवालों का घराना जोर पकड़ रहा था। सौभागपुरा वहां के वसीवाल बन्धुओं को माफी में मिला था। उदयपुर के राज घराने में सौभागपुरा के वशीवाल बन्धुओं का सम्मान बढ़ रहा था। सौभागपुरा वशीवाल बन्धुओं को मिल जाने के बाद भीलवाड़ा के आसपास बसने वाले खाण्डलविप्र घराने उपर्युक्त प्रसिद्धि के कारण ही राज्य द्वारा सम्मानित होकर उत्तरोत्तर अपना विकास कर रहे थे।

भीलवाड़ा और सौभागपुरा के आसपास उदयपुर राज्य से भूसम्पत्ति प्राप्त करने वाले खाण्डलविप्र बन्धुओं के पर्याप्त घर आज भी उस प्रदेश में विद्यमान हैं। डोली रूप में भूस्वामी होने के कारण बहुत-से परिवार डोलिया नाम से प्रसिद्ध हैं। भीलवाड़ा में आज भी बहुत-से डोलिया बन्धु रहते हैं, जिनमें पण्डित घासीलाल डोलिया प्रमुख हैं।

इधर लोहार्गल से पश्चिमोत्तर प्रदेश मे व्यवसायी वर्ग में बहुत-से खाण्डलविप्र घराने अपनी प्रतिष्ठा बढा रहे थे जिनमें शेखावाटी के अग्रवाल महाजनों के पुरोहित जोशी बन्धु और महर्षि मंगलदत्त जी महाराज आदि के पूर्वज विशेष उल्लेखनीय हैं।

मत्स्य जनपद अथवा तात्कालिक आमेर राज्य और वर्तमान जयपुर से उत्तर में देहली के आसपास भी खाण्डलविप्र जाति के बहुत-से परिवार बस गये थे, जिनमें खाण्डलविप्र जाति के स्वनामधन्य महापुरुष और जातीय जीवन की सर्वप्रथम ज्योति जगाने वाले स्वर्गीय श्री पण्डित रामजीलाल जी माटोलिया आदि के पूर्वजों के घराने विशेष उल्लेखनीय हैं।

हाड़ौती प्रदेश के खाण्डलविप्र भी इस समय मे आगे बढे। हाड़ौती प्रदेश में बसने वाले बहुत-से खाण्डलविप्र परिवारों ने भी इस समय में राज्य द्वारा भूसम्पत्ति तथा सम्मान प्राप्त किया।

यद्यपि मालवा में बसने वाले श्रोत्रिय परिवार अधिक प्रभावशाली न रहे थे किन्तु इनके कारण बहुत-से परिवार उधर भी जा बसे, जहा उन्होंने अपना स्थान अच्छा बना लिया था।

इस प्रकार देखने में आता है कि अस्तव्यस्त जातीय जीवन को फिर से समुचित रूप मे लाने का प्रयत्न नवयुग के आरम्भ से ही तात्कालिक कर्णधार कर रहे थे। उस समय का विशद इतिहास इस बात का साक्षी है। परम प्रतापी जयसा बोहरा के पुत्र श्रीरामसिंहजी के विवाह में जाति के उनचास गोतों (सासन या अवटंकों) का एकत्रित होकर जातीय उन्नति के विषय मे विचार करना इसका प्रतीक है।

इस समय जिन घरानों में शिक्षा का पूर्ण समावेश था वे बहुत शीघ्रता से प्रगति करते जा रहे थे। यही कारण था कि नवयुग के आरंभ से ही ज्यों ज्यों देश की राजनैतिक परिस्थितिया बदलती गईं त्यों त्यों खाण्डलविप्र जाति भी यथावकाश अपने जातीय जीवन को विकसित करने की दिशा मे

अग्रसर होती चली गई। उस समय भी खाण्डलविप्र जाति के जीवन के सभी क्षेत्र विकासशील थे। धर्म, समाज, राजनीति, व्यापार, व्यवसाय और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के आधार पर जाति के जीवन में सर्वतोमुखी उन्नतिशील प्रवृत्ति का समावेश हो रहा था। विभिन्न स्थानों में उत्पन्न हुए इतिहास निर्माता महानुभावों ने जाति के जीवन को समुन्नत करने के साथ साथ देश, समाज और राष्ट्र की समुन्नति में भी अपना सहयोग दिया, जिससे जाति का इतिहास राष्ट्र के विशाल इतिहास का गौरवशाली अध्याय बन सका।

वस्तुतः यह कहना चाहिये कि एक दीर्घकाल से रुकी हुई खाण्डलविप्र जातीय इतिहास निर्माण की परम्परा सोलहवीं शताब्दी में फिर से चालू होगई। विदेशियों के आक्रमणों से इतिहास निर्माण की दिशा में जो गत्यवरोध उत्पन्न होगया था, वह सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दूर होगया और फिर पूर्व के समान ही जातीय जीवन प्रगतिशील होकर आगे बढ़ चला।



राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य
के सौजन्य से उनके संग्रहालय से प्राप्त

अपने समय के अद्वितीय धनकुबेर नॉगलगढ़ के संस्थापक

महाप्रतापी जयसा बोहरा

आप जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के समकालीन थे। आपने अपने द्वारा निर्मित नॉगल नगर में जिस विशाल 'नॉगलगढ़' का निर्माण करवाया वह लगभग पन्द्रह वर्ष में पूर्ण हुआ था। सं० १६८७ वि० में 'नॉगलगढ़' का शिलान्यास हुआ और सं० १७०१ वि० में उसका उद्घाटन हुआ। उसके निर्माण में लाखों रुपये लगे थे और हजारों कारीगरों ने काम किया था।

खण्डेलविप्र जाति ने नवयुग में भी पर्याप्त प्रगति कर अपनी जागरूकता का परिचय दिया। यह जाति स्वयं ही उत्कर्ष प्राप्त कर आगे बढ़ी हो सो बात नहीं है। इसमें उत्पन्न होने वाले महापुरुषों ने देश, जाति, समाज और राष्ट्र को भी अपनी देन देकर आभारी किया है। इस प्रकार के नवयुगीय ऐतिहासिक पुरुषों में जयमा बोहरा, बोहरा राजा खुशहालीराम वणमिया, मरुदेशोद्धारक महात्मा मंगलदत्तजी, पण्डित रामजीलालजी माटोलिया आदि महानुभाव हैं, जिनका चरित्र चित्रण आगे के पृष्ठों में सुरक्षित है।

जयमा बोहरा

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर से लगभग चार पांच मील की दूरी पर पश्चिमोत्तर दिशा में महाप्रतापी और अपने समय के अद्वितीय धन कुबेर जयमा बोहरा का नाँगलगढ़ विद्यमान है। यह एक विशाल दुर्ग है। इसे देखकर यही विदित होता है कि सम्भवतः यह किसी शक्तिशाली राजा का दुर्भेद्य दुर्ग था। इसके निर्माता महाप्रतापी जयमा बोहरा खण्डेलविप्र जाति में उत्पन्न हुए थे। वे आज काल के कराल गाल में विलीन होगये हैं पर उनके द्वारा निर्मित यह दुर्ग आज भी उनकी कीर्ति गाथा का स्मरण कराता है।

आज नाँगलगढ़ खण्डहरप्राय है। इसके निर्माता महापुरुष जयमा बोहरा के वंशज भी आज दैव दुर्विपाक से इतने असमर्थ होगये हैं कि वे जयमा बोहरा के कीर्तिस्तम्भ इस नाँगल के गगन चुम्बी प्रासाद अथवा दुर्ग का जीर्णोद्धार भी नहीं करवा सकते।

आज समय बदल गया है। परिस्थितियां बदल चुकी हैं। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल में जब कि वर्तमान जयपुर नगर नहीं बसा था,

यहां आमेर का राज्य था। वह आमेर का राज्य ही [illegible] में जयपुर राज्य के रूप में परिणत होगया और फिर वह जयपुर राज्य भी अप्रैल सन १९४९ ई० में बृहद् राजस्थान राज्य में विलीन होगया।

यद्यपि यह बड़ा भारी उलट फेर है और इस परिवर्तन का प्रभाव नाँगलगढ़ पर आज नहीं तो कल अवश्य पड़ेगा। [illegible] नाँगलगढ़ का अतीत कितना गौरवशाली और प्रेरणाप्रद है, यह बात नाँगलगढ़ का अतीत इतिहास बतलाता है।

आबादी और चहल पहल की दृष्टि से नाँगलगढ़ कोई बड़ा नगर नहीं है और न उसमें बड़े नगरों के से बाजार ही हैं। यह एक कस्बा है। इसमें अधिकतर जयसा बोहरा के वंशज ही रहते हैं। महाप्रतापी जयसा बोहरा के वंशजों के अधिकार में आज लगभग चालीस पचास हजार की भूसम्पत्ति जागीर के रूप में है। नाँगलगढ़ की स्थापना का इतिहास आश्चर्य जनक तो है ही साथ ही साथ खाण्डलविप्र जाति के लिये वह अनन्तकाल तक प्रेरणाप्रद रहेगा।

जिस महाप्रतापी जयसा बोहरा ने नाँगल नगर और नाँगलगढ़ की स्थापना की, वह महाप्रतापी महापुरुष खाण्डलविप्र जाति का जाज्वल्यमान रत्न था। अपने समय के इस अद्वितीय धन कुबेर का नाम जयसा था और लेन देन का काम करने के कारण इसे लोग जयसा बोहरा कहते थे।

आज प्रायः सभी खण्डेलवाल ब्राह्मणों को लोग इसीलिये बोहरा के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि जयसा बोहरा का नाम इतना प्रसिद्ध होगया था कि आस पास के सभी लोग बोहरा को जानने लगे थे और लोगों की यह आम धारणा होगई थी कि खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति में प्रायः सभी लोग जयसा बोहरा जैसे धनवान होते हैं। इस प्रशस्त कीर्ति के कारण खण्डेलवाल ब्राह्मणों ने भी बोहरा का काम करना प्रारंभ कर दिया था। आज खाण्डलविप्र जाति में यह व्यवसाय इतना अधिक व्यापक हो गया है कि प्रायः

प्रत्येक स्थान पर खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के अधिकांश व्यक्ति ऐसे मिल ही जायेंगे जो लेन देन का काम करने के कारण बोहरा कहलाते हैं।

अपनी जाति को इतनी बड़ी देन देने वाले उस महापुरुष का जीवन चरित्र खाण्डलविप्र जाति की सामूहिक सम्पत्ति है और उसे सुरक्षित रखना भावी सन्तान के लिये एक आदर्श निधि स्थापित करना है।

प्रारंभ में जयसा बोहरा का निवास स्थान आमेर के उत्तर में आखेड़ा नामक ग्राम था। उस समय बोहराजी बहुत अधिक निर्धन थे। उनके अन्य भाई सदा उनका उपहास किया करते थे। पहले जयसाजी कमाने में बहुत कम ध्यान देते थे। पर भजन भाव और साधु संगति में पर्याप्त योग देते रहते थे। इसी मनोवृत्ति के कारण जयसाजी को किसी महापुरुष का आशीर्वाद प्राप्त हो गया था।

वे भाग्यशाली थे। निर्धनता से तंग आकर उन्होंने अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर दिया था। जिस समय वे जन्मभूमि छोड़कर चले उस समय उनके साथ उनकी सहधर्मिणी के सिवा और कोई न था। उनकी सहधर्मिणी उस समय आसन्न प्रसवा थी। तात्कालिक यातायात साधनों के अनुसार जयसाजी भी बैलगाड़ी में अपना सामान लादकर चले थे। चलते चलते वे वर्तमान नॉगलगढ के स्थान पर पहुँचे।

उस समय सूर्यास्त हो रहा था। बोहराजी की धर्मपत्नी प्रसव पीड़ा से व्याकुल थी। बोहराजी जल्दी से जल्दी पास के कस्बे में पहुँचने का प्रयत्न कर रहे थे कि दैव दुर्विपाक से उनकी गाड़ी की धुर टूट गई। वे हताश होकर बैठ गये। उसी समय उनकी धर्मपत्नी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया।

विपत्ति की पराकाष्ठा थी। सूनसान जंगल। सूर्यास्त का समय, सद्य प्रसूता पत्नी और फिर साधनों का सर्वथा अभाव। ऐसी स्थिति में धैर्य धारण करना विरले ही महापुरुषों का काम होता है। जयसाजी ने भी इस

समय अपूर्व धैर्य धुरीणता का परिचय दिया। उन्होंने अपने को पत्थर दिल बनाकर उस विपम परिस्थिति में अपना समय व्यतीत किया। इसके बाद धीरे धीरे वे अपनी स्थिति को संभालने में समर्थ हुए। उन्होंने इसी स्थान पर रहने का निश्चय किया और धैर्य पूर्वक अपने भाग्योदय की प्रतीक्षा करते हुए वहां रहकर पत्नी और पुत्र का पालन करने लगे।

वर्तमान नांगलगढ़ के स्थान पर सूनसान जंगल में विपम परिस्थितियों में उत्पन्न जयसाजी के प्रथम पुत्र श्रीरामवक्सजी थे जो भविष्यत् में, राजा महाराजा और राजकुमारों में रहने के कारण रामसिंह के नाम से विख्यात हुए। इन रामसिंहजी के जन्म के बाद ही जयसाजी का भाग्योदय हुआ। रामसिंहजी परम भाग्यशाली और किसी सिद्धि प्राप्त महापुरुष के अवतार माने जाते थे।

समय सदा एकसा नहीं रहता। धूप छाँह के समान समय भी बदलता रहता है। मानव के जीवन में भी उतार चढ़ाव आते हैं। जयसा वोहरा के जीवन ने भी करवट ली। पुत्र जन्म के बाद उनकी विपम आर्थिक परिस्थितियां धीरे धीरे सुधरने लगी। यद्यपि जंगल में वे अकेले रहते थे किन्तु उन्होंने वहां किसी प्रकार का कष्ट अनुभव न किया और बराबर कर्तव्य पालन में अग्रसर होते रहे।

जनश्रुति है कि "महाप्रतापी जयसा वोहरा के पुत्र श्री रामसिंहजी के पेशाव के नीचे धन निकला करता था और इसी कारण श्री रामसिंहजी के जन्म के कुछ काल बाद ही जयसाजी इतने अधिक धनवान होगये कि उस समय उनकी तुलना करने वाला कोई न था। यह कहना तो कठिन है कि यह जनश्रुति सही है या नहीं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्री रामसिंहजी के जन्म के बाद कोई ऐसा आधार अवश्य रहा होगा जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति शीघ्रातिशीघ्र ठीक करने में समर्थ होकर अपना भावी विकास कर सके। संभवतः यह उनकी कर्मनिष्ठा का फल था।"

इस जनश्रुति के विषय में दो मन्तव्य हैं। कुछ लोग तो बोहराजी के पुत्र रामसिंहजी के पेशाब के नीचे धन निकलना मानते हैं और कुछ लोग स्वयं जयसा बोहरा के पेशाब के नीचे धन निकलना मानते हैं। अधिकतर वृद्ध महानुभाव महाप्रतापी जयसा बोहरा को ही प्रमाण में रखते हैं। सम्भवतः जयसा बोहरा के पेशाब के नीचे ही धन निकलता हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके पुत्र रामसिंहजी परम भाग्यशाली महापुरुष थे। बोहराजी की स्थिति में भी उनके जन्म के बाद ही परिवर्तन हुआ।

इस जनश्रुति के विषय में एक और सन्देह को अवसर है कि पेशाब के नीचे धन निकलना क्योंकर संभव था और जन्मभूमि परित्याग और पुत्रोत्पत्ति के बाद क्योंकर प्रकट हुआ। इस प्रश्न का वास्तविक हल तो अन्तर्गर्भ है किन्तु विद्वानों का मन्तव्य यह है कि महाप्रतापी जयसा बोहरा भूगर्भ विद्या के जानकार थे और उसके आधार पर उनको भूगर्भस्थ धन का पता लग जाता था। सम्भवतः यही वह आधार था कि जिसके कारण जयसाजी इतने अधिक धन सम्पन्न थे।

जन्मभूमि परित्याग और पुत्रोत्पत्ति के थोड़े दिन बाद ही जयसाजी की परिस्थितियां इतनी अधिक सुधर गई थी कि वे आसपास के प्रदेश में एक सद्गृहस्थ के रूप में प्रकट होगये। उनकी अर्थ प्राप्ति को लोग अलौकिक सिद्धि मानने लगे थे। प्रायः सर्वत्र उनकी चर्चा लोगों के मुँह पर रहती थी।

सम्भवतः बोहराजी को कोई अलौकिक सिद्धि तो प्राप्त न हुई हो, फिर भी यह निश्चित है कि वे भूगर्भ वेत्ता अवश्य थे और इसी कारण जयसाजी अतुल धन सम्पत्ति के स्वामी बने थे। जनसाधारण इसे अलौकिक सिद्धि ही मानता था।

धीरे धीरे जनसाधारण की यह धारणा तात्कालिक आमेर नरेश मिर्जा राना जयसिंह तक भी पहुँच गई। इन्होंने जयसाजी को अपने दरबार में

बुलाया। आदर सत्कार करने के बाद मिर्जा राजा जयसिंह ने जयसाजी को अपना वोहरा नियत कर उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया। इसके बाद जयसाजी अधिकृत रूप से जयसा वोहरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आमेर नरेश से सत्कार प्राप्त के बाद वोहराजी का उत्साह और भी बढ़ गया। विक्रम सम्वत १६८७ मे उन्होंने मिर्जा राजा जयसिंह से मिल कर अपने निवास स्थान पर एक नगर निर्माण की आज्ञा मांगी। महाराजा साहब वोहराजी से पूर्ण सन्तुष्ट थे। उन्होंने वोहराजी को नगर निर्माण की आज्ञा दे दी। वोहराजी ने अपने घर के पास ही वर्तमान नाँगलगढ़ का शिलान्यास किया।

सुनते हैं कि जब नागलगढ़ की नींव रक्खी गई उस समय वहां केवल एक वोहराजी का ही घर था। बाकी वे लोग जो जयसाजी के यहां कार्य करते थे, आस पास के गांवों में ही रहते थे। जब जयसाजी ने नगर का शिलान्यास किया तो अपने नौकर चाकर और सहयोगियों को भी वहीं बस जाने की सलाह दी। परिणाम स्वरूप नांगलगढ़ के आस पास एक अच्छा सा कस्बा शीघ्र ही बस गया।

वोहराजी का नांगलगढ़ एक सुदृढ़ दुर्ग के समान बन रहा था। उसमें पर्याप्त समय लगा। विक्रम सम्वत् १७०१ में वह बन कर सम्पूर्ण हुआ। उसमें हजारों कारीगर वर्षों तक लगे रहे थे। वह कोई साधारण हवेली न थी अपितु एक विशाल दुर्ग था जो नीचे से लेकर ऊपर तक प्रस्तर निर्मित था।

वोहराजी वैष्णव मतान्तर्गत वल्लभ कुल के शिष्य थे। अतः उन्होंने दुर्ग निर्माण के साथ साथ एक संगमरमर का मन्दिर भी अपने गढ़ के अंदर बनवाया जिसमें स्थापत्यकला की पराकाष्ठा है और जो भवन निर्माणकला और मूर्ति कला का सजीव चित्रण कहा जा सकता है।

लगभग सतरहवीं शताब्दी के प्रारंभ काल में वोहराजी इतने अधिक धनवान और प्रभावशाली हो गये थे कि उनका नाम प्रायः सर्वत्र सर्वसाधारण

मे ही नहीं अपितु राजा महाराजाओं तक मे फैल गया। उनका नाम दिल्ली के तात्कालिक मुगल सम्राट जहांगीर तक भी पहुँच गया था। उनको मुगल दरबार मे भी सम्मान प्राप्त हुआ था।

अत्यधिक धनवान और ख्याति प्राप्त वोहराजी से तात्कालिक आमेर नरेश इतने अधिक हिलमिल गये थे कि वे हर प्रकार से वोहराजी को अपना निजी समझते थे। आमेर नरेश ने वोहराजी से कई बार यह अनुरोध भी किया था कि आप राज्य से माफी मे भूसम्पत्ति ले लें किन्तु वोहराजी ने कभी माफी या उदक लेना स्वीकार नहीं किया। उनके पास धन सम्पत्ति की तो कमी नहीं थी। साथ ही यह भी सुनने मे आता है कि सभवत उनको किसी महापुरुष ने यह कहा था कि जबतक तुम और तुम्हारे वशज दान नहीं लेंगे तब तक लक्ष्मी तुम्हारे घर में अचल रहेगी। संभवत इस भय से कि कहीं लक्ष्मी रुठ कर चली न जाय, वोहराजी ने माफी या उदक लेना कभी स्वीकार नहीं किया।

जागीर के अधिकारी न होने पर भी वोहराजी का ठाटबाट राजा महाराजाओं से कम न था। उनका निवास स्थान भी राजा महाराजाओं के समान था। इज्जत और प्रतिष्ठा भी वैसी ही थी। उनके द्वार पर सदा हाथी भूमता था। वोहराजी के ज्येष्ठ पुत्र-जिस भाग्यशाली के जन्म के बाद ही वोहराजी अटूट धन सम्पत्ति के स्वामी बने थे-को तात्कालिक आमेर नरेश ने सिंह की उपाधि दी थी। इसीलिये वोहराजी के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं। वोहराजी के तीन पुत्र थे जिनके नाम क्रमश रामसिंह रामदत्त और हरदत्त थे।

महाप्रतापी जयसा वोहरा के गगनचुम्बी प्रासाद के आगे हर समय हाथी भूमता रहता था। जनश्रुति के आधार पर तो महाप्रतापी जयसा वोहरा के यहा सौ हाथी थे, किन्तु यदि इस जनश्रुति मे सन्देह हो तो भी यह सुनिश्चित है कि नाँगल के विशाल गढ के आगे मदोन्मत्त गजेन्द्र

चौबीस घंटे घूमता रहता था। जिससे बोहराजी का भव्यभवन किसी राजा के सुदृढ़ दुर्ग के समान दिखाई देता था।

राजघरानों का सा रहन सहन बोहराजी के परिवार का था, यह बोहराजी के भवन निर्माण से सिद्ध होता है। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग अलग बावलियां थी। संभवतः उपवर्न भी अलग अलग रहे होंगे। जनानी और मर्दानी ड्योढ़ियां अलग अलग थी। प्रासाद के सिंह द्वार पर राजघरानों की सी अर्गला भी थी जिससे सिद्ध होता है कि बोहराजी के घर में पूर्णतया राजघरानों की मर्यादाओं का पालन होता था।

बोहराजी अपने अनुचरों को वेतन नहीं देते थे। उन्होंने सबको जमीन दे रक्खी थी, जिनका लगान पहले तो बोहराजी देते ही थे किन्तु जब नाँगलगढ़ का पट्टा बोहराजी के द्वितीय पुत्र रामदत्तजी को धोखे से दे दिया गया तो बोहराजी ने भी अपने भृत्यवर्ग को जमीनों का स्थायी पट्टा कर दिया था।

रामसिंहजी आदि बोहराजी के पुत्र राजकुमारों के साथ रहते थे। उनका प्रभाव भी राजकुमारों के जैसा था। जब आमेर नरेश ने देखा कि बोहराजी उदक या माफी में जागीर नहीं लेते तो उन्होंने एक पर्व पर गंगा स्नान करते हुए अपने पुत्र जगतसिंहजी और बोहराजी के द्वितीय पुत्र रामदत्तजी को यह कहकर अपने पास बुलाया कि देखे तुम दोनों की अंजलियां बराबर है क्या! महाराज ने अपने पुत्र को पहले से ही समझा रक्खा था। जब जगतसिंहजी ने गंगाजल से अपनी अंजली भरकर रामदत्तजी की अंजली में डाली तो महाराज के आदेशानुसार पुरोहित ने नांगलगढ़ के प्रदान करने का संकल्प पढ़ दिया।

रामदत्तजी को पहले इस बात का पता न था। जब संकल्प पढ़ कर उनके हाथ में संकल्पात्मक जल छोड़ा गया तो तत्काल उनका देदिप्यमान चेहरा काला पड़ गया और वे हतप्रभ होगये। अविमर्श के कुपरिणाम को देख



वंशीधर सेखसरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य से

नाँगलगढ़ का पश्चिमी भाग

कर महाराजा साहब को बहुत अधिक पश्चात्ताप हुआ। किन्तु अब कोई उपाय न था। तीर हाथ से निकल चुका था। निदान वोहराजी को नागल गढ की जागीर उदक रूप मे स्वीकार करनी पडी।

उस समय वोहराजी पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे। रामदत्तजी की शोचनीय दशा के कारण वे और भी अधिक दुखी होगये। निदान शीघ्र ही वि० स० १७१५ में उनका देहान्त होगया। वोहराजी के देहान्त से अकेले नागलगढ अथवा आमेर राज्य को ही क्षति नहीं उठानी पड़ी अपितु समस्त राजपूताना प्रान्त मे उनकी कमी का अनुभव किया गया। वे राजस्थान के अद्वितीय धनकुबेर और ब्राह्मण समाज के शिरोमणि थे।

वोहराजी के देहान्त के बाद उनके पुत्रों ने उनका कार्यभार सभाला किन्तु दैव उस घर से विमुख हो चुका था। सुना जाता है कि वोहराजी के देहान्त के कुछ दिन बाद ही रामसिंहजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके जन्मकाल पर ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की कि—"यदि इस लडके का पिता इसका मु ह देखेगा तो उसकी मृत्यु तत्काल हो जायगी।"

परिणाम यह हुआ कि रामसिंहजी नागलगढ छोडकर यहा से दश मील दूर दक्षिण मे रहने लगे। वे जहा रहते थे वह स्थान भी बाद मे गाव के रूप में परिणत होगया। वह गाव आज भी रामसिंहपुरा के नाम से प्रसिद्ध है। रामसिंहपुरा भाकरोट से चार मील पूर्व मे स्थित है।

पुत्र जन्म के बाद रामसिंहजी अधिकतर रामसिंहपुरा मे ही रहते थे। उनके कहने से उनके चचा बद्रीदासजी ने नागलगढ और रामसिंहपुरा के बीच मे वन्दयास नामक एक गाव बसाया था।

नृसिंह चतुर्दशी के दिन रामसिंहजी अपने निवास स्थान रामसिंहपुरा से नागलगढ आये थे। वहा अचानक उनका साक्षात्कार उस दासी से होगया जो उनके पुत्र हरिसिंह को गोद में लिये खडी थी। हरिसिंह का ग्रहयोग पितृघातक था, अथवा विधि का विधान ही ऐसा था। इस घटना ने

कुछ समय बाद ही रामसिंहजी का देहान्त होगया। उनके देहान्त के बाद नाँगलगढ़ की स्थिति वहुत ही दयनीय हो गई थी।

महाप्रतापी जयसा वोहरा के जेष्ठ पुत्र यही वह रामसिंहजी थे, जिनके विषय में तात्कालिक कवियों ने लिखा है कि:—

धन जैंसो धन चोटणी धन ढूंढार देश।
जिण घर रामरो जलमियो नोवत वन्द नरेश॥
कोड़ समायी कोखजन दिया छिवर गीवर हाथ।
नर दूजो जन्म नहीं रामसिंह री रात।

रामसिंहजी के विवाह के समय कवि ने उनका वर्णन किया है:—

मोहरें वादल रूप वन हुई विडंगा रीत।
खैड़ छड़ रामकंवर मारणिया आखा तीज॥

संभवतः रामसिंहजी का लग्न आखातीज (अक्षय तृतीया) का था।

रामसिंहजी के ससुराल पहुंचने पर कवियों ने निम्नलिखित कवितायें वनाई थी:—

सिर पर वन्ध्या सेवरा काकण डोर वणाय।
कोड़ दिपन्ता रामसिंह आण लगे सव पाय॥
घंटा गल घण घूवरा साकत सकरो साज।
रामसिंह जसराजरा ल्याया गाजन्ता गजराज॥
पदमनाभ की ऊपनी उपरा उपर वजन्त।
ताका कुल में रामसिंह जुग जयसा जीवन्त॥

इसी प्रकार महाप्रतापी जयसा वोहरा के परम भाग्यशाली पुत्र श्री रामसिंहजी के विषय में तात्कालिक कवियों ने अनेक कविताओं की रचना की थी, जो आज दैव दुर्विपाक से विस्मृति के गर्भ में लीन होगई हैं।

परम भाग्यशाली रामसिंहजी के देहान्त के वाद महाप्रतापी जयस वोहरा के असित उत्कर्ष का अपकर्ष होने लगा। रामसिंहजी के देहान्त वे

बाद उनके छोटे भाई रामदत्तजी और हरदत्तजी ने अपने घर के दीवान और चचा सुन्दरदासजी के सहयोग से कार्यभार समाला।

वस्तुत महाप्रतापी जयसा बोहरा के घराने की उन्नति चरम सीमा तक पहुच चुकी थी, अथवा यों कहिये कि उस घर का भाग्य सोगया था। निदान दिनों दिन लक्ष्मी का ह्रास होने लगा। नागलगढ का वह गगन चुम्बी राजप्रासाद अब श्री विहीन होगया था। रामसिंहजी के देहान्त के कुछ समय बाद ही रामदत्तजी का भी देहान्त होगया अपने दोनों बडे भाइयों के देहान्त के बाद हरदत्तजी को वैराग्य होगया। उन्होंने सासारिक कार्यों से सन्यास ले लिया। वे हर समय ईश्वर भजन मे संलग्न रहने लगे।

नागलगढ के सस्थापक महाप्रतापी जयसा बोहरा का जन्म खाण्डल विप्र जाति के बीलवाल घराने मे हुआ था। उनके जीवन चरित्र का आशिक परिचय ऊपर दिया जा चुका है। महाप्रतापी जयसा बोहरा का यह घरेलु परिचय है। उनका जाति के साथ जो व्यवहार था, वह भी आदर्श था। सुनते हैं कि उन्होंने अपने पुत्र रामसिंहजी के विवाह में खाण्डलविप्र जाति के सब गोतों (सासन या अवटकों) के सरदारों को इकट्ठा किया था।

खाण्डलविप्र जाति मे पचास गोत (सासन या अवटंक) हैं जो उनचास न्यात के नाम से प्रसिद्ध हैं। जयसा बोहरा के पुत्र रामसिंहजी के विवाह मे ही ये उनचास न्यात इकट्ठी हुई थी। यह जातीय सम्मेलन अभूत पूर्व था। इस प्रकार का जातीय सम्मेलन आज तक नहीं हुआ और न होने की आशा है। उस समय बोहराजी ने जाति में कई एक सुधार किये थे।

रामसिंहजी का विवाह पापड़ नामक ग्राम के प्रसिद्ध धनपति परशुरामजी मगलिहारा की सुपुत्री के साथ हुआ था। पापड भी आमेर के पास ही है। परशुरामजी मंगलिहारा भी बोहरानी के समान ही धनपति थे। इन

दोनों घरानों ने मिलकर इतना बड़ा जातीय सम्मेलन किया था जिसे 'न भूतो न भविष्यति' कहा जा सकता है।

जनश्रुति है कि "खाण्डलविप्र जाति के याचक राणाओं को जयसा बोहरा ने ही जाति का याचक बनाया था। बोहराजी ने एक करोड़ रुपये का दान इन राणाओं को इसलिये दिया था कि वे घूम फिर कर खाण्डलविप्र जाति में आपसी संगठन का प्रचार करें और दूर दूर बसने वाले जाति के सरदारों को एक दूसरे से परिचित कराते रहें। खाण्डलविप्र जाति के याचक ये राणा लोग अन्य किसी जाति से याचना नहीं करते और जहां कहीं जाते हैं खाण्डलविप्र परिवारों से ही अपना निर्वाह करते हैं।"

बोहराजी ने सम्पत्ति पाकर भी अपने भाइयों को नहीं भुलाया था। जन्मभूमि परित्याग के बाद जब वे सम्पत्तिशाली होगये तो उन्होंने अपने भाइयों को भी नांगलगढ़ में ही बुला लिया था। उनके पांच भाई और थे, जिनमें से तीन बोहराजी के पास आये थे। उनके नाम क्रमशः सुन्दरदासजी बदरीदासजी और सांवलदासजी थे।

सुन्दरदासजी अच्छे समझदार और सुयोग्य व्यक्ति थे। बोहराजी ने उनको अपना मन्त्री बनाया। बदरीदासजी तथा सांवलदासजी को उनका परामर्शदाता नियुक्त किया। बोहराजी ने अपने इन तीनों भाइयों को तीन अलग अलग हवेलियां बनादी थी। जयसा बोहरा और उनके पुत्रों के देहान्त के बाद तीनों छोटे भाई भी स्वर्ग सिधार गये।

इसके बाद नांगलगढ़ बराबर अवनत होता चला गया। धीरे धीरे सारी श्री सम्पत्ति विलीन होगई। बोहराजी और उनके तीनों भाइयों की सन्तानें आपसी फूट के कारण असंगठित होकर "अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग" अलापने लगी। परिणाम यह हुआ कि वैभवशाली नांगलगढ़ अपना अपरिमित वैभव खोकर केवल एक ध्वंशावशेष मात्र रह गया।

आज भी नाँगलगढ का गगनचुम्बी प्रासाद अपने अतीत की स्मृति को संचित किये मूक वेदना सह रहा है। उसके निर्माता चले गये किन्तु यह प्रासाद आज भी उन्हें अमर बनाये हुए है।

नाँगलगढ के बीलवालों का वंश परिचय बहीभाटों (बडवों) के पास सुरक्षित था, किन्तु सुनते हैं कि बहीभाटों (बडवों) के साथ नाँगल वालों का झगडा होगया था, इसलिये उस संगृहीत वंश परिचय की रक्षा न हो सकी और दैव दुर्विपाक से वह नष्ट होगया।

आज भी बोहराजी के वंशजों के तीस चालीस घर नाँगलगढ में विद्यमान हैं, जिनमें सभी लोग साधारणतया अपना जीवन व्यतीत करते हैं। नाँगलगढ जागीर जिस समय प्रदान की गई थी उस समय लाखों रुपये की जागीर थी, किन्तु जयसा बोहरा के बाद सम्भालने वालों की असावधानी के कारण प्रायः बहुत-सी उनके हाथ से निकल गई है। अब लगभग चालीस पचास हजार की जागीर अवशेष है।

वर्तमान में भी बोहराजी के वंशजों की शक्ति क्षीणप्राय है। प्रायः सर्वत्र आपसी द्वेष फैला हुआ है। नाँगलगढ के अधिकारी अपने अतीत को भूले हुए हैं। यदि महाप्रतापी जयसा बोहरा के वंशज पारस्परिक सहयोग और सद्भावना के साथ रहें और अपने गौरवशाली अतीत का स्मरण कर उसका अनुसरण करने की चेष्टा करें तो वे फिर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं।

यद्यपि सभी जातियों में इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष होते हैं और उनके कार्य भी जातियों के लिये प्रेरणाप्रद होते हैं किन्तु महाप्रतापी जयसा बोहरा का यह इतिहास अभूत पूर्व है। पिछले एक हजार वर्ष में राजस्थान प्रान्त में ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति किसी ब्राह्मण जाति में नहीं हुआ।

महाप्रतापी जयसा बोहरा केवल एक खण्डेलविप्र जाति का ही नहीं अपितु राजस्थान की समस्त ब्राह्मण जातियों का शिरोरत्न कहा जा सकता

है। इस महापुरुष ने केवल अपनी जाति को ही नहीं अपितु राजस्थान की सभी ब्राह्मण जातियों को अपेक्षित सहयोग देकर उन्हें आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया था। इस महापुरुष का जीवन परोपकार प्रधान था।

वोहराजी के देहावसान के बाद उनका वंश विस्तार तो पर्याप्त हुआ किन्तु आर्थिक परिस्थितियां उत्तरोत्तर गिरती चली गई। अन्ततोगत्या आज यह स्थिति है कि नाँगलगढ़ के विशाल दुर्ग का जीर्णोद्धार भी असंभव होगया है। केवल "समय एव करोति बलाबलम्" कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है।

महाप्रतापी जयसा वोहरा के विषय में भी कुछ साहित्य उनके समसामयिक कवियों द्वारा निर्मित है जो किसी ग्रन्थ विशेष में तो नहीं पाया जाता किन्तु परम्परया ग्राम वृद्धों के मुँह से सुना जाता है :—

सदा प्रतापजी लिखमातण सिहरी,
कर अनन्त कल्याण कैसो उजरो शहर, आभण जोर भर ब्राह्मण राव जैंसा।
भागर त्याग सौभाग वदिये, भला खर्च........................
वीड़ में प्रजा वीड़ में राजा दब्यो वब्यो राजा मान के देश।
तुम्ह विन ईरा घल विलक्या फिर, स्वर्ग वीन ले गयो न साथ।
सम्वत् सोलह सौ सत्यासी की साल में पूर दीना पृथिवी।
वी भे दीगर नूर दरबार भारी,
डगे मेवाड़, मारवाड़, मुरधरा डगमगे कि, थाम जैंसा इव बार थारी।

यह पद्य महाप्रतापी जयसा वोहरा की मृत्यु के बाद का है। वस्तुतः वोहराजी ऐसे ही विशिष्ट और लोक कल्याण कर महापुरुष थे। उन्होंने अपने अध्यवशाय के बल पर अनेक परिवर्तन प्रत्यावर्तनों की आवृत्ति करते हुए सहिष्णुता और धैर्य धुरीणता के साथ अनन्त धन सम्पति का उपार्जन किया और अपने सद्गुणों का प्रकाश कर प्राप्त धन का सदुपयोग कर देश जाति, समाज और राष्ट्र का मुख उज्ज्वल किया।

बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया

खण्डेलवित्र जाति मे अनेक महापुरुष ऐसे हुए है जिनकी कीर्ति सात समुद्र पार योरोप तक के देशों मे विदेशी लेखकों द्वारा पहुँची। उन्हीं महापुरुषों मे बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया भी एक है। इनके विषय मे जयपुर इतिहास के अंग्रेज लेखक कर्नल टाड तथा दूसरे अंग्रेज एवं हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों ने अंग्रेजी भाषा में बहुत कुछ लिखा है। कर्नल टाड ने तो इनको अपने समय का सबसे बडा 'राजनीति विशारद' और 'दूरदर्शी' माना है। उनके शब्दों मे बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया "अत्युच्च श्रेणी का राजनीति जानने वाला था।"

पण्डित हनुमान शर्मा चौमूं ने सन् १९०३ की सरस्वती मे राजाजी के जीवन चरित्र मे इनको जयसा बोहरा का पुत्र माना है, तथा जयसा बोहरा के जीवन चरित्र मे राजाजी को "नागल" के एक दरिद्र माता पिता की सन्तान माना है। यही बात उन्होंने नाथावतों के इतिहास में लिखी है। पता नहीं कि पण्डित जी ने यह कहा से सुनकर लिखा क्योंकि जयसा बोहरा "नागल" के बीलवाल थे, जो जयपुर से तीन कोस की दूरी पर पश्चिमोत्तर दिशा मे स्थित है और जिसका शासन आज भी जयसा बोहरा के वशजों के अधिकार मे है।

कर्नल टाड ने भी भूल से बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया को "माचेडी" का रहने वाला लिखा है, जहा के अलवर राज्य के संस्थापक राव प्रतापसिंह नरूका थे। संभवत कर्नल टाड ने प्रतापसिंह पर राजाजी की कृपा होने के कारण ही उनको "माचेडी" का निवासी माना हो।

बोहराजी के पूर्वज चौमूं के पास "नोपरा" गाव के रहने वाले वणसिया थे और वे किसी कारण वश वि० सं० १७०० के आस पास उदयपुर (मेवाड) चले गये थे। जब जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी

ने वि० सं० १७६५ में उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) की पुत्री चन्द्र कुँवरी से विवाह किया तब उदयपुर की राजकुमारी के साथ दो सौ आदमी जयपुर आये थे। उन्हीं में बोहराजी के दादा या पिता भी थे। इसी कारण महलों के खवासों में इनकी नौकरी होगई थी जो आज तक उनके वंशजों में चली आती है।

बोहराजी के पिता का नाम "जयरामजी" था। इनकी आर्थिक स्थिति संभवतः अच्छी थी। राजमहलों में इनका अच्छा प्रभाव प्रतीत होता है। पुरानी बस्ती में इनकी बनाई हुई हवेली और गोपालजी का मन्दिर अभी तक विद्यमान है जो आज भी जयपुर के खाण्डलविप्रों का पंचायती मन्दिर कहलाता है। जयपुरस्थ खाण्डलविप्रों के सभी जातीय निर्णय वहीं होते हैं। इन्होंने चौमूं के पास "जयरामपुरा" नामक एक गांव भी बसाया था जो संभवतः प्रारंभ में उन्हीं के वंशजों के अधीन रहा होगा। जयरामपुरा में बिसेदारी और पटेलाई आज भी खण्डेलवाल ब्राह्मणों के ही अधीन है। बाणगंगा के किनारे यह ग्राम अतिसुन्दर है। यहां ईख की खेती भी होती है।

बोहरा राजा खुशहालीराम बणसिया का जन्म सन् १७२५ ई० के आस पास हुआ प्रतीत होता है। बचपन से ही इनका महलों में आना जाना था। महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) की इन पर बड़ी कृपा थी, जो संभवतः इन्होंने अपने बुद्धि चातुर्य से पाई होगी। बुद्धिमान एवं महलों में आवागमन तथा महाराजा की विशेष कृपा होने से बोहराजी राजकाज के कामों को भली भाँति समझ गये थे।

जयपुर में बोहरा राजा खुशहालीराम बणसिया के बारे में एक दंत कथा प्रचलित है कि—"एक बार महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) के पास एक साधु आये। उन्होंने महाराजा से कहा कि—"मैं एक ऐसा अनुष्ठान करूंगा, जिससे आपका प्रभाव संसार में बहुत बढ़ जायगा।" महाराजा ने



राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी भिषगाचा
के सौजन्य से उनके संग्रहालय से प्रा

बोहरा राजा खुशहालीराम बणासिया

आप ईसा की सतरहवीं शताब्दी में राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ और जयपुर राज्य के प्रधान मंत्री थे। आपका कार्यकाल सन् १७७० ई० के लगभग था। कर्नल टाड के शब्दों में आप अपने समय के अद्वितीय राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे।

इस साधु के उस अनुष्ठान के लिये कई लाख रुपये खर्च किये। साधु ने कई दिन तक कोठडी में बैठ कर जप किया। जिस समय अनुष्ठान की पूर्णाहुति होने वाली थी उस समय सबसे पहले राजा को ही अपने सामने आने की आज्ञा दी, किन्तु पूर्णाहुति के समय महाराजा भगवान की पूजा में बैठे हुए थे और उस समय उठते नहीं थे। अत जब बोहराजी ने उनसे साधु के सामने जाने का निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि "तुम जाओ और स्वामीजी का आशीर्वाद मेरे लिये प्राप्त करो।"

बोहराजी के बहुत बार निवेदन करने पर उन्होंने कहा कि—तुम मेरे दूसरे शरीर हो, इसलिये तुम्हारा प्राप्त किया हुआ आशीर्वाद मेरे ही हित में होगा। अन्त मे लाचार होकर बोहराजी स्वामीजी के सामने गये। स्वामीजी ने कोठडी से निकलते ही बोहराजी को अपने सामने खडे देखा और उनके सिर पर हाथ रखकर कहा कि—"जा आज से तेरे सिर पर छत्र फिरेगा और कोई भी राजा तेरा सामना न कर सकेगा। तेरे लिखने मात्र से ही राजा लोग प्रभाहीन हो जायगे।"

तब बोहराजी ने निवेदन किया—' महाराज मैं तो राज्य का नौकर हू।

"तू जयपुर का नौकर नहीं स्वामी होगया।" साधु का उत्तर था।

अन्त में बहुत अधिक निवेदन करने पर साधु ने कहा—"अच्छा" वैसे तो तू जयपुर का नौकर ही रहेगा, किन्तु जयपुर तथा बाहर सभी जगह तेरा राजा का सा प्रभाव रहेगा।"

इसी दिन से दिन दूना रात चौगुना बोहराजी का प्रभाव बढ़ने लगा। राज्यतन्त्र में उनका पूरा हस्तक्षेप होगया। जब वि० स० १८७४ में महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) का स्वर्गवास हुआ तब बोहरा राजा खुशालीराम नरणासिया जयपुर में नायब दीवान का काम करते थे। कुछ दिनो बाद अपनी नीति चातुरी के प्रभाव से सबको चमत्कृत करते हुए राजा की पक्की धारणा पर जयपुर के प्रधान मन्त्री बन गये।

कर्नल टाडने लिखा है—"मांचेरी के सामन्त प्रतापसिंह नरूका को महाराजा माधवसिंह (प्रथम) ने नाराज होकर अपने राज्य से निकाल दिया और उसकी जागीर जप्त करली। तब प्रतापसिंह भरतपुर के जाट राजा जवाहिरसिंह के पास चला गया। जवाहिरसिंह ने उसे अपने राज्य में जागीर देदी।

प्रतापसिंह के कार्याध्यक्ष पद पर खुशहालीराम नामक मनुष्य नियुक्त हुआ और जयपुर दरबार में दूत के पद पर नन्दराम नामक मनुष्य नियुक्त हुआ। प्रतापसिंह के निकलते ही इन दोनों ने उनके साथ जाटभूमि में आश्रय लिया। यद्यपि प्रतापसिंह, खुशहालीराम और नन्दराम जाटपति की कृपा दृष्टि से निर्विघ्न होकर भरतपुर में रहते थे और जाटराज की दी हुई भूवृत्ति से अपना जीवन व्यतीत करते थे, पर उनके हृदय में उस समय भी जयपुर के प्रति श्रद्धा विद्यमान थी। वे जयपुर के लिये सर्वदा उत्कण्ठित रहते थे और जयपुर राज्य के अपमान को वे अपना ही अपमान समझते थे। यहां तक कि "जिस समय जाटपति जवाहिरसिंह अपनी सेना साथ लेकर भरतपुर से आमेर के रास्ते होते हुए पुष्कर को जा रहे थे उस समय उन तीनों व्यक्तियों नें जवाहिरसिंह के इस गर्वित आचरण से अपना अधिक अपमान समझा और वे शीघ्र ही जाटराज का आश्रय और भूवृत्ति की ओर अवज्ञा प्रकाश करके फिर आमेर चले गये।"

इस सम्बन्ध में दूसरे इतिहासकारों ने इस प्रकार लिखा है:—"जब पुष्कर से लौटते हुए जवाहिरसिंह की सेना का "मांवडे" के मैदान में जयपुर की सेना के साथ घनघोर युद्ध हुआ तो प्रथम जयपुर की सेना हारकर मैदान छोड़ भागी, किन्तु फिर खुशहालीराम बोहरा को—जो उस समय भरतपुर के राजा के पास चला गया था और युद्ध भूमि में उपस्थित था—जयपुर के सामन्तों ने समझाया कि "इस समय आप जयपुर का सबसे बड़ा उपकार कर सकते हैं। आपत्ति के समय आपको जयपुर का साथ देना चाहिये।"

इस पर बोहरा ने अपनी सेना एवं फ्रांसिसी सेनापति डिवाइन को जाट सेना की ओर तोपों का मुँह करने को कह दिया। फिर क्या था, जाट सेना अनन्त धनराशि एवं लड़ाई का बहुत-सा सामान छोड़कर भाग गई। बोहरा के इस आचरण से महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) बहुत प्रसन्न हुए।

उपर्युक्त दोनों मन्तव्य झूठे प्रतीत होते हैं क्योंकि इस युद्ध के चार दिन बाद ही महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) स्वर्गवासी हो गये थे। ऐसी अवस्था में कर्नल टाड का यह लिखना असगत प्रतीत होता है कि— "खुशहालीराम बोहरा जो परिणाम मे आमेर की राजनैतिक रंगभूमि में प्रस्थान कर रहा था, वह उसी मन्त्री समाज में नियुक्त था, यद्यपि यह अति ऊँची श्रेणी का राजनीति जानने वाला था, किन्तु फिरोज के प्रभुत्व और प्रबलता ने इसको भी एक बार सामर्थ्य हीन कर दिया।"

केवल चार ही दिनों में किसी ऐसे मनुष्य का इतने ऊंचे पद पर नियुक्त हो जाना असंभव है, जिसने उस राज्य का साथ छोड़कर शत्रु राज्य का आश्रय लिया हो। इसीलिये बोहराजी के भरतपुर जाने की बात सर्वथा झूठी प्रतीत होती है।

जयपुर के राजवंश के लिये यह समय संकटमय था। महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) का देहान्त हो चुका था। उनके स्थान पर नौ वर्ष के राजकुमार पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठे। पटरानी चन्द्रावती पृथ्वीसिंह की अभिभाविका बनी। पटरानी का फिरोज नामक महावत के साथ अनुचित सम्बन्ध होने के कारण रानी ने उसे राज्य के उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया। इससे जयपुर के सभी सामन्त रानी से रुष्ट होकर अपनी अपनी जागीरों में चले गये।

उधर महाराष्ट्र सेना राज्य को सर्वथा अपने अधिकार में करने के लिये सतत प्रयत्नशील थी। ऐसी विपत्ति के समय बोहरा राजा खुशहाली राम बणसिया ने जयपुर के शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। नीति

कारों ने लिखा है कि—"ऐसे ही अवसरों पर मन्त्रियों की योग्यता की परीक्षा होती है। वोहराजी इस परीक्षा में पूर्णतया सफल हुए। उन्होंने उतनी विपत्तियां रहते हुए भी जयपुर का शासन जिस योग्यता से चलाया उसकी प्रशंसा कर्नल टाड को अपने इतिहास में स्थान स्थान पर करनी पड़ी।

इसी आधार पर जयपुर के महामन्त्री वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ थे, यह मानी हुई बात है। उनका प्रभाव केवल जयपुर राज्य की सीमा तक ही सीमित न था। उन्होंने राजपूताना के समस्त राजाओं पर भी अपना अक्षुण्ण प्रभाव फैला रक्खा था।

यद्यपि वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया के समय में मुगल बादशाहों का प्रभाव कम होगया था और इस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव बढ़ रहा था। फिर भी तात्कालिक मुगल बादशाहों के साथ वोहराजी की अच्छी पटती थी। उस समय दिल्ली का शासन अस्तव्यस्त-सा था, अतः दिल्ली के बादशाहों के साथ वोहराजी का विशेष सम्पर्क था। बादशाह भी उन्हें एक बड़ा भारी राजनीति विशारद समझते थे। इसी कारण दिल्ली दरबार में वोहराजी का सम्मान विशेष था। जनश्रुतियों से यह प्रमाणित होता है कि—"दिल्ली के तात्कालिक बादशाह समय समय पर राजकाज के जटिल मामलों को सुलझाने के लिये वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया को आमंत्रित किया करते थे।" इन आमंत्रणों में वोहराजी सदा ही विजयी होकर लौटते थे।

अन्य राजाओं के यहां तो उनका सम्राट् जैसा ही प्रभाव था। जिन जटिल राजनैतिक कामों को जयपुर, जोधपुर और बीकानेर का नरेन्द्र मंडल नहीं सुलझा सकता था वे कार्य वोहराजी बात की बात में कर देते थे। इसीलिये राजा लोग उनका लोहा मानते थे।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) के बाद राजगद्दी पर बैठने वाले राजकुमार पृथ्वीसिंह की आयु नौ वर्ष की थी।

उस समय राजनैतिक दृष्टिकोण के आधार पर जयपुर का राज्य एकदम निर्बल समझा गया था, किन्तु बोहरा राजा खुशहालीराम वगसिया के उत्कृष्ट प्रभाव और नीति-चातुरी के कारण सत्ता की कमजोरी कभी खटकने न पाई। नाबालिग स्वामी का राज्य होते हुए भी जयपुर उस समय सबसे उन्नत और समृद्धिशाली राज्य कहलाता था।

इस समय जयपुर का आन्तरिक शासन अत्यधिक अव्यवस्थित था। जयपुर का सामन्तमण्डल राज्य का परम शत्रु हो रहा था। रानी के व्यभिचार से असन्तुष्ट सामन्त जयपुर से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। वे अपनी अपनी स्वतन्त्रता का दावा कर अपने राज्यों की सीमा विस्तार का प्रयत्न हर समय करते रहते थे। फिर भी बोहराजी ने किसी भी सामन्त को ऊंचा उठने का अवसर नहीं दिया।

बोहराजी के जीवन में शेखावाटी के सामन्तों का विद्रोह एक प्रधान घटना है। रानी चन्द्रावती के देहान्त के बाद जब बोहरा राजा खुशहालीराम वगसिया राज्य कार्य से सन्यास ले चुके थे और महाराजा प्रतापसिंहजी ने शासन भार सभाल लिया था। इसी परिवर्तन से असन्तुष्ट शेखावतों ने जयपुर को अपना निश्चित कर देना बन्द कर दिया। उन्होंने स्वतन्त्र होने का भी दावा किया।

उस समय बोहरा राजा खुशहालीराम वगसिया ईश्वर भजन में अपना समय व्यतीत करते थे। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर महाराजा साहब बोहराजी से आवश्यक कार्यों में सलाह भी लेते रहते थे। जिस समय शेखावतों ने बगावत की उस समय महाराजा साहब और बोहराजी में कुछ अनबन थी। इसी कारण महाराजा ने इस कार्य में बोहराजी की कोई सलाह न ली।

महाराजा साहब ने विद्रोह को शान्त कर कर वसूल करने की बहुत चेष्टा की, पर वे अपने हर एक प्रयोग में असफल ही रहे। शेखावतों की प्रबल शक्ति के सामने महाराजा कुछ न कर सके। यहां तक कि रक्तपात तक

की नौबत आगई। हार कर महाराजा ने बोहराजी की सहायता ली। बोहराजी ने भी महाराजा को सहयोग दिया। बोहराजी को सम्मिलित देखकर शेखावतों ने अपना रुख बदल दिया और जयपुर के साथ सन्धि करली।

इस विषय में यह भी कहा जाता है कि शेखावतों की बगावत भी बोहरा राजा खुशहालीराम बणसिया के लिये ही थी। जब महाराजा साहब ने शासन सूत्र अपने हाथ में लिया और बोहराजी को विश्राम करने का अवसर दिया तो शेखावतों ने इसका विरोध किया था।

इस समय शेखावतों का ध्येय यह था कि "बोहराजी के हाथ से शासन की बागडोर न ली जाय। बोहराजी एक योग्य शासक हैं और वे जयपुर का शासन बड़ी ही योग्यता से कर रहे हैं। इस समय महाराजा साहब का कर्तव्य यह है कि वे बोहराजी के साथ मिलकर शासनतंत्र को संभालते रहें।"

शेखावतों का यह परामर्श महाराजा साहब ने नहीं माना था। इसलिये शेखावतों ने कर देना अस्वीकार कर दिया। वे स्वतन्त्र शासक होगये। यह विद्रोह बराबर एक वर्ष तक चलता रहा, किन्तु जयपुर नरेश इस विद्रोह को शान्त न कर सके। बोहराजी ने ही इसे शान्त किया। उस दिन से फिर बोहराजी का प्रभुत्व तात्कालिक जयपुर नरेश मानने लगे। महाराजा साहब बोहराजी को अपना संरक्षक समझने लग गये। शेखावतों के विद्रोह को शान्त करने के बाद बोहराजी फिर से शासनतन्त्र में हस्तक्षेप करने लग गये। इसके बाद महाराजा साहब को भी बोहराजी की अवहेलना करने का साहस न हुआ। बोहरा राजा खुशहालीराम बणसिया ने सदा ही अपना प्रभाव सर्वोपरि रक्खा।

यद्यपि बोहरा राजा खुशहालीराम बणसिया का क्रमबद्ध जीवन चरित्र आज प्राप्त नहीं है, किन्तु उनका शासन सम्बन्धी इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी।

जयपुर का प्रधान मन्त्रित्व प्राप्त करने से पूर्व बोहराजी का जीवन साधारणतया एक राज्य कर्मचारी सा रहा है। पर राज्य के साधारण कर्मचारी रहते हुए भी उन्होंने अपने बुद्धि कौशल से महाराजा को अपनी ओर आकृष्ट अवश्य किया था। मंत्रित्व प्राप्ति के बाद तो वे केवल मंत्री होकर ही नहीं रहे अपितु उन्होंने एक सुयोग्य शासक होने का परिचय देने के साथ साथ अपने यश की एक लम्बी परम्परा को जन्म दिया जो आज भी जीवित है।

बोहराजी ने तात्कालिक विचार धारा के अनुसार अपने अधिकार का उपभोग करते हुए जो न्याय और दान धर्म किये वे उनके जीवन की सबसे बड़ी निधि हैं। बोहराजी ने हजारों ब्राह्मणों और मन्दिरों को जमीनें प्रदान की थी। आज भी शेखावाटी में अधिकांश मन्दिर ऐसे हैं जिनमें बोहरा राजा खुशहालीराम बणामिया के हाथ के पट्टे मिलेंगे। इसी प्रकार वे न्याय करने में भी प्रसिद्ध थे।

सुनते हैं कि बोहराजी प्रत्येक प्रजा को प्रसन्न करने में निपुण थे। प्राय मुसलमानों के आने के बाद देखने में आता है कि-हिन्दू शासक के राज्य में मुसलमान प्रजाजन अप्रसन्न रहते हैं और मुसलमान शासक के राज्य में हिन्दू प्रजाजन अप्रसन्न रहते हैं, किन्तु हिन्दू और मुसलमान दोनों को प्रसन्न रखने में बोहराजी ने आदर्श उपस्थित किया था और यही कारण था कि बोहराजी मुगल बादशाहों के दरबार में भी सम्मानित हुए। वैसे तो कूट राजनीतिज्ञ होने के कारण सभी शासक बोहराजी का आदर करते थे किन्तु तात्कालिक मुगल बादशाहों ने बोहराजी की नीति चातुरी से पर्याप्त लाभ उठाया था।

बोहराजी ने अपने प्रभाव से बडे बडे नरेशों को झुकाया। जयपुर के साथ जिन राजाओं और राज्यों की शत्रुता थी उन सबको पूर्णरूप से जयपुर का मित्र बनाने में बोहराजी ही सफल हुए थे और इसी कारण तात्कालिक

जयपुर नरेश वोहराजी के प्रभाव से प्रभावित थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ जयपुर की जो सन्धि हुई उसमें वोहरा राजा खुशहालीराम वर्णासिया ने जयपुर की ओर से हस्ताक्षर किये थे।

वोहराजी के अन्तिम दिनों के विषय में दो मन्तव्य हैं। जिनमें पहले मन्तव्य के आधार पर यह सुनते हैं कि वोहराजी की मृत्यु उनके घर पर ही हुई। दूसरे मन्तव्य से यह प्रकट होता है कि वोहराजी की मृत्यु 'वसवा' नामक स्थान–जो जयपुर की सीमा पर स्थित है–पर युद्ध करते हुए हुई।

वस्तुतः वोहरा राजा खुशहालीराम वर्णासिया की मृत्यु वसवा के पास युद्ध में ही हुई थी। उनका समाधि स्थान 'वसवा' से आध मील पश्चिमोत्तर में रेल्वे लाइन के पास बना हुआ है जो आज ध्वंशावशेष मात्र है। इस विषय में वसवा के ग्राम वृद्ध यह कहते हैं कि–"जयपुर और भरतपुर की सेनाओं में यहां एक बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। जिसमें वोहरा राजा खुशहालीराम वर्णासिया ने खूब वीरता दिखाई। लड़ाई समाप्त हुई उस दिन वे अत्यधिक घायल हो गये थे। दूसरे दिन उनकी मृत्यु हो गई थी।

वोहराजी का समाधि स्थान आज खण्डहरप्राय है क्योंकि जब इधर से विक्रम सं० १६२८ में रेल्वे लाइन निकली तो वोहराजी के समाधि स्थान की छतरी लाइन के घेरे में आगई थी। इसके लिये रेल्वे के अंग्रेज ठेकेदार ने छान बीन कर वोहराजी के वंशजों को सूचना देने की चेष्टा की, किन्तु वोहराजी निःसन्तान मरे थे। उनके कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अतः रेल्वे के अंग्रेज ठेकेदार ने पर्याप्त प्रतीक्षा के बाद उस छत्री को तुड़वा डाला। सुनते हैं कि उसके ऊपर का गुम्बज तो उसने इंग्लैंड भेज दिया और बाकी का चबूतरा धीरे धीरे नष्ट हो गया। अब लगभग तीन चार फुट ऊंचा चबूतरा अवशेष है।

वोहराजी के समाधि स्थान की छत्री संगमरमर की बनी हुई थी। वह संगमरमर बहुत अधिक कीमती था। उस छत्री की एक शिला अब भी

समाधि के पास के एक कुए पर पडी है जो बिल्कुल नई सी प्रतीत होती है। किन्तु वोहराजी के समाधि स्थान का संगमरमर लगभग मुमताज बीबी के रोजे ताजमहल से मिलता जुलता था। इससे विदित होता है कि वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया मृत्यु पर्यन्त प्रभावशाली थे। उनका समाधि स्थान ही उनकी समृद्धि का परिचायक है। उनका यह समाधि स्थान समृद्धिशाली जयपुर राज्य ने बनाया था।

"वमजा" में वोहराजी की एक मिट्टी की मूर्ति भी है, जिसे लोग फाग के दिनों में रंग से रंगते हैं। इसके अतिरिक्त वोहराजी का एक शिलालेख भी है जो अब अस्पष्ट होने से समझ में नहीं आता। इस शिलालेख के विषय में ग्रामवृद्धों का कहना है कि यह लेख वोहराजी ने उस समय यहा लगवाया था जबकि दिल्ली का तात्कालिक बादशाह उनसे मिलने आया था। उस प्रसन्नता को चिरस्थायी करने के लिये यह शिलालेख यहा वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया ने लगवाया था।

वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया और "माचेडी" के सामन्त प्रतापसिंह नरूका मे बहुत अधिक अभिन्नता थी। वोहराजी ने अपने मंत्रीत्व काल में नरूका को प्रोत्साहन दिया और उसे राज्य विस्तार का अवसर देकर समृद्धिशाली बना दिया। अलवर राज्य जिसका अस्तित्व अब बृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हो गया है वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया की कृपा से "माचेडी" के सामन्त प्रतापसिंह नरूका द्वारा स्थापित हुआ था। इसके अतिरिक्त वोहराजी और भी कई एक राज्यों को समृद्ध, और शक्तिशाली बनाने में सहायक सिद्ध हुए थे।

वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया केवल राजनीतिज्ञ या शासक मात्र ही न थे वे एक दूरदर्शी, अर्थशास्त्री, अवसरवादी और प्रत्युत्पन्नमति भी थे। उन्होंने जयपुर राज्य की चार पीढ़ियाँ देखी थी। चारों पीढ़ियों को उन्होंने अपने बुद्धि कौशल से प्रभावित किया था।

वे महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) के वयस्यों में थे। फिर नायब दीवान हुए और फिर महाराजा पृथ्वीसिंह के समय में प्रधान मंत्री हुए। पृथ्वीसिंह की मृत्यु गद्दी पर बैठने के कुछ काल बाद ही हो गई थी। अतः उनके बाद महाराजा प्रतापसिंहजी सिंहासनासीन हुए। महाराजा प्रतापसिंहजी का देहान्त भी वोहराजी के सामने हो गया था। उनके बाद महाराजा जगतसिंहजी राजगद्दी पर बैठे। महाराजा जगतसिंहजी के गद्दी पर बैठने के बाद भी वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया पर्याप्त समय तक जीवित रहे।

सुनते हैं कि वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया ने जयपुर राज्य के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये वर्तमान सवाई माधोपुर और श्रीमाधोपुर नामक नगरों का निर्माण कराया था। वे नगर निर्माण कला में भी पूर्ण दक्ष थे। उनके बसाये हुए नगरों से जयपुर का व्यापारिक क्षेत्र बहुत अधिक प्रभावित हुआ था। ये दोनों नगर आज भी जयपुर के प्रधान केन्द्र हैं।

महाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) के साथ वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया का बहुत घनिष्ट सम्पर्क था, इसीलिये उन्होंने उपर्युक्त दोनों नगरों का निर्माण महाराजा माधवसिंहजी के नाम पर किया। यदि ऐसा न होता तो वे अपने नाम पर नगर निर्माण करवाते।

महाराजा जगतसिंहजी के समय की वोहराजी के जीवन की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। सुनते हैं कि महाराजा जगतसिंहजी ने 'कपूर' नामक एक वेश्या पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वस्तु मांगने को कहा था। उस वेश्या ने महाराज के कथन पर आधा राज्य मांग लिया। महाराजा ने देना भी स्वीकार कर लिया। उस समय वोहराजी नाहरगढ़ के किले में रहा करते थे। वे अधिकतर ईश्वर भजन में ही लगे रहते थे। राजकाज के कामों से प्रायः विरत-से थे। फिर भी वे जयपुर के हित साधन के लिये हर समय कृतसंकल्प रहा करते थे।

जब उन्हें 'कपूर' वेश्या के षड्यन्त्र का पता लगा तो वे नीचे आये और आकर सीधे 'कपूर' के घर गये। उन्होंने 'कपूर' को राजा की कृपा पात्री होने के नाते बहिन बना लिया और उससे राखी बन्धवा कर उसके राखी बन्द भाई बन गये। फिर उन्होंने 'कपूर' को अपने घर चलने का आग्रह किया। 'कपूर' ने भी अपने राखी बन्द भाई के घर जाने में कोई आपत्ति न समझी।

वोहराजी उसे पर्दे की गाडी में बैठाकर सीधे राजमहल में ले गये और वहाँ जाकर उसे साफ कह दिया कि अब आधा राज्य पाने की आशा न करना। अब तो तुम जयपुर की रानी बनकर इसका सारे का ही उपभोग करो। वेश्या बड़ी चकराई। किन्तु कोई उपाय न था। अब वह राजमहल से बाहर नहीं जा सकती थी। लाचार हो वह अन्त पुर में ही रह गई। वोहराजी की इस नीति चातुरी से जयपुर के राज्य की रक्षा हो गई।

बोहरा राजा खुशहालीराम बरणसिया भवन निर्माण कला के जानकार और उसके अत्यधिक प्रेमी थे। जयपुर की पुरानीबस्ती में जितनी सुन्दर इमारतें हैं, उनमे अधिकाश वोहराजी की बनवाई हुई हैं। कालाना के पुरोहितों की हवेली उन्होंने अपने भानजे को-जिसका नाम आज अज्ञात है-किसी पर्व पर दान में दी थी।

यह भी प्रसिद्ध है कि वोहराजी ने नि सन्तान होने के कारण अपनी माता के अनुरोध पर गौड़ीय सम्प्रदाय की मुख्य प्रतिमा ठाकुर गोपीनाथजी को वृन्दावन से लाकर अपने दिवान खाने मे प्रतिष्ठित करा दिया था। मातृ भक्त वोहराजी ने अमर औरस सन्तान के रूप मे ठाकुरजी के दिव्य दर्शन अपनी माता को कराये थे।

जयपुर की पुरानी बस्ती में स्थित गोपीनाथजी का मन्दिर बोहरा राजा खुशहालीराम बरणसिया का ही बनवाया हुआ है। वोहराजी के प्रभाव के कारण ही ठाकुर गोपीनाथजी के मन्दिर के नीचे शेखावत सरदारों ने

जागीरें भेंट की थी जो आज तक विद्यमान हैं। शेखावतों के आराध्य देव गोपीनाथजी ही हैं। आज भी परस्पर मिलते समय शेखावत सरदार "जय गोपीनाथजी की" कहते हैं।

अपनी जाति के लिये भी बोहराजी गौरव की वस्तु थे। उन्होंने खाण्डलविप्र जाति के उत्कर्ष के लिये भी बहुत अधिक कार्य किया था। जयपुर राज्य में स्थित खाण्डलविप्र अधिकारियों के मंदिरों को बोहराजी ने पर्याप्त भू सम्पत्ति प्रदान की थी। जयपुर के पुराने रिकार्ड में इस प्रकार की बहुत-सी घटनायें संगृहीत हैं।

शेखावाटी के प्रायः सभी वैष्णव मन्दिर और जयपुर राज्य के अन्य भागों के मन्दिरों में बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया की दी हुई जमीनें हैं। इसके अतिरिक्त बोहराजी ने अपने सगोत्रियों को भी उदक और माफी में पर्याप्त जमीनें दिलवाई थी। "वसवा" जहां बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया की मृत्यु हुई थी-में दो तीन वणसियों के घर हैं। उनके पूर्वजों को बोहराजी ने जमीनों के पट्टे करवा दिये थे। उन पट्टों में बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया के दस्तखत हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया प्रत्येक प्रजाजन को प्रसन्न करने में निपुण थे। वस्तुतः वे प्रत्येक प्रजाजन को प्रसन्न करने में ही सिद्ध हस्त न थे अपितु नीतिकारों के इस सिद्धान्त के अपवाद भी थे। जैसा कि :—

"नरपति हितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके,
जनपदहितकर्त्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने,
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता॥

अर्थात्—राजा का हितैषी प्रजा का शत्रु होता है और प्रजा का हितैषी राजाओं से परित्यक्त होता है। इस प्रकार इस महान् विरोध के

रहते हुए राजा और प्रजा दोनों का समान रूप से हित चाहने वाला मनुष्य दुर्लभ होता है।"

वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया उभय हितैषी थे। उन्होंने जो लोक प्रियता प्रजा से प्राप्त की वही राजाओं से पाई। इन्होंने अपने नीति चातुर्य से राजा और प्रजा दोनों को प्रसन्न रक्खा। उन्होंने अपने नेतृत्व का पूर्ण उत्तरदायित्व निभाया। देश, जाति, समाज और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य पालन करते हुए अपने गौरवशाली जीवन को राजा महाराजाओं के समान व्यतीत किया।

वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया खण्डेलवाल जाति के उन नररत्नों में से थे जिनके आदर्श जीवन चरित्रों से जातियां प्रेरणा पाकर उन्नति की ओर अग्रसर होती हैं। यद्यपि आज वोहराजी विद्यमान नहीं हैं, किन्तु उनका अमर यश सर्वत्र व्याप्त है और इससे सुरभित वायुमण्डल प्रत्येक खण्डेलवाल के हृदय में नवजीवन का संचार कर रहा है।

वोहरा राजा खुशहालीराम वणसिया के समसामयिक कवियों ने उनके प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है —

दिल्ली सतार जाणियो करे यावन प्रगना दान।
अकधारी तप चौगुनो हुयो छत्रधारी ब्राह्मण॥
पूज्य आमेरपति सतारा को नाथ मान,
कलकत्तो काण मान फिरंगी पाये लाग,
पूठाय पालकु हाड़ा, सिसोदिया।
रह्याया राठोड़जी भूप ही भलावत लाज वोहरा खुशहाल को।
कुला सिणगार खुशहालीराम फय फव,
चाल झंडा निशाण, तैं चाल्या ही चाल ही राजाराण।
हाल गर मेर दूज गढ़ कोट आये दर ही तो ही ओट,
पुराजन पुर भलो तो ही परतान।

ठंडे जल आछ्या बोहरा री मिनाई जाम,
लटौ शुद्ध मिष्ठ भुलावा री लाग ।
सोणो न रीटर यादवाद थाँक ज्यान पूर्णा री मोट.
हिन्द गजराज निमाणा रोट,
धारा धारा बनसिया हुआ गढ़पति जागीरान.
चारों कूँट में छुता उद्गत खुशहालीराम निहाग महल ।

महर्षि मंगलदत्तजी

विक्रम सं० १८६५ में महर्षि मंगलदत्तजी महाराज का जन्म शेखावाटी के "गनेड़ी" नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। यह गांव सीकर से पश्चिम की ओर लगभग दश कोस की दूरी पर जयपुर और बीकानेर राज्य की सीमा पर अवस्थित है। इस गांव में सदा से ही लक्ष्मीपतियों का निवास रहा जिससे यह गांव छोटा होने पर भी इतिहास प्रसिद्ध है।

महर्षि मंगलदत्तजी को जन्म देकर "गनेड़ी" ने अपना नाम और भी गौरवान्वित किया, यह सर्व विदित है। महर्षि मंगलदत्तजी ने उस समय शेखावाटी और उसके आस पास के प्रदेश को किस प्रकार सुधारा इसका प्रमाण आज के शेखावाटी के समुन्नत नागरिकों के वरान है।

महर्षि मंगलदत्तजी के जन्म के पहले शेखावाटी और उसके आस पास के प्रदेश की दशा अत्यन्त दयनीय थी। यह प्रान्त शिक्षा सदाचार आदि सभी क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था। ऐसी विषम परिस्थिति में महर्षि मंगलदत्तजी ने जिस उत्साह और धैर्य से काम लिया वह वस्तुतः अवर्णनीय है। विशेषता यह थी कि उन्हें किसी प्रकार के साधन प्राप्त नहीं थे। उन्होंने केवल अपनी प्रतिभा और उत्साह के बल पर ही शेखावाटी में शिक्षा, सदाचार और नागरिकता का प्रचार किया था। आज शेखावाटी में सभ्य और संस्कृत समाज का जो परिष्कृत स्वरूप है, वह उनकी तपस्या का ही फल है।

अकेले शेखावाटी को ही महर्षि मंगलदत्तजी के जन्म से लाभ हुआ हो सो बात नहीं है। समस्त मरुधारा उनकी ऋणि है। उन्होंने जयपुर, बीकानेर और जोधपुर तथा हिस्सार के बीच वाले समस्त प्रदेश को अपना कार्य क्षेत्र बनाया था और सर्वत्र ही शिक्षा, सदाचार द्वारा समाज को सुखी करने का अतुल उद्योग किया था।

महर्षि मंगलदत्तजी ने अन्य पण्डितों और विद्वानों के समान पाण्डित्य प्रदर्शन मात्र से ही अपनी प्रतिभा को नष्ट नहीं किया। उन्होंने तो मनुष्यों को सुमार्ग पर लाकर उन्हें वास्तविक मानव बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया था। महर्षि ने नष्ट हुई वर्णव्यवस्था को इस प्रदेश में पुनरुज्जीवित किया। वर्णों को उनके स्वरूप का ज्ञान कराया और उन्हें पाखण्डियों के चंगुल से छुड़ा कर वास्तविक उनका पथ प्रदर्शन किया। वे अपने उसी अलौकिक त्याग के कारण मारवाड़ निवासियों के लिये प्रात स्मरणीय बने हुए हैं।

महर्षि मंगलदत्तजी के पिता एक सुयोग्य और प्रतिभा सम्पन्न विद्वान थे। उनका नाम टोडरमलजी था। वे खाण्डलविप्र जाति के चोटिया अवटंक में उत्पन्न हुए थे। वे प्रारंभ से ही समाज में शिक्षा प्रसार के पक्षपाती थे। उनको कई एक ऐसे संकटों का सामना करना पड़ा कि जिससे वे अपनी प्रतिभा को विकसित करने में असमर्थ रहे। उनकी इच्छा उनके पुत्र महर्षि मंगलदत्तजी ने पूर्ण की।

पण्डित टोडरमलजी के बड़े पुत्र का नाम कन्हैयालालजी था। वे भी विद्वान् थे, किन्तु अपनी लजालु प्रकृति के कारण जनसमाज के सम्पर्क में बहुत कम आये। पण्डित टोडरमलजी मंगलदत्तजी के जन्म के थोड़े दिन बाद ही ग्रामकों से खटपट हो जाने के कारण "गनेड़ी" छोड़कर रोहतक जिले में "लाडवी" नामक ग्राम में आ बसे थे। पण्डित मंगलदत्तजी का बाल्यकाल प्राय "लाडवी" में ही बीता। वे बचपन से ही मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न थे। उनकी प्रकृति विशेष चंचल और सार ग्राहक थी। किशोरा-

वस्था में ही वे अपनी चंचल प्रकृति के कारण घर छोड़कर भाग खड़े हुए।

घर छोड़ने में उनके दो उद्देश्य थे। पहला देशाटन और दूसरा विद्याध्ययन। जगन्नियन्ता जगदीश्वर की कृपा से मंगलदत्तजी के दोनों ही मनोरथ पूर्ण हुए। उन्होंने कुरुक्षेत्र, अमृतसर और पटियाला में क्रमशः उच्च कोटि के विद्वानों के पास विद्याध्ययन किया। उस समय की शिक्षा पद्धति के अनुसार उन्होंने वेद और उसके षडंगों का विधि पूर्वक अध्ययन, मनन और निदिध्यासन किया।

उनका अध्ययन केवल पोथियों तक ही सीमित न रहा अपितु उन्होंने प्रतिभा के बल पर देश की आन्तरिक परिस्थितियों का भी अध्ययन किया। उन्होंने समाज को भी सूक्ष्म दृष्टि से देखा, और अनुभव किया भारत की प्राचीन संस्कृति के घोर पतन का; जिससे उन्हें मर्मान्तक वेदना हुई। उन्होंने प्रत्येक बात पर विचार कर देखा। देश और समाज के आन्तरिक शत्रुओं की शक्ति का भी सन्तुलन किया। इस प्रकार महर्षि मंगलदत्तजी ने एकांगी अध्ययन न कर सर्वांगीण अध्ययन किया और अपने को तदनुरूप बनाने के लिये प्रबल परिश्रम भी किया।

भारतीय आर्य संस्कृति सदा से ही आचार प्रधान रही है, क्योंकि भारत एक आध्यात्मिक देश है। इसका मानसिक धरातल संसार के अन्य देशों से सर्वथा भिन्न और समुन्नत रहा है। मानवता का सच्चा दर्शन भारत में ही होता आया है। भारत की शिक्षा पद्धति प्रारम्भ में मानवोपयोगी विषयों से परिपूर्ण रही है। उसमें सदाचार, नागरिकता, राष्ट्रीयता और धार्मिकता का सम्मिश्रण पूर्ण रूप से रहा है। भारत के नागरिक सदा से ही आत्म निर्भर और निर्भय रहे हैं। उनके जीवन में निराशा को बहुत कम अवसर मिला है। संसार की सभी जातियां उनकी ऋणी रही हैं।

त्याग भारतीयों का सर्वश्रेष्ठ गुण रहा है। महर्षि मंगलदत्तजी ने अध्ययन के साथ साथ त्याग का पाठ इतना अधिक हृदयंगम कर लिया था

कि वे अपने जीवन को सर्वथा त्यागमय बना सके। उनको अध्ययन काल में ही अपने वर्तमान स्वरूप का ज्ञान होगया था। वे अपने उस जीवन से कभी सन्तुष्ट नहीं हुए। देश और समाज की शोचनीय अवस्था के कारण वे सदा ही चिन्तित और उद्विग्न रहते थे।

देश की समुन्नति और समाज का अभ्युत्थान ही उनके जीवन का लक्ष्य था। अपने इस महान् और गुप्त संकल्प को पूर्ण करने के लिये मंगलदत्तजी ने अपने अध्ययन को बहुत अधिक गंभीर रूप दिया था। उनकी इच्छा समस्त देश को सुशिक्षित और कर्तव्य परायण देखने की थी। वे देश में जनता के पथ प्रदर्शक और कर्तव्य परायण विद्वान् उत्पन्न करना चाहते थे। इस संकल्प में वे बहुत कुछ सफल हुए, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मारवाड़ प्रदेश की वर्तमान शिक्षित जनता है।

समाज के नवनिर्माण की दिशा में भी महर्षि मंगलदत्तजी ने बहुत कुछ कार्य किया, यह सर्वविदित है। महर्षि मंगलदत्तजी ने तात्कालिक समाज को बहुत कुछ परिवर्तित कर दिया था। उस समय का समाज कितना अधिक अवनत था, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। मंगलदत्तजी के प्रादुर्भाव के पूर्व समाज का जीवन नैतिक और शैक्षिक पतन की पराकाष्ठा तक पहुँच गया था।

यद्यपि वर्णव्यवस्था पहले से ही गिरी हुई थी, किन्तु उस समय पाखण्डियों के फेर में पड़कर वर्णों का पतन और भी गहराई से हो रहा था। ब्राह्मण ब्राह्मणत्व को छोड़ रहे थे। क्षत्रिय और वैश्य वर्ण तो पहले ही द्विज धर्म से निमुख हो चुके थे। उनका यज्ञोपवीत संस्कार बन्द हो चुका था। उस समय शूद्र पाखण्डियों के चंगुल में फंसकर ब्राह्मण भी यज्ञसूत्रधारी होते जा रहे थे। आचार विचार का समाज में कहीं नाम भी न था। पचायतों के रूप में विभक्त समाज घोर रूढीवादी और कुसंस्कारों से प्रभावित था। संध्या वंदन और यज्ञादि का नाम भी गृहस्थ लोग भूल गये थे।

पाखण्डी साधु सन्यासी और मत प्रवर्तकों का उच्छिष्ट तक द्विजाति प्रसाद के रूप में खाने लग गये थे। ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद जनता को किंकर्तव्य विमूढ़ बनाये हुये थे। पाखण्डी मिथ्या गुरुओं का आतंक प्रभाव दिनों दिन समाज में बढ़ रहा था। शासक वर्ग फूट और कलह में पड़कर प्रजा हित से मुख मोड़ चुका था। प्रजा पोषण को परम धर्म मानने वाले सूर्य, चन्द्र वंशी नरेशों के वंशधर महीपति प्रजा-शोषण में ही अपनी वीरता की चरम सीमा समझ रहे थे। धर्म और सदाचार मृतप्राय थे।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी महर्षि मंगलदत्तजी ने अपूर्व साहस का परिचय दिया। उन्होंने शासक वर्ग की अपेक्षा समाज को विशेष रूप से संजीवित करने का प्रयत्न किया। वे जानते थे कि बिना साधारण जनता को सुशिक्षित किये कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिये उन्होंने अपना पहला कार्य शिक्षा प्रसार रक्खा। उन्होंने समाज में जो आवश्यक सुधार किये वे सम्पूर्ण न थे किन्तु समाज सुधार की सुदृढ़ नींव अवश्य थे। उसी के आधार पर आज मारवाड़ी समाज का वर्तमान परिष्कृत रूप देखने को मिल रहा है।

उस समय आज के समान साधन बाहुल्य नहीं था। राजस्थान में तो रेल तार तक का भी प्रबन्ध न हुआ था। वैसे देखा जाय तो एक राजस्थान ही क्या! समस्त भारत ही उस समय साधन विहीन था। देश में समाज शासन की कोई निश्चित प्रणाली न थी। इसलिये मंगलदत्तजी को परम्परागत सामाजिक शासन प्रणाली के आधार पर ही अपना कार्य प्रारम्भ करना पड़ा। उन्होंने योग्य विद्वान् उत्पन्न करने का दृढ़ संकल्प किया। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित और सदाचारी बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया। आज भी उनकी शिक्षा और सदुपदेश से प्रभावित मारवाड़ी सेठ साहूकारों के समृद्ध परिवार पूर्ण सदाचारी और शिक्षा सम्पन्न होते चले आ रहे हैं।

इन कामों के साथ साथ महर्षि मंगलदत्तजी ने एक और भी कार्य

विशेष रूप से किया था जो वस्तुत तात्कालिक समय की माग थी। उस समय उन्होंने सबसे अधिक जोर ब्राह्मण जाति पर दिया था। आज के समान ही उस समय भी ब्राह्मण जाति की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। उस समय भी ब्राह्मण वर्ण अत्यधिक शोचनीय दशा में पहुँच गया था। उस काल की अवनति मे आज की अपेक्षा कुछ अन्तर अवश्य था।

उस समय ब्राह्मण जाति अज्ञता के कारण अवनत हो रही थी। साधन विहीनता और सफल नेतृत्व का अभाव था। आज की परिस्थितिया उस समय से भिन्न हैं। आज सभी साधनों के होते हुए भी ब्राह्मण जाति आलस्यवश अवनत हो रही है। आज शिक्षा और सदाचार का त्याग आलस्यवश होता जा रहा है। देखते देखते ब्राह्मण जाति ने पिछले स्वर्ण युग को खो दिया। ब्राह्मण जाति कुछ सन्तोषजनक प्रगति पिछले साठ वर्षो में न कर सकी।

महर्षि मगलदत्तजी के समय में भी ब्राह्मण जाति कई एक व्याधियों से त्रस्त थी। "ब्राह्मण अन्य वर्णों के सदा से ही शिक्षक रहे हैं।" महर्षि मंगललदत्तजी ने ब्राह्मणों को यही उपदेश देकर उन्हें शिक्षा की ओर आकृष्ट किया था। यद्यपि उस समय का ब्राह्मण वर्ण अवनत था, किन्तु आज के समान आलसी और अकर्मण्य न था। साधनो का अभाव होने पर भी उन्होंने नाना कष्ट उठाकर विद्याध्ययन किया। कर्तव्यपालन की ओर अग्रसर हुए। सन्ध्या वन्दन का महत्व समझा। समाज की परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त किया और देश की दयनीय दशा पर विचार करने योग्य हुए।

समाज के नवनिर्माण की ओर बढने का साहस भी महर्षि मंगलदत्तजी ने ब्राह्मण जाति को प्रदान किया। उन्हीं के परिश्रम के फलस्वरूप मारवाडी ब्राह्मणों के घरों मे वेद ध्वनिया सुनाई देने लगी। उन्होंने ब्राह्मणों को उनके सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराया। गृहस्थ धर्म की सत् शिक्षा मारवाड़ियों को महर्षि मगलदत्तजी से ही प्राप्त हुई।

मारवाड़ प्रदेश के सभी ब्राह्मण वर्गों की अवान्तर जातियां आज परिष्कृत रूप लेकर आगे बढ़ने की जो चेष्टायें कर रही हैं, यह महर्षि मंगलदत्तजी की प्रतिभा और उनके परिश्रम का फल है। अशिक्षित ब्राह्मण समुदाय केवल ईर्ष्या और कलह का अखाड़ा बना हुआ था, उसे सत्पथ पर लाकर महर्षि मंगलदत्तजी ने उसे अध्ययनशील बनाया। इनके भीतरी सुधारों की ओर उन्होंने विशेष रूप से ध्यान दिया। यदि उस समय ब्राह्मण जाति को महर्षि मंगलदत्तजी का सहारा न मिलता तो आज मारवाड़ी ब्राह्मणों का क्या स्वरूप होता, इसकी कल्पना भी नहीं की जासकती। उस समय महर्षि मंगलदत्तजी ने ही अपने अथक परिश्रम से मारवाड़ी ब्राह्मणों का ब्राह्मणत्व सुरक्षित रक्खा था।

ब्राह्मण जाति के उत्थान के साथ साथ महर्षि मंगलदत्तजी ने वैश्य समाज को भी अत्यधिक प्रभावित किया। उनके प्रभाव का ही फल था कि उस समय नाना मतावलम्बी पाखण्डियों के चंगुल में फंसा हुआ वैश्य समाज मुक्त होकर फिर से अपनी सनातन मर्यादाओं को अपना सका।

उस समय पाखण्डियों के चंगुल में फंस कर वैश्य समाज भी पथभ्रष्ट होगया था। महर्षि मंगलदत्तजी के उदय काल से पहले मारवाड़ का कोई भी वैश्य परिवार यज्ञोपवीत धारी न था। किसी के घर में सन्ध्या वन्दन और पंच महायज्ञ का प्रचार न था। किसी सनातन मर्यादा का पालन वे लोग न करते थे। वैश्य वर्ण भी एक प्रकार से पूर्णतः आचार शून्य होकर अवनति की ओर अग्रसर हो रहा था।

महर्षि मंगलदत्तजी ने वैश्य समाज को सदुपदेश द्वारा उसके सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराया। उन्होंने ही तात्कालिक वैश्य समाज को यज्ञोपवीत, संस्कार द्वारा संस्कृत कर वेदमाता गायत्री से दीक्षित किया। उन्हें सच्चे गृहस्थ धर्म का ज्ञान कराया। उसको प्राचीन आर्य संस्कृति का स्वरूप बतलाकर पाखण्डियों के पंजे से निकाला।

इसी प्रकार देश के शासक राज्यन्यवर्ग को भी महर्षि मंगलदत्तजी ने समय समय पर अपने उपदेशों द्वारा प्रभावित किया। उन्हें प्रजाहित का ध्यान दिलाया और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने यह किया कि राजाओं को उनका उत्तरदायित्व समझाने की पूर्ण चेष्टा की। धर्म संरक्षण की दिशा में उन्हें प्रेरित किया। उनको केवल शासक मात्र बने रहने की अपेक्षा प्रजाहित सम्पादन और उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये बाध्य किया। परिणाम यह हुआ कि राजा लोग भी समाज सुधार की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने राजाओं को प्रजा में शिक्षा प्रसार करने के लिये प्रोत्साहित किया। उन्होंने राजाओं को अविचार से दूर रहने का उपदेश दिया।

महर्षि मंगलदत्तजी ने राजा महाराजाओं के सम्पर्क में रहते हुए भी महान् त्याग का आदर्श उपस्थित किया। विशेष तो क्या किन्तु महर्षि मंगलदत्तजी के लिये यह कहना अनुचित न होगा कि उन्होंने उन्नीसवीं शदी में भी प्राचीन भारत के ऋषि महर्षियों की एक झलक हमें दिखाई। उन्होंने अपने पूर्वज ऋषि महर्षियों के पद चिन्हों पर चलकर अपना आदर्श औरों के सामने रक्खा और अतुल परिश्रम द्वारा औरों को भी पूर्वजों के पद चिन्हों पर चलने को बाध्य किया।

यद्यपि वे जहा तक चाहते थे वहा तक उनका कार्य क्षेत्र व्यापक न होसका। फिर भी उनके कार्य का महत्व बहुत अधिक व्यापक है। आज एक शताब्दी से अधिक समय बीत जाने पर भी उनकी व्यापक प्रेरणायें समाज को प्रोत्साहन प्रदान कर रही हैं। चाहें कितने ही क्रान्तिकारी परिवर्तन हों किन्तु युग युगान्तर तक भी मारवाड निवासी प्रात स्मरणीय महात्मा मंगलदत्तजी को नहीं भूल सकते। उनके आदर्श मारवाडी समाज के उत्थान की सुदृढ नींव मे लगे हुए हैं जिन पर मारवाड़ियों के भावी उत्थान का भावी प्रसाद खड़ा होगा। उस महापुरुष का त्याग हमारे अतीत का गौरव और भविष्य का प्रकाश स्तंभ है।

प्रातः स्मरणीय महर्षि मंगलदत्तजी के जीवन चरित्र के विषय में अधिकार रूपसे कुछ भी लिखना कठिन है क्योंकि उनके जीवन का कोई अंश लिपिबद्ध नहीं मिलता। केवल सुनी हुई घटनाएँ और जन श्रुतियों के आधार पर ही आज तक लोग उनका चरित्र चित्रण करते आये हैं।

महर्षि मंगलदत्तजी का जीवन चरित्र रतनगढ़ निवासी स्वर्गीय सेठ रामगोपालजी डूंगायच ने सुजानगढ़ निवासी पण्डित मोहनलालजी राष्ट्र सेवक से लिखवा कर प्रकाशित करवाया था। उसके बाद पण्डित शिवरामजी जोशी वेदान्त मार्तण्ड रतनगढ़ निवासी ने "मंगल महर्षि महाकाव्य" काशी के प्रसिद्ध विद्वान् देवीप्रसादजी कवि चक्रवर्ति द्वारा लिखवाकर प्रकाशित करवाया। इन दोनों ग्रन्थों ने महर्षि मंगलदत्तजी के चरित्र की बहुत कुछ जानकारी जनसाधारण को करवाई।

कुछ समय पूर्व तक महर्षि मंगलदत्तजी के समकालीन कतिपय महानुभाव विद्यमान थे किन्तु खोज करने पर पता चला कि अब उनका गोलोकवास हो चुका है। महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के जीवन चरित्र के सबसे अधिक जानकार उनके प्रपौत्र श्री पण्डित उमादत्तजी महाराज रत्न नगर निवासी थे। अब उनका भी स्वर्गवास हो चुका है।

पण्डित उमादत्तजी महाराज के स्वर्गवास से कुछ समय पूर्व इन पंक्तियों के लेखक का साक्षात्कार उनसे हुआ था। उस समय अन्यान्य वार्तालाप के साथ साथ उन्होंने महर्षि मंगलदत्तजी के जीवन चरित्र पर भी प्रकाश डाला था। उसके आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि महर्षि मंगलदत्तजी का जीवन एक आदर्श राष्ट्र सेवक और सिद्ध योगी का जीवन था। उनके जीवन में आलस्य, निरुत्साह और अनाचार का कभी समावेश नहीं हुआ।

आज शिक्षा प्रसार के लिये व्याख्यानों की भरमार है किन्तु वे व्याख्यान मात्र ही हैं। उनमें रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्ति व्याख्यानदाता भी

करने को तैयार नहीं। महर्षि मंगलदत्तजी ने आज से सौ वर्ष पहले समाज में शिक्षा प्रसार की आवश्यकता का अनुभव किया था। उन्होंने कभी भी मंच पर खड़े होकर भाषण देने की आवश्यकता नहीं समझी। वे कभी किसी से चन्दा मागने नहीं गये और उन्होंने कभी किसी विशाल शिक्षणालय के लिये प्रासाद की आवश्यकता जनता को न बतलाई, जबकि उनका कार्य आज के व्याख्याताओं से विशेष महत्वपूर्ण और स्थायी हुआ।

महर्षि मंगलदत्तजी महाराज अपनी चलती फिरती पाठशाला में सैकड़ों छात्रों को पढ़ाया करते थे। स्वय ही उनके भोजन वस्त्र की व्यवस्था करते थे। यद्यपि महर्षि स्वय केवल तपोधन थे किन्तु उनके तप प्रभाव से उनके अन्तेवासियों को किसी प्रकार का अभाव न खटकता था। महर्षि से प्रभावित महाजन लोग स्वयं ही उनके छात्रों का भरण पोषण करते रहते थे। महर्षि अपने छात्रों को सुयोग्य विद्वान बनाकर कर्म क्षेत्र में उतारते थे। उन्होंने अपने छात्रों को सदा ही देश और समाज की आवश्यकताओं का अनुभव कराया। अपने छात्रों को सदा परोपकार परायण और श्रद्धालु बनाये रखना मंगलदत्तजी ने शिक्षा की पहली सीढ़ी समझी। वे अपने छात्रों को आलसी और अकर्मण्य कभी न होने देते थे। उनके छात्र कितने सुयोग्य हुए, यह मारवाड प्रदेश के परम्परागत विद्वान् विशेष रूपसे जानते हैं।

जिस प्रकार महर्षि मंगलदत्तजी ने स्वयं शास्त्र मर्यादा का पालन करते हुए अध्ययन किया था वैसा ही अपने शिष्यों को बनाया। मरुधरा में शिक्षा प्रचार और समाज सुधार का कार्य सर्वप्रथम महर्षि मंगलदत्तजी महाराज ने ही किया था। उनके जीवन में असफलता के कहीं भी दर्शन नहीं होते। वे जहा जाकर खड़े हो जाते थे वहीं उनका प्रभाव जन जन में व्याप्त हो जाता था। त्याग और तपस्या उनमे असीम थी। उन्होंने कभी ऐहिक सुख की कामना नहीं की। उन्होंने सदा से ही धन के प्रति उदासीनता दिखाई। वे कभी स्वार्थ साधन की ओर नहीं झुके।

महर्षि मंगलदत्तजी के निःस्वार्थी होने में विशेषता यह थी कि वे निरन्तर जन सम्पर्क में रहते थे। उन्होंने आजीवन धनियों से सहयोग बनाये रक्खा किन्तु धन के प्रति वे आकृष्ट न हुए, जब कि धनपतियों पर उनका अमिट प्रभाव था।

उन्होंने अपने लिये कुछ भी संग्रह नहीं किया। केवल प्राण धारण मात्र भोजन और तन ढकने को वस्त्र तक ही उनकी आवश्यकतायें सीमित रहीं। इतना बड़ा आदर्श त्याग और इतनी अधिक लोक सेवा की भावना विरले ही पुरुषों में मिलती है।

महर्षि मंगलदत्तजी का पारिवारिक जीवन भी स्पृहा रहित था। वैसे तो वे पूर्ण संसारी थे। वे एक कर्मठ गृहस्थ और आदर्श पत्नीव्रतधारी थे। उन्होंने पत्नी का परित्याग अवश्य किया था किन्तु राम के समान। अध्ययन समाप्त कर उन्होंने भी आर्य पद्धति के अनुसार विवाह किया था, किन्तु पत्नी ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर गंभीर असज्जनता का परिचय दिया, जिसके कारण वाध्य होकर उन्होंने अपनी पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध तोड़ दिया और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अपना प्रण पूरा किया। उनके जीवन में यह ऐसी घटना भी आश्चर्यजनक है। इसी हेतु उनके कोई औरस सन्तान न थी। उन्होंने अपने बड़े भाई कन्हैयालालजी के पुत्रों को ही पुत्र समझा और आज भी उनके वंशधर वे ही माने जाते हैं।

महर्षि मंगलदत्तजी ने जिन विद्वानों के पास रहकर अध्ययन किया था, वे उस समय भारत के गण्यमान्य विद्वान् थे। कुरुक्षेत्र में श्री हरिद्वारजी, और अमृतसर में पण्डित गुलझारीलालजी उस समय परम प्रसिद्ध विद्वान् थे। पहले इन्हीं महानुभावों के सम्पर्क में मंगलदत्तजी रहे। फिर उन्होंने जम्मू के राजगुरु श्री हरिकृष्णजी से मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया था।

श्रीहरिकृष्णजी उस समय के विशेष ख्याति प्राप्त विद्वान् थे। नरेशों पर उनका अच्छा प्रभाव था। श्रीहरिकृष्णजी के पास रहकर महर्षि मंगलदत्तजी

वंशीधर सेखसरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य

महर्षि मंगलदत्तजी महाराज की समाधि, नवलगढ़.

पृष्ठ २१२ पर देखिये

ने मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया, साथ ही व्यावहारिकता का भी सर्वांगीण मनन उन्हीं के पास रहकर किया।

पटियाला आने पर मंगलदत्तजी को उपर्युक्त विद्वानों से भी विशिष्ट विद्वान का सहयोग मिला। पटियाला मे पण्डित वैराग्यरामजी एक गंभीर विद्वान् थे। वे पटियाला के राजपण्डित थे। पण्डित वैराग्यरामजी बहुत उदार, साधु, त्यागी और तपस्वी महापुरुष थे। उनका प्रभाव चारों ओर विशेष रूपसे फैला हुआ था। उनकी ख्याति बहुत अधिक थी।

महर्षि मंगलदत्तजी ने पठित शास्त्रों का गंभीर मनन इन्हीं विद्वद् मूर्ति की सन्निधि मे किया। वैराग्यरामजी ने मंगलदत्तजी की छिपी हुई प्रतिभा को पहचानकर उन्हें अग्रसर होने का पूर्ण प्रोत्साहन दिया। वस्तुत वैराग्यरामजी की कृपा का ही फल था कि महर्षि मंगलदत्तजी मरुधरा का उद्धार करने में समर्थ हुए।

वैराग्यरामजी मंगलदत्तजी को प्रतिभा विकसित करने का अवसर विशेष रूपसे दिया करते थे, जिससे वे निर्भय और कार्य कुशल होते जाते थे। महर्षि मंगलदत्तजी के कार्य का श्रीगणेश पटियाला से ही हुआ था। सर्वप्रथम उनके पाण्डित्य के दर्शन पटियाला को ही हुए।

उस समय भी यत्र तत्र राजाओं में पाण्डित्य-प्रेम के दर्शन होजाया करते थे। तात्कालिक पटियाला नरेश भी गुण ग्राहक और सुयोग्य शासक थे। उन्हें पण्डितों से प्रेम था। वे विद्वानों का आदर करते थे। वे पण्डितों की बड़ी बड़ी सभायें करवाते थे, जिनमें महिनों तक विद्वानों के शास्त्रार्थ होते रहते थे। पण्डित वैराग्यरामजी ही उन सभाओं के प्रबन्धक होते थे और उनके तत्वावधान मे पटियाला नरेश विद्वानों के साथ स्वयं भी विद्याव्यसन का शौक पूरा किया करते थे।

उस समय नाना मत मतान्तरों के प्रवर्तक तथा प्रचारक अपना प्रभाव जमाने के लिये राज दरबारों और धनिक वर्गों में विशेष रूपसे आते जाते

रहते थे। उनका ध्येय था-प्रभावशाली व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर साधारण जनता में अपने मत को व्यापक बनाना। इसीलिये प्रायः प्रत्येक मत के विद्वान् प्रचारक राज सभाओं में शास्त्रार्थ की चुनौति दिया करते थे। उन्होंने शास्त्रार्थ को अपनी प्रसिद्धि का ब्रह्मास्त्र बना रक्खा था। नरेशों का प्रेम भी इस विषय में थोड़ा बहुत अवशेष था।

जब पटियाला में महर्षि मंगलदत्तजी श्रीपण्डित वैराग्यरामजी के पास अधीत शास्त्रों का पारायण कर रहे थे उस समय वहां परम बुद्धिमान और उद्भट विद्वान् एक दण्डी सन्यासी आये। उन्होंने श्री पण्डित वैराग्यरामजी की प्रशंसा सुनी। वे श्री पण्डित वैराग्यरामजी की प्रतिष्ठा और पाण्डित्य के प्रति इर्ष्यालु बन गये। अपना प्रभाव बढ़ाने की कामना से उन्होंने श्रीपण्डित वैराग्यरामजी के साथ शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की।

पटियाला नरेश ने दोनों विद्वानों का शास्त्रार्थ स्वीकार किया और साथ ही यह भी घोषणा कर दी कि जो विद्वान् इस शास्त्रार्थ में विजयी होगा उसका स्वागत मैं विशेष रूपसे करूँगा। पटियाला का यह शास्त्रार्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली था। इज्जत-प्रतिष्ठा और धन का लालच भी इसमें पर्याप्त था। फिर भी त्याग मूर्ति श्रीपण्डित वैराग्यरामजी ने इस शास्त्रार्थ में स्वयं भाग न लिया और अपने प्रिय शिष्य मंगलदत्तजी को अपने प्रतिनिधि रूप में भेजकर उन्हें विशेष रूपसे सम्मानित कराया।

इस शास्त्रार्थ में पण्डित मंगलदत्तजी की पूर्ण विजय हुई। मंगलदत्तजी पटियाला के राजा और प्रजा दोनों में विशेष ख्याति प्राप्त हुए। शास्त्रार्थ में पराजित साधु ने भी उदारता पूर्वक मंगलदत्तजी को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। उन्होंने मंगलदत्तजी से यह भी अनुरोध किया कि वे अपनी जन्म-भूमि शेखावाटी और मारवाड़ प्रदेश में जाकर शिक्षा प्रसार करें क्योंकि आज वहां की परिस्थिति अत्यधिक शोचनीय है। वहां अशिक्षा और मिथ्याचार के कारण लोग पथभ्रष्ट हो रहे हैं।

मंगलदत्तजी ने उस सन्यासी का अनुरोध मान लिया और उसके कुछ समय बाद ही वे अपनी जन्मभूमि शेखावाटी में पहुँच गये। आते समय उनको पटियाला नरेश ने पर्याप्त धन दिया था जिसे मंगलदत्तजी ने अपने गुरुजनों में बाँट दिया।

शेखावाटी में आकर महर्षि मंगलदत्तजी ने वहां शिक्षा प्रसार किया। समाज में सदाचार फैलाया और जन समाज को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराया। वे भ्रमणशील पाठशाला द्वारा ही शिक्षा प्रसार करते थे। उन्होंने अपनी पाठशाला के साथ साथ मरुधरा में घूम घूमकर सर्वत्र शिक्षा और सदाचार का उपदेश दिया। उन्होंने समय समय पर राजा महाराजाओं पर भी अपना प्रभाव जमाया। सीकर (शेखावाटी) के तात्कालिक राजा रामप्रतापसिंहजी महर्षि मंगलदत्तजी के सम सामयिक थे। वे एक सुयोग्य विद्वान् शासक थे। उन्होंने शिक्षा प्रसार में महर्षि मंगलदत्तजी को बहुत अधिक सहयोग दिया था। महर्षि मंगलदत्तजी की चलती फिरती पाठशाला को रावराजा रामप्रतापसिंहजी प्रतिदिन दस रुपया आर्थिक सहायता देते थे। मंगलदत्तजी एक दीर्घकाल तक शेखावाटी और उसके आसपास के प्रदेशों में घूम घूमकर शिक्षा प्रसार करते हुए सदाचार का उपदेश देते रहे।

महर्षि मंगलदत्तजी ने शेखावाटी के प्रसिद्ध कस्बे लछमनगढ़, फतेहपुर, रामगढ़, बिसाऊ, नवलगढ़, मुकुन्दगढ़, सीकर आदि को विशेष रूपसे अपना कार्य क्षेत्र बनाया था। इसके साथ साथ वे तात्कालिक बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध कस्बे रतनगढ़, चूरू आदि में भी अधिकतर निवास करते रहते थे जिससे वहां भी उनका शिक्षा प्रसार कार्य विशेष रूपसे फलीभूत हुआ।

शिक्षा प्रसार के इस कार्य में महर्षि मंगलदत्तजी को अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा। बहुत-से प्रतिपक्षियों से टक्कर लेनी पड़ी। नाना मत मतान्तरों के प्रवर्तक और प्रचारकों से स्थान पर शास्त्रार्थ करना पड़ा। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से सबको पराजित किया और वे अपने

उद्देश्य में सफल हुए। अन्त में विक्रम सम्वत् १६१६ में इक्कावन वर्ष की अवस्था में वे शरीर छोड़कर वैकुण्ठ धाम को चले गये। उनका स्वर्गारोहण माघ शुक्ला एकादशी को हुआ था। उनका निर्वाण दिवस आज भी श्री मंगलदत्तजी विद्यालय, रतनगढ़ में प्रति वर्ष मनाया जाता है।

* * *

महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के निधन से केवल खाण्डलविप्र जाति को ही नहीं अपितु समस्त राजस्थान प्रान्त और विशेषकर शेखावाटी प्रदेश को अधिक क्षति उठानी पड़ी। इस प्रकार के कर्मठ और सच्चे समाज सेवकों का प्रादुर्भाव यदा कदा ही होता है।

महर्षि मंगलदत्तजी का देहावसान शेखावाटी के प्रसिद्ध कस्बे नवलगढ़ में हुआ था। वहां अब भी महाराज के समाधिस्थान पर चबूतरा विद्यमान है, जो ध्वंशावशेष मात्र है। इस चबूतरे के आस पास की जमीन अब नवलगढ़ के प्रसिद्ध धनपति सेठ रामरिखदासजी परशरामपुरिया के अधिकार में है।

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा महर्षि मंगलदत्तजी की स्मृति में एक छात्रावास नवलगढ़ में स्थापित करने का विचार सन् १६४४ ई० से कर रही है। इस विषय में एक योजना उक्त संस्था की ओर से बनी हुई है।

सन् १६४४ ई० के फरवरी मास में महर्षि मंगलदत्त स्मारक भवन के लिये आर्थिक सहयोग प्राप्ति की कामना से सात आदमियों का एक प्रतिनिधि मण्डल बम्बई में रहने वाले नवलगढ़ के धनपतियों से मिलने गया था, जिसमें इन पंक्तियों का लेखक भी सम्मिलित था।

प्रतिनिधि मण्डल ने नवलगढ़ के सभी धनपतियों से भेंट की और समय पर आर्थिक सहयोग के लिये आश्वासन प्राप्त किया। पिछले पाँच छैः वर्ष में स्मारक का काम शिथिल-सा चला है अतः अभी इस दिशा में कोई

कार्य रचनात्मक रूप से प्रारम्भ नहीं हो सका है। फिर भी दिसम्बर सन् १९४५ ई० में नवलगढ़ में होने वाले अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के ग्यारहवें अधिवेशन पर महर्षि मगलदत्त स्मारक का कार्य बहुत कुछ आगे बढा।

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के ग्यारहवें अधिवेशन के अवसर पर ही इस विषय में एक प्रतिनिधि मण्डल नवलगढ के ठाकुर रावल मदनसिंहजी से मिला था। रावल साहब से स्टेशन सड़क पर जमीन प्रदान करने की प्रार्थना की गई थी, जिस पर ठाकुर साहब ने प्रसन्नता पूर्वक यह आश्वासन दिया था कि "आप अर्थ संग्रह कीजिये समय पर उचित कार्यवाही होने पर आपको जमीन भी दी जा सकेगी।" यह जमीन अब शीघ्र ही मिल जायगी। इस विषय की सभी प्रारम्भिक कार्यवाहिया पूरी हो चुकी है।

महर्षि मगलदत्त स्मारक के लिये श्री सेठ रामरिखदासजी परशरामपुरिया ने भी पर्याप्त आर्थिक सहायता का आश्वासन दे रक्खा है। आशा है कि निकट भविष्य मे ही महासभा अपनी इस योजना को कार्यान्वित करने मे सफल होगी।

महर्षि मगलदत्तजी के स्मारक निर्माण के लिये नवलगढ निवासी खाण्डलविप्र बन्धु भी पर्याप्त उत्सुक हैं। नवलगढ में होने वाले महासभा के ग्यारहवें अधिवेशन पर नवलगढ निवासी जाति बन्धुओं ने जो उद्गार प्रगट किये थे उनके आधार पर यह सुनिश्चित है कि महर्षि मगलदत्त स्मारक भवन अवश्य बनेगा।

इसके अतिरिक्त रतनगढ (बीकानेर) में महर्षि महर्षि मगलदत्तजी की स्मृति में श्री मगलदत्त विद्यालय वि० सं० १९७४ से जनसाधारण की सेवा करता आ रहा है। श्री मगलदत्त विद्यालय वास्तव में महर्षि मगलदत्तजी के उद्देश्यों के अनुकूल उनके विचारों का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।

महर्षि मंगलदत्तजी महाराज नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। यद्यपि उन्होंने आर्य पद्धति के अनुसार विवाह अवश्य किया था, किन्तु उनकी पत्नी के दुराग्रही स्वभाव के कारण उन्होंने सुहाग रात को ही अपनी पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध तोड़ लिया था। इसीलिये महर्षि मंगलदत्तजी के कोई औरस सन्तान नहीं थी। उनके बड़े भाई पण्डित कन्हैयालालजी के चार पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े पण्डित नन्दलालजी थे। ब्रजभूषणजी, गिरधारी लालजी और मोतीलालजी ये तीन छोटे थे।

महर्षि मंगलदत्तजी के वैकुण्ठ प्रयाण के बाद पण्डित नन्दलालजी ने उनका अन्तिम कृत्य किया और महर्षि की भ्रमणशील पाठशाला को सुचारु रूप से चलाने में दत्तचित्त हुए। पण्डित नन्दलालजी ने आठ वर्ष तक कार्य किया। वि० सं० १९२४ में उन्होंने हरिद्वार में शरीर छोड़ दिया। पण्डित नन्दलालजी के पुत्र कृष्णदत्तजी थे। उन्होंने अपने चाचा पण्डित गिरधारीलालजी के नेतृत्व में अपने पिता का अन्तिम संस्कार किया।

पण्डित नन्दलालजी के देहावसान के बाद उनके स्थान पर पण्डित गिरधारीलालजी महाराज आसीन हुए। पण्डित गिरधारीलालजी महाराज ने भी शिक्षा कार्य बराबर चालू रक्खा। पण्डित गिरधारीलालजी महाराज वि० स० १९५२ में अपने पूर्वजों की आवास भूमि "लाडवी" नामक ग्राम में चले गये थे। वहां भी वे अध्यापन कार्य बराबर करते रहे। कुछ समय बाद वहीं उनका देहान्त होगया। पण्डित गिरधारीलालजी महाराज के अग्रज पण्डित ब्रजभूषणजी महाराज के नेतृत्व में उनके पुत्र पण्डित उमादत्तजी ने उनका अन्तिम कृत्य समाप्त किया।

पण्डित उमादत्तजी महाराज ने भी अपने पिता का अनुसरण किया। जब उनकी अवस्था पर्याप्त होगई और परिस्थितियां बदल गई तब वे अपने सुयोग्य पुत्र श्री पण्डित विद्याधरजी के पास रतननगर (बीकानेर) में रहने लगे।

सन् १६४४ ई० के अक्टूबर मे पण्डित उमादत्तजी का देहान्त हुआ है। उनके देहावसान के एक मास पूर्व इन पंक्तियों का लेखक उनसे मिला था। उस समय उनकी अवस्था ८७ वर्ष की थी। फिर भी वे पर्याप्त सशक्त थे। उनकी इन्द्रिया बराबर काम कर रही थी। उन्होंने महर्षि मगलदत्तजी के जीवन की बहुत-सी घटनायें सुनाई थी। पण्डित गिरधारी लालजी महाराज के दो पुत्र थे, जिनमें बडे पण्डित उमादत्तजी महाराज और छोटे श्री पण्डित जुहारमलजी थे। श्री पण्डित जुहारमलजी का देहान्त पण्डित उमादत्तजी महाराज के निधन से पहले हो गया था।

महर्षि मगलदत्तजी के भ्रातृ पुत्रों की सन्तानें विभिन्न स्थानों मे बसती है। पण्डित नन्दलालजी महाराज के पुत्र कृष्णदत्तजी का देहान्त वि० सं० १६३६ मे हुआ था। पण्डित ब्रजभूषणजी के दो पुत्र थे जिनके नाम क्रमश मोहनलाल और सुखराम थे। मोहनलाल नि सन्तान थे। उनका देहान्त होगया। सुखरामजी के वंशज चूरू (बीकानेर) मे रहते हैं।

पण्डित मोतीरामजी के छै पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश शुकदेवजी, तुलसीरामजी, हीरालालजी, चुन्नीलालजी, लेखरामजी और रतिरामजी थे। इनमे लेखरामजी और रतिरामजी की सन्तानें विद्यमान हैं।

पण्डित गिरधारीलालजी महाराज के पुत्र श्रीपण्डित उमादत्तजी महाराज के औरस पुत्र श्री पण्डित विद्याधरजी महाराज हैं, जो रतननगर (बीकानेर) मे रहते है। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीकाशीरामजी एम० ए० पास कर बीकानेर मे रहते हैं। वे डू गर कालेज बीकानेर में अध्यापक हैं।

महर्षि मगलदत्तजी महाराज द्वारा प्रचलित पद्धति का आज समयानुसार अभाव होगया है, किन्तु उनके वंशज और शिष्यों में शिक्षा का प्रसार उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। महर्षि मगलदत्तजी के बाद खाण्डलविप्र जाति मे अनेक इतिहास प्रसिद्ध विद्वान् हुए। महर्षि के बाद खाण्डलविप्र जाति में विद्वानों की परम्परा अक्षुण्ण रूपसे चली आरही है। महर्षि मगलदत्तजी

महाराज के उत्तराधिकार की दूसरी पीढ़ी में पण्डित गिरधारीलालजी महाराज के समय में ही पण्डित रामलालजी माटोलिया कोटकपूरा (पंजाब) का उदय होगया था। महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के तत्काल बाद ही उसे महापुरुष का उदय खाण्डलविप्र जाति के नूतन भाग्योदय का प्रतीक था।

पंडित रामजीलालजी माठोलिया

राजवैद्य पण्डित रामजीलालजी माठोलिया कोटकपूरा (पंजाब) के रहने वाले थे। आप भारत धर्म महामण्डल के संस्थापकों में से एक थे। आप भारत धर्म महामण्डल के उपदेशक भी थे। पण्डित रामजीलालजी माठोलिया कैसे देश सेवक थे! यह तो इसी से सिद्ध है कि आप भारत धर्म महामण्डल के संस्थापकों में अपना प्रमुख स्थान रखते थे।

देश सेवा के साथ साथ आपने जाति सेवा भी बहुत अधिक की है। आपने ही सर्वप्रथम वि० सं० १९४९ में खाण्डलविप्र जाति की वंशावली जातीय उत्पत्तिक्रम के साथ संग्रह कर प्रकाशित की थी। सर्वप्रथम जातीय वंशावली का प्रकाशन कर आपने जाति में नवजीवन का संचार किया था।

किम्वदन्ती के आधार पर सुनने में आया है कि पण्डित रामजीलालजी माठोलिया को एक साधु द्वारा हस्तलिखित पुस्तकों का एक संग्रह प्राप्त हुआ था, जिसका उन्होंने पूर्ण रूपसे उपयोग किया। इसी संग्रह में स्कन्द पुराण की हस्त लिखित प्रति में अपनी जाति का उत्पत्तिक्रम देखकर वे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने उस हस्तलिखित स्कन्द पुराण से अपनी जाति के उत्पत्ति विषयक प्रकरण रेवाखण्डोक्त महेन्द्रगिरि महात्म्य की २५ से ४० तक की अध्यायों का संकलन कर जातीय वंशावली का प्रकाशन किया था।

पण्डित रामजीलालजी माठोलिया ने उक्त स्कन्द पुराण से अपनी जाति की वंशावली का संकलन कर "लाडवी" नामक स्थान में महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के उत्तराधिकारी श्री पण्डित गिरधारीलालजी महाराज से भेंट की

थी। पण्डित गिरधारीलालजी महाराज के पास भी स्कन्द पुराणोक्त वे छै अध्याय संगृहीत थे। दोनों का मिलान करने के बाद पण्डित रामजीलालजी माटोलिया ने "वंशावली" के रूप में उन छै अध्यायों का प्रकाशन किया था।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया का यह प्रयास खाण्डलविप्र जाति के लिये परम प्रेरणा प्रद रहा। "वंशावली" प्रकाशन से खाण्डलविप्र जाति ने एक नया प्रकाश प्राप्त किया। अतीत की इस अनुभूति को प्राप्त कर खाण्डलविप्र जाति सोत्साह उन्नति मार्ग में आगे बढ चली।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया के प्रोत्साहन के फल स्वरूप ही वि० सं० १९६५ मे सासनी (अलीगढ) निवासी पण्डित आनन्दवल्लभजी, श्रीनिवासजी, जगन्नाथजी, रामकुमारजी शास्त्री आदि रुन्थला बन्धुओं ने अपने सुपुत्र वैद्यराज पण्डित द्वारिकाप्रसादजी के शुभ-विवाहोत्सव पर मिति वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की स्थापना की थी।

जातीय कार्यों में आपका उत्साह बहुत अधिक बढा चढा था। जातीय कार्यों में आपके सहयोगी पण्डित गिरधारीलालजी महाराज चोटिया, पण्डित सुखरामजी ज्योतिर्विद् बेरी (रोहतक), पण्डित सालगरामजी सरसा, पण्डित नन्दरामजी शर्मा सरसा, पण्डित मनीरामजी शर्मा, पण्डित सेदुरामजी शर्मा ज्योतिर्विद् थे।

जयपुर के स्वर्गीय राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी माटोलिया भी आप के सम सामयिक थे। "वंशावली" के प्रकाशन मे आपको स्वर्गीय पण्डित आनन्दीलालजी माटोलिया जयपुर और रिवाडी निवासी पण्डित चिरंजीलालजी बसीवाल से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। जातीय वंशावली के प्रकाशन और जातीय महासभा की स्थापना द्वारा प्रेरणा प्रदान कर पण्डित रामजीलालजी माटोलिया ने खाण्डलविप्र जाति का उन्नति मार्ग अत्यधिक प्रशस्त किया था।

वैसे तो खाण्डलविप्र जाति में अनेक बड़े बड़े विद्वान, तपस्वी, राजनीतिज्ञ और धनी हुए हैं, जिनकी कीर्ति कौमुदी न केवल खाण्डलविप्र जाति को ही अपितु राजस्थान की समस्त ब्राह्मण जातियों को प्रकाशित और विभूषित कर रही है, इन महापुरुषों ने अपने लोकोत्तर प्रभाव द्वारा जाति का परम उपकार किया था। "वंशावली" के रूप में जातीय इतिहास की आधार शिला का न्यास कर जाति का सर्वाङ्गीण उपकार करने वाले पण्डित रामजीलालजी ने भी अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया। आपने जाति को जो देन दी वह चिरस्थायी है। इसे खाण्डलविप्र जाति आसूर्य चन्द्र स्मरण करती रहेगी।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया एक उद्भट विद्वान और प्रखर बुद्धिशाली महानुभाव थे। भारत विख्यात व्याख्यान वाचस्पति पण्डित दीनदयालजी शास्त्री आपको अनेक बार कहा करते थे कि—"यदि तुम्हारे जैसी विद्या और बुद्धि मुझ में होती तो न मालूम मैं क्या करता!" आपने सरसा, देहली, कोटकपुरा आदि स्थानों में चिकित्सा कार्य किया।

आपका जन्म सुनारी (रोहतक) के प्रसिद्ध माटोलिया घराने में हुआ था। पीछे आप कोटकपूरा जाकर बस गये थे। जहां आज भी आपके वंशधर रहते हैं। आपके वंशधर पण्डित नन्दकिशोरजी, मङ्गलदत्तजी आदि महानुभाव आपके समान ही जाति प्रेमी हैं।

आज समस्त भारत में फैली हुई खाण्डलविप्र जाति में अपनी जातीय महासभा के तत्त्वावधान में संगठित होकर आगे बढ़ने की जो भावना है वह पण्डित रामजीलालजी माटोलिया के सदुद्योग का ही फल है। परोपकारी और जाति हितैषी महापुरुष का स्वर्गवास वि० सं० १९६६ के लगभग हुआ।

यदि पण्डित रामजीलालजी माटोलिया महासभा की स्थापना के बाद दश बीस वर्ष जीते तो खाण्डलविप्र महासभा का इतिहास कुछ और ही रूप में लिखा जाता। खाण्डलविप्र जाति के प्रख्यात नामा व्याख्यान वाच-

स्पति स्वर्गीय पण्डित बख्तावरलालजी भाटोलिया महामहोपदेशक फिरोजपुर आपके भतीजे थे। आपका घराना सदा ही विद्या और बुद्धि से परिपूर्ण रहा है। आज भी आपके वंश का बुद्धि वैभव सुरक्षित है।

पंडित रामदयालुजी ज्योतिषी

जिला रोहतक में भिवानी के पास दिल्ली से लगभग साठ मील पश्चिम में चेरी नामक एक छोटा-सा गाव है। यहां खण्डेलवाल ब्राह्मणों के कुछ घर हैं। पण्डित रामदयालुजी ज्योतिषी का जन्म वहीं हुआ था। आप के पिता सुखरामजी और पितामह पण्डित मणिरामजी अच्छे विद्वान् थे। आपके घराने में ज्योतिष विद्या परम्परा से चली आती थी अत आप ज्योतिष के तो धुरन्धर विद्वान थे ही किन्तु आपका पाण्डित्य दर्शन आदि विषयों में भी पूर्ण प्रौढ था।

आप पण्डित रामजीलालजी भाटोलिया के सम सामयिक थे। आपने वि० सं० १६६३ में पण्डित रामजीलालजी भाटोलिया द्वारा संगृहीत और प्रकाशित खण्डलविप्र जाति की "वंशावली" का हिन्दी अनुवाद किया था। वंशावली के अन्त में आपने निम्नलिखित श्लोकों में अपना परिचय दिया है —

इन्द्रप्रस्थात्पश्चिमे दिग्विभागे, त्रिंशत्क्रोशैर्नेरिसंज्ञे पुरेऽभूत्।
खण्डल्यालश्चागिरो गोत्रजन्मा शास्त्राभ्यासी श्रीमणीराम शर्मा ॥१॥
तस्यात्मज श्रीसुखराम शर्मा तपोबलात्क्षालितपापकर्मा।
शर्मावहस्सर्वजनस्य जज्ञे तस्मादहं रामदयालु शर्मा ॥ २ ॥
यदनुचितमिर्वाकिञ्चित् भाति च भवता मदीय भाषायाम्
तदहं दयया वाच्यो रामदयालुर्निवेदयत्येतत् ॥ ३ ॥
मया विलिखितानर्थान् विज्ञाय ननु सज्जना ।
जैनाश्चाप्यविज्ञाय तोषमेष्यन्ति हासत ॥ ४ ॥

उपर्युक्त पद्य रचना से पण्डित रामदयालुजी ज्योतिषी का प्रौढ़ पाण्डित्य प्रकट होता है। साहित्य विषयक आपकी रुचि और गति का भी परिचय प्राप्त होता है। पद्यों की परिस्कृत और सुललित भाषा से आपके साहित्यिक होने का पता चलता है।

भिवानी निवासी पण्डित रामजीदासजी जोशी आपके सहयोगी थे। आपने "वंशावली" का अनुवाद किया था और पण्डित रामजीदासजी जोशी ने अपने द्रव्य व्यय से इसका प्रकाशन कर जाति में अमूल्य वितरण किया था। पण्डित रामदयालुजी ज्योतिषी और उनके सहयोगी पण्डित रामजीदासजी जोशी दोनों ही जाति के परम प्रेमी और हितैषी थे।

पण्डित रामजीदासजी जोशी

पण्डित रामजीदासजी जोशी भिवानी के रहने वाले थे। जातीय वंशावली में उपलब्ध आपके परिचय से विदित होता है कि आप एक कुशल व्यवसायी थे। आपके घर में व्यापार व्यवशाय परम्परागत था। भिवानी और कलकत्ता दोनों ही स्थानों में आपका व्यापार प्रगतिशील था। आपने खाण्डलविप्र जाति की "वंशावली" छपाकर उसे जाति में विना मूल्य वितरण किया, इससे आपकी समृद्धि का परिचय मिलता है। आपके हृदय में जातीय प्रेम विशेष था। आपके जाति सम्बन्धी कार्य इसके परिचायक हैं।

जातीय "वंशावली" में आपका परिचय निम्न प्रकार मिला है:—

श्री "मारवाड़" शुभ देश विशाल भायो, "खण्डेलवाल" वर विप्र सुवंश जायो।
प्राचीन गोत्र "भरद्वाज" पवित्रता ही, त्योंही रहे "प्रवर तीन" जनेऊ मांही ॥१॥

जोशी गंगारामजी भये, पुण्य सुख धाम।
तासु तनय गुण गण भरित, भये गुमानीराम ॥ १ ॥
पितृ भक्त तिनके तनय, दोय भये सुखरास।

मोहनलाल बड़े भये, सुलघु रामजीदास ॥ २ ॥
बस्ती भाटीवाड़ में, रहे बहुत दिन जाय।
फेर भिवानी गाँव में, रहन लगे उठि आय ॥ ३ ॥
बहु दिन लों तहँ बसि कियो बहुत धर्म के काज।
अब कलकत्ता में बसत लेकर सकल समाज ॥ ४ ॥
ख्यात भयो सब देश में, विप्र रामजीदास।
पायो कीरति मान बहु धन जन मन सुखरास ॥ ५ ॥
सोई बहु धन खर्च करि छपवायो यह ग्रन्थ।
जिहि पढ़ि अपनी जाति के द्विजगण जाने पन्थ ॥ ६ ॥
पढ़हु, सुनहु, सुमिरहु, कहहु या को करहु प्रचार।
गह लगि सबसों बनि सके अपनो करहु सुधार ॥ ७ ॥
जाति पाँति उत्पत्ति पुनि गोत्र प्रवर कुल चाल।
जानेंगे सब निज मरम ब्राह्मण खण्डेलवाल ॥ ८ ॥
प्रणत रामजीदास यह विनय करत कर जोर।
जो कछु सुधरे जाति तो द्रव्य सफल हो मोर ॥ ९ ॥

यह लिखना अनुचित न होगा कि पण्डित रामजीदासजी जोशी एक परम जाति हितैषी महानुभाव थे, जिन्होंने अपनी जाति के लिये भामाशाह के समान आदर्श त्याग किया था।

सासनी (अलीगढ़) के रून्थला बन्धु

उत्तर प्रदेश के जिला अलीगढ़ में सासनी नामक एक कस्बा है। इस कस्बे का महत्व औरों के लिये हो या न हो किन्तु खाण्डलविप्र जाति का यह एक ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ के निवासी रून्थला परिवार के सुयोग्य कर्णधारों ने पण्डित रामजीलालजी माठोलिया की प्रेरणा से अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की स्थापना की थी। इन बन्धुओं ने वि०

सं० १९६५ में महासभा की स्थापना कर जाति की समुन्नति का मार्ग सर्वतो भावेन प्रशस्त किया था।

इस घराने के तात्कालिक प्रतिनिधि श्री आनन्दवल्लभजी, श्री निवासजी, जगन्नाथजी और रामकुमारजी शास्त्री आदि थे। ये चारों भाई जाति के परम हितैषी और उत्साही कार्यकर्ता थे। उनका जातीय प्रेम महासभा की स्थापना के रूप में प्रकट हुआ। उन्होंने केवल महासभा की स्थापना करके ही सन्तोष न किया अपितु प्रारम्भ में महासभा को सर्वविध सहयोग उन्होंने ही प्रदान किया था।

जाति के पथ प्रदर्शक इन महानुभावों का विस्तृत जीवन चरित्र और चित्र प्राप्त करने के लिये कई वार चेष्टा की गई किन्तु दुर्भाग्य से इस कार्य में सफलता न मिल सकी। यदि इन चारों का चरित्र चित्र प्राप्त होता तो बहुत अच्छा रहता। चित्र चरित्र के अभाव में सासनी के इन रून्थला बन्धुओं का यह सामूहिक परिचय ही पाठकों के सामने रखकर सन्तोष करना पड़ता है।

सासनी के इन रून्थला बन्धुओं में पण्डित रामकुमारजी शास्त्री अच्छे प्रतिभाशाली विद्वान थे। वे संस्कृत में कविता भी लिखा करते थे। जाति की महासभा के विषय में उनका एक मङ्गलाचरणात्मक श्लोक मिला है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"विद्येवाज्ञानहन्त्री सुमति-विनययोः संविधात्री कृतज्ञा,
पापानां ध्वंशकर्त्री सुविमलचरितोत्पादिनी जान्हवीव।
विप्राणां खाण्डलानांमिह सुहित-शत-स्रग्धरावर्तते या,
तस्याः श्रीखांडलीय द्विजकुलसमितेरीश्वरः शं विधत्ताम्।!

विद्या के समान अज्ञान को नष्ट करने वाली, सद्बुद्धि और विनय की जननी, कर्तव्य को जानने वाली, भगवती भागीरथी के समान पापों का नाश करने वाली, चरित्र को निर्मल बनाने वाली खाण्डलविप्र बन्धुओं के

हित रूपी सैंकड़ों पुष्पों की माला धारण करने वाली श्रीखाण्डलविप्र महासभा का ईश्वर कल्याण करे।"

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा

भारत के इतिहास में विक्रम की बीसवीं शदी का विशेष महत्व है। विक्रम की दशवीं शदी से लेकर बीसवी शदी तक भारत में विदेशियों का राज्य रहा। यद्यपि विदेशी शासन से छुटकारा पाने के लिये भारतीयों ने लगातार दश शताब्दी तक विदेशी शासकों से संघर्ष किया किन्तु उनके लगातार के संघर्ष की सफलता को बीसवीं शताब्दी में मूर्त रूप मिला और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त की। बीसवीं शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति विषयक संघर्ष पराकाष्ठा को पहुँचा। उस समय भारत में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

भारत के राजनैतिक परिवर्तनों के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन भी पर्याप्त मात्रा में हुए। इसी समय में सदियों से सोये समाज ने करवट ली। बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल मे भारतीय हिन्दू समाज की विभिन्न जातियों में भी जागृति फैली। सभी जातिया अपने अपने उत्थान के लिये आगे बढने में प्रयत्नशील हुई। सामाजिक अन्ध परम्पराओं को छोड़कर नई दिशा में कदम बढाने वाली जातियों ने अपने अपने वर्गों में जातीय संस्थाओं की स्थापना की।

खाण्डलविप्र जाति मे भी समय को पहचान कर आगे बढने वाले महानुभावों का प्रादुर्भाव हुआ और उनके जाति सेवा विषयक सदुद्योगों के परिणाम स्वरूप खाण्डलविप्र जाति की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का जन्म हुआ।

खाण्डलविप्र महासभा की स्थापना वि० सं० १९६५ में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाभूमि मथुरापुरी में हुई थी। उस समय से लेकर आज

तक खाण्डलविप्र जाति में जो परिवर्तन प्रत्यावर्तन हुए वे महासभा के इतिहास के अन्तर्गत ही समझे जा सकते हैं। इस काल के जाति के सामूहिक इतिहास की पूर्ति महासभा का इतिहास करता है, अतः महासभा का पिछला क्रमबद्ध इतिहास पाठकों के सामने रखना उपयुक्त होगा।

महासभा की स्थापना

परमपूजनीय प्रातःस्मरणीय स्वर्गवासी महामहोपदेशक राजवैद्य पण्डित रामजीलालजी माटोलिया संस्थापक भारत धर्म महामंडल सुनारी (रोहतक) निवासी की प्रेरणा से सासनी निवासी वैद्यराज पण्डित श्रीनिवासजी, जगन्नाथजी, आनन्दवल्लभजी, रामकुमारजी शास्त्री आदि रूंथला भाइयों ने अपने सुपुत्र वैद्यराज पण्डित द्वारिकाप्रसादजी के शुभ विवाहोत्सव पर मिति वैसाख कृष्णा २ सं० १९६५ वि० में महासभा की स्थापना की। वह समय भारत की प्रायः सभी जातियों के उत्थान का प्रारंभकाल था। सभी जातियाँ अपने अपने उत्थान के लिये अपनी अपनी जातियों की सभायें स्थापित कर समाज के सामने उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर रही थी।

पण्डित रामजीलालजी माटोलिया खाण्डलविप्र जाति की भावी उन्नति के अभिलाषी थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम जातीय जीवन को प्रोत्साहित करने के लिये खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति पुस्तक (वंशावली) इतिहास, पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों से संग्रहीत कर प्रकाशित की थी। उनका वह प्रारंभिक परिश्रम महासभा की स्थापना के रूप में प्रतिफलित हुआ। महासभा की स्थापना में पण्डित दुर्गादत्तजी विद्यारत्न वृन्दावन ने भी सहयोग दिया था।

प्रथमाधिवेशन

महासभा का पहला अधिवेशन आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्र की लीला भूमि मथुरापुरी में मिति वैशाख कृ० २ स० १९६५ वि० में विद्याभूषण



अ० भा० खाण्डलविप्र महासभा के वर्तमान सभापति—
नवलगढ़ (राजस्थान) निवासी,
पण्डित केदारनाथजी गोवला बी० एल० एडवोकेट
गोहाटी (आसाम)

श्रीलक्ष्मणाचार्यजी महाराज शास्त्री के सभापतित्व में सानन्द सम्पन्न हुआ।

अधिवेशन में सर्वप्रथम महासभा की स्थापना की गई और फिर पंडित रामजीलालजी माठोलिया संस्थापक भारत धर्म महामंडल कोटकपूरा, पंडित प्यारेलालजी सासनी, विद्यारत्न पंडित दुर्गादत्तजी वृन्दावन आदि महानुभावों के जात्युन्नति विषयक भाषण हुए। तदनन्तर पंडित श्रीनिवासजी शास्त्री रूथला सासनी निवासी ने उसी समय महासभा के कोष में सौ रुपये प्रदान किये, जिनसे महासभा का भावी कार्यक्रम चालू हुआ। महासभा का पहिला अधिवेशन महासभा की स्थापना तक ही सीमित रहा।

द्वितीयाधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का दूसरा अधिवेशन मिति द्वितीय श्रावण शुक्ला ११, १० सं० १९९९ वि० में औरंगाबाद निवासी पंडित छीतरमलजी बोहरा रईस औरंगाबाद के सभापतित्व में वृन्दावन में हुआ।

इस अधिवेशन में सामाजिक सुधारों को पहला स्थान दिया गया। महासभा का उद्देश्य भी समाज-सुधार रक्खा गया। सामाजिक सुधारों को रचनात्मक रूप देने के लिये खाण्डलविप्र जाति के हित की दृष्टि से एकादश प्रस्ताव सर्वप्रथम इसी साधारण अधिवेशन में स्वीकृत किये गये जो आज भी पुरानी नियमावली में सम्मिलित हैं। स्थापना और प्रथम अधिवेशन के बाद यह अधिवेशन महासभा की प्रगति का पहला कदम था। इस अधिवेशन में खाण्डलविप्र जातीय व इतर जातीय सब मिलाकर लगभग चालीस प्रतिनिधि सम्मलित हुए थे। विद्वानों की संख्या अधिक थी। अन्य जातीय विद्वानों ने भी अच्छी संख्या में उपस्थित होकर अधिवेशन को सफल बनाने में पूरा सहयोग दिया था। इस अधिवेशन में बड़े बड़े विद्वानों के प्रभावशाली भाषण जातीयता व धार्मिकता के विषयों पर हुए। इसमें लोगों के मानसिक धरातल पर्याप्त परिवर्तित हुए।

द्वितीयाधिवेशन के कार्यक्रम में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने विषयक प्रस्तावों की ओर विशेष ध्यान दिया गया, जातीय-संगठन और जातीय विद्यालय स्थापन के विषय में भी विचार हुआ। खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति विषयक खोज के बारे में भी विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए। खाण्डलविप्र जाति के ऐतिहासिक पहलुओं पर खाण्डलविप्र जातीय विद्वानों के भाषण अच्छी गवेषणा के साथ हुए, जिनसे जातीय जीवन का महत्व और विशेषतः खाण्डलविप्र जाति के गौरव की अभिवृद्धि हुई।

इस अधिवेशन में पधारने वाले प्रतिनिधि मथुरा, देहली, मुरादाबाद आदि स्थानों तथा उनके आस पास के महानुभाव ही थे। दूर के प्रान्तों के प्रतिनिधि केवल एक दो ही थे, जिनका सम्बन्ध विशेषतः राजपूताना से था।

तृतीयाधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का तृतीयाधिवेशन देहली में मिति भाद्रपद कृष्णा १४, ३० रविवार सोमवार सं० १९७३ वि० में रिवाड़ी निवासी पंडित चिरंजीलालजी वसीवाल की अध्यक्षता में हुआ। पिछले आठ वर्ष के प्रचार से महासभा को आस पास के जातीय बन्धु जानने लग गये थे। इसलिये इस अधिवेशन में उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या बावन थी। इस अधिवेशन में दिल्ली, हरियाणा और यू० पी० प्रांत के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। आगत प्रतिनिधि मण्डल एवं कार्यकर्ताओं में उत्साह अवश्य था।

जाति के सामाजिक जीवन का मापदण्ड ऊंचा उठाने के लिये भी इस अधिवेशन में प्रयत्न हुआ। जाति में प्रचलित सामाजिक कुप्रथाओं को मिटाने के लिये द्वितीयाधिवेशन में स्वीकृत एकादश नियम दोहराये गये, जो सामयिक दृष्टि से लाभदायक थे। वे सामयिक एकादश नियम आज भी सामाजिक सुधारों के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं।

महासभा द्वारा स्वीकृत एकादश प्रस्तावों में शिक्षा विषयक प्रस्ताव मुख्य था। शिक्षा भी एकांगी न थी। महासभा ने लडके और लडकी दोनों की शिक्षा का सुझाव जाति के सामने रक्खा था। सामाजिक जीवन के प्रधान अङ्ग विवाह आदि संस्कारों में प्रचलित कुप्रथाओं को मिटाने के लिये भी इस अधिवेशन ने प्रचार किया था। अपव्यय को हटाकर मितव्यय के लिये भी जाति से अपील की गई थी। नाना प्रकार की भद्दी रिवाजों को मिटाने एवं अच्छी संस्कृति व सभ्यता का प्रसार जाति में करने का आयोजन इसी अधिवेशन में हुआ। विद्यालयों की स्थापना और जातीय-पत्र प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव की गई। महासभा की शाखासभायें स्थापित करने का प्रस्ताव पास कर महासभा को जाति में व्यापक बनाने का कार्य भी प्रारम्भ किया। वैतनिक एवं अवैतनिक दोनों प्रकार के उपदेशकों से महासभा का प्रचार कार्य करवाने का प्रस्ताव पास किया गया।

महासभा के स्थापना दिवस से लेकर देहली में होने वाले तृतीयाधिवेशन तक कार्यालय सासनी में ही रहा। देहली में होनेवाले तृतीयाधिवेशन में कार्यालय परिवर्तन का प्रस्ताव पास कर महासभा का कार्यालय सासनी से देहली में रक्खा गया।

महासभा के कार्यालय को देहली में रखने के साथ साथ अधिवेशन में यह भी निश्चित कर दिया कि महासभा के कार्यालय से हर प्रकार के काम सुचारु और व्यवस्थित रूप से होने चाहिये। जात्युन्नति विषयक कामों को महासभा आगे होकर करें। महासभा जाति के विद्वान व उत्साही सज्जनों को भी जात्युन्नति के लिये प्रेरित करें।

देहली में होने वाले महासभा के तृतीयाधिवेशन से देहली, हरियाणा व यू० पी० प्रान्त के जाति भाइयों पर महासभा का प्रभाव पड़ा। जाति के सभी महानुभाव महासभा को अपनी जाति की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मानने लगे। देहली अधिवेशन को सफल बनाने में पण्डित रामकुमारजी

शर्मा सासनी, पण्डित सोमदेवजी माटोलिया मथुरा, पण्डित ननौरामजी, पंडित रामदयालुजी दिल्ली; पंडित उदमीरामजी भिवानी, पंडित सेडुरामजी, पण्डित सूरजभानजी और बाबू रामबक्सजी मङ्गलिहारा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त सभी महानुभावों ने देहली तथा आस पास के प्रान्तीय खाण्डलविप्र बन्धुओं को संगठित कर स्वागतकारिणी का संगठन किया और महासभा का तृतीयाधिवेशन कर जात्युन्नति में महासभा को सहयोग दिया इसके लिये वे सज्जन विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

चतुर्थाधिवेशन

महासभा का तृतीयाधिवेशन देहली में सानन्द सम्पन्न हुआ था। अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए थे वे जाति के लिये सामयिक थे। महासभा में पास हुए प्रस्तावों का प्रचार भी हुआ। अधिक दूर तो नहीं, पर देहली के आस पास के प्रान्त में महासभा का प्रचार डेपुटेशनों द्वारा किया गया। महासभा के मंत्री बाबू रामबक्सजी मंगलिहारा द्वारा चतुर्थाधिवेशन में सुनाई गई वार्षिक रिपोर्ट से विदित होता है कि "एक साल तक महासभा के कार्यकर्ता पांच पांच सात सात सज्जनों का डेपुटेशन लेकर देहली के आस पास के स्थानों में घूमे थे"। इस काम से जातीय महानुभाव महासभा और उसके कामों से परिचित हुए।

तृतीयाधिवेशन में भिवानी निवासी पं० मांडूरामजी मंत्री भिवानी शाखासभा पंडित शिवनाथजी शर्मा उपमंत्री भिवानी शाखासभा और पंडित उदमीरामजी कोषाध्यक्ष आदि महानुभावों ने चौथा अधिवेशन भिवानी में करने का निमंत्रण महासभा को दिया।

उपरोक्त महानुभावों के उद्योग एवं भिवानी व उसके आस पास में बसने वाले खांडलविप्र बन्धुओं के उद्योग से महासभा का चौथा अधिवेन

मिति द्वितीय भाद्र पद शुक्ला ५, ६, ७ शुक्र, शनि, रविवार सं० १६७४ वि० तदनुसार ता० २१, २२, २३ सितम्बर सन् १६१७ ई० में वेदान्त मार्तण्ड पंडित शिवलालजी जोशी रतनगढ़ निवासी की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से भिवानी में सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन में बाहर से आये हुए प्रतिनिधियों की संख्या ६० के लगभग थी। समयानुसार कार्यकर्ता एवं अन्य समागत महानुभावों में उत्साह विशेष मात्रा में था। जातीय जीवन को समुन्नत करने के लिये कोई नई योजना बनाने के लिये सभी जातीय सज्जन उत्कंठित थे। सामाजिक सुधारों के लिये द्वितीयाधिवेशन में स्वीकृत एकादश नियमों को दोहराया गया, और जाति के हर एक मनुष्य से उन नियमों के पालन करने की अपील की गई। इस अधिवेशन में जातीय सगठन को विशेष महत्व दिया गया। संगठन करने के लिये महासभा ने पण्डित राधाकृष्णजी व्याकरणाचार्य को वैतनिक उपदेशक बनाकर महासभा के उद्देश्यों का प्रचार करवाया।

इसी अधिवेशन में महासभा ने खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के नाम पर अपील निकाली जिसका आशय निम्न प्रकार है —

यह महासभा हर एक खाण्डलविप्र बन्धु से प्रार्थना करती है कि हर खाण्डलविप्र भाई अपने बालकों की शिक्षा नागरी व संस्कृत से शुरू करवाये। महासभा को एक "खाण्डलविप्र महाविद्यालय" की स्थापना में सहयोग दे। जाति के सभी भाई मिलकर जाति में शिक्षा प्रचार का प्रयत्न करें। स्थान स्थान पर जहाँ खाण्डलविप्र बन्धुओं की बस्ती अधिक हो, जातीय विद्यालयों की स्थापना की जाय। जाति में शिक्षा को व्यापक बनाने के लिये हर एक खाण्डलविप्र बन्धु अपनी हैसियत के अनुसार महासभा को आर्थिक सहयोग दें।

खाण्डलविप्र जाति की उत्पत्ति-पुस्तक "वंशावली" को शुद्ध करा कर महर्षि मंगलदत्ताजी द्वारा संग्रहीत उत्पत्ति-पुस्तक "वंशावली" से मिलाकर

उसे छपवा कर उसका प्रचार किया जायगा, जिससे खाण्डलविप्र बन्धु अपने पूर्व इतिहास से परिचय प्राप्त कर सकें। उस समय उत्पत्ति-पुस्तक "वंशावली" के संशोधन का भार सासनी निवासी पण्डित रामकुमारजी शास्त्री को दिया गया।

चतुर्थाधिवेशन के भिवानी में होने से महासभा का प्रचार राजपूताने में भी हुआ। खाण्डलविप्र (खण्डेलवाल ब्राह्मण) जाति की अधिकतर वस्ती राजपूताने में है। जब तक महासभा का कार्य यू० पी० व दिल्ली प्रान्त में विशेष रूप से हुआ, तब तक राजपूताने के बहुत कम आदमी महासभा को जानते थे, परन्तु भिवानी राजपूताना वालों के लिये भी पास में पड़ती थी। इसी कारण इस अधिवेशन से महासभा का प्रचार राजपूताने में हुआ। इस अधिवेशन में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि रियासतों के प्रतिनिधि भी थे।

यह अधिवेशन वर्षाकाल में हुआ था। इससे इस अधिवेशन में एक शिक्षा पूर्ण घटना हुई। भिवानी निवासी पण्डित उदमीरामजी ने सभा समय में वर्षा से भीगती हुई जातीय सज्जनों की जूतियां अपने दुशाले में बांध कर सुरक्षित स्थान में रक्खी थी। पंडित उदमीरामजी के इस अटूट जातीय प्रेम को देख कर रतनगढ़ निवासी पंडित जयदेवजी रूंथला बहुत ही प्रभावित हुए। पंडित जयदेवजी रूंथला ब्राह्मण सम्मेलन आदि कई एक संस्थाओं के मंत्री पदाधिकारी एवं कार्यकर्ता अवश्य थे, परन्तु उनके हृदय में जाति सेवा का विशेष भाव न था। उदमीरामजी के आदर्श से प्रभावित होकर पण्डित जयदेवजी रूंथला ने जाति सेवा का दृढ़व्रत लिया था, जिसे उन्होंने श्रीमङ्गलदत्त विद्यालय की सेवा के रूप में आजीवन निभाया।

भिवानी अधिवेशन में राजपूताने की रियासतों के जो प्रतिनिधि पधारे थे वे महासभा की प्रेरणा से उत्साहित हुए। उन लोगों में रतनगढ़ निवासी पण्डित जयदेवजी रूंथला, पण्डित शिवलालजी जोशी वेदान्त

मार्तण्ड, पण्डित पूमारामजी बोचीवाल आदि महानुभाव विशेष उत्साही थे। उपर्युक्त सज्जनों ने अधिवेशन से वापिस आते ही रतनगढ में खाण्डल-विप्र जाति के महापुरुष प्रात स्मरणीय महर्षि मङ्गलदत्तजी महाराज की स्मृति मे श्रीमङ्गलदत्त विद्यालय एव महासभा की शाखासभा की स्थापना की। महर्षि मङ्गलदत्तजी महाराज के जीवन का उद्देश्य शिक्षा प्रचार ही था। अत उनके लक्ष्य के अनुरूप कार्य कर रतनगढ निवासी महानुभावों ने हमारी जाति को बहुत ही उपकृत किया।

इस अधिवेशन को सफल बनाने वाले पण्डित माङ्रामजी, पण्डित लक्ष्मीरामजी, पण्डित शिवनाथजी, पण्डित परमानन्दजी, पण्डित शिवजी रामजी, पण्डित रेलारामजी आदि महानुभाव प्रशंसनीय हैं।

पञ्चमाधिवेशन

महासभा का पचमाधिवेशन हिस्सार मे ज्योतिर्विद् पण्डित देवीलालजी झुझुनाद साहित्यरत्न मूडवा (मारवाड़) की अध्यक्षता मे सिति चैत्र कृ० १, २ सं० १९७५ वि० मे बडी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन मे महासभा को रजिस्टर्ड कराने, जातीय पत्र का प्रकाशन और छात्रवृत्ति कोष स्थापित करने के विषय में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये। सामाजिक प्रथाओं के सुधार मे भी प्रस्ताव पास किया गया और सोलह सस्कारों को प्रचलित करने के लिये प्रयत्न कर जाति की मानसिक उन्नति पर प्रकाश डाला गया। इस अधिवेशन में महासभा द्वारा स्वीकृत और प्रचलित एकादश नियम फिर दोहराये गये।

हिस्सार अधिवेशन में एक सौ पचहत्तर प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। अधिवेशन मे पंजाब, दिल्ली, हरियाणा राजपूताना प्रान्तों के प्रतिनिधि थे। पिछले चार अधिवेशनों की अपेक्षा यह अधिवेशन कुछ ठीक हुआ। महासभा भी इस अधिवेशन से जाति के सामने आई। भिवानी अधिवेशन

से ही राजपूताना में महासभा का कुछ कुछ प्रचार होगया था और इसके परिणाम-स्वरूप हिस्सार अधिवेशन के कुछ दिन पहले ही सं० १६७४ वि० में रतनगढ़ (बीकानेर) में "श्रीमंगलदत्त विद्यालय" की स्थापना जाति में शिक्षा प्रचार करने के उद्देश्य से हो गई थी।

हिस्सार में होने वाले इस पञ्चमाधिवेशन से महासभा के साथ जाति का कुछ सम्पर्क विशेष बढ़ा। राजपूताना के प्रायः सभी शिक्षित खाण्डलविप्र बन्धु महासभा और उसके उद्देश्यों से परिचित हो गये। रतनगढ़ में स्थापित श्रीमंगलदत्त विद्यालय के उद्देश्यों से लोगों ने महासभा को जाति हितैषी संस्था मान लिया। इस अधिवेशन के बाद ही महासभा का प्रचार राजपूताना में हुआ। इसके कुछ समय बाद महासभा के दो अधिवेशन राजपूताना प्रान्त में भी हुये, जिनसे प्रायः जाति का अधिकांश भाग महासभा और उसके उद्देश्यों से परिचित होगया। महासभा और हमारी खाण्डलविप्र जाति की वर्तमान प्रगति का युग यहीं से आरम्भ होता है। भिवानी अधिवेशन और हिस्सार अधिवेशन के बीच का समय खाण्डलविप्र जाति के लिये बहुत अच्छा समय था। श्रीमङ्गलदत्त विद्यालय की स्थापना ने इस समय का महत्व और भी बढ़ा दिया।

हिस्सार अधिवेशन को सफल बनाने वाले पण्डित गंगारामजी, पण्डित बद्रीप्रसादजी, पण्डित रामचन्द्रजी, पण्डित शिवदत्तरायजी, पण्डित सादीरामजी, पण्डित सूर्यभानजी, पण्डित हीरालालजी आदि महानुभाव एवं अन्य हिस्सार निवासी खाण्डलविप्र बन्धु जिन्होंने अधिवेशन में अपना अपेक्षित सहयोग दिया—सभी परम धन्यवाद के पात्र हैं।

छठा अधिवेशन

महासभा का छठा अधिवेशन मिति चैत्र कृष्णा १०, ११, १२ सं० १६७७ वि० में श्री श्री १००८ श्री स्वामीजी महाराज श्री बालमुकुन्दाचार्यजी

उत्तराहोविल झलरिया मठाधीश्वर डीडवाना (मारवाड़) के सभापतित्व में रतनगढ (बीकानेर) मे हुआ।

यह अधिवेशन श्रीमंगलदत्त विद्यालय के वार्षिकोत्सव के साथ साथ हुआ था। इसमे लगभग बाहर के तीन सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। विद्यालय और महासभा दोनों के प्रतिनिधि सम्मिलित रूप मे पधारे थे। अधिवेशन सबन्धी कार्यवाही भी साथ साथ ही हुई। जाति मे शिक्षा प्रसार और संगठन के विषय मे अच्छे विचार प्रकट किये गये। जाति के बडे बडे नर रत्नों ने पधार कर दोनों ही संस्थाओं को आगे बढने के लिये पूर्ण प्रोत्साहन किया।

राजपूताना प्रात मे महासभा का यह सबसे पहला अधिवेशन था। राजपूताना निवासी खाण्डलविप्र बधु इस अधिवेशन से महासभा को पूर्णत जानने लग गये। संस्था को प्रगतिशील बनाने के लिये भी कई एक प्रस्ताव पास हुए।

इस अधिवेशन मे बाहर से पधारने वाले प्रतिनिधियो में पण्डित आनन्दवल्लभजी शास्त्री मासनी, श्रीलक्ष्मणाचार्यजी महाराज डीडवाना, व्याख्यान वाचस्पति पण्डित बख्तावरलालजी माटोलिया फिरोजपुर, मागीलालजी नवहाल मालेगाव, बाबू रामवक्सजी मंगलहारा दहली, पण्डित मोहनलालजी शास्त्री दहली, सोमदेवजी माटोलिया मथुरा, पण्डित सुन्दरलालजी श्रोत्रिय नीमच कैन्ट आदि महानुभाव प्रमुख थे।

इस अधिवेशन में स्वामीजी महाराज श्री बालमुकुन्दाचार्यजी के शिष्य विद्वद्वर श्री लक्ष्मणाचार्यजी का व्यक्तित्व बहुत ही अच्छा रहा। उन्होंने अपनी प्रौढ तर्कशक्ति से विवादास्पद विषयों पर इतने सुन्दर और संतोषकारी निर्णय दिये कि जिन्हें सुनकर लोग विस्मय चकित रह गये।

इस अधिवेशन को सफल बनाने मे पण्डित जगदत्तजी काथला पण्डित हीरालालजी जोशी बेगाना मालपुरा, पण्डित कुम्भारामजी बोचीवाल,

पण्डित नथमलजी चोटिया, पण्डित वृद्धिचन्दजी मलनाडिया, पण्डित शिवदत्तरायजी जोशी, पण्डित गणेशरामजी मंगलहारा, पण्डित रमादत्तजी माटोलिया, पण्डित जीतमलजी जोशी आदि रतनगढ़ निवासी महानुभाव प्रमुख थे।

सप्तमाधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का सप्तमाधिवेशन शेखावाटी के प्रसिद्ध कस्बे फतेहपुर में श्री श्री १००८ श्री स्वामी बालमुकन्दाचार्यजी महाराज नागोरिया मठाधीश्वर डीडवाना (मारवाड़) के सभापतित्व में मिति चैत्र शुक्ला १३, १४ सं० १९७९ वि० में बड़ी धूमधाम से हुआ।

यद्यपि रतनगढ़ में भी महासभा का छठा अधिवेशन हुआ था और रतनगढ़ निवासी बन्धु भी महासभा के पूर्णरूप से हितैषी थे, परन्तु रतनगढ़ में श्री मंगलदत्त विद्यालय के वार्षिक अधिवेशन के साथ साथ महासभा का अधिवेशन सम्पन्न होने से छठे अधिवेशन का उतना महत्व नहीं है, जितना फतेहपुर में होने वाले सप्तमाधिवेशन का है। इस अधिवेशन में कई बातें जाति के लिये हितकर दृष्टिकोण से निश्चित की गई। इस अधिवेशन के सभी प्रस्ताव जाति के लिये लाभदायक थे। इस अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों का महत्व जातीय जीवन के लिये विशेष गौरव की वस्तु है।

सर्वप्रथम इसी अधिवेशन में जातीय इतिहास की खोज विषयक प्रस्ताव पास किया गया था। महर्षि मंगलदत्तजी महाराज का जीवन चरित्र प्रकाशित करने और उसके साथ साथ अन्यान्य महापुरुषों के जीवन चरित्रों के प्रकाशन पर भी सामूहिक विचार किया गया।

सामाजिक प्रथाओं के विषय में समयानुसार बालविवाह और वृद्ध-विवाह विषयक प्रस्ताव पास किये गये। सामाजिक प्रथाओं पर बढ़ने वाले खर्चों पर प्रतिबन्ध विषयक प्रस्ताव पास कर जाति को निर्धनता के पंजे से

छुड़ाने का प्रयत्न किया गया। जाति मे शिक्षा प्रचार करने के लिये जातीय सज्जनों से विशेष रूप से अपील की गई। महासभा के प्रचार को प्रोत्साहन दिया गया।

खाण्डलविप्र जाति उस समय तक अन्धकार मे थी। लोगों को आत्मविस्मृति विशेप रूप से सता रही थी। फतेहपुर अधिवेशन से जाति के शिक्षित समुदाय पर ही नहीं अपितु सामान्य वर्ग पर भी विशेष प्रभाव पडा। नवयुवकों मे भी उत्साह की लहर दौड़ गई। महासभा का कार्यक्रम भी कुछ व्यवस्थित रूप से जाति के सामने आया। इस अधिवेशन ने फतेहपुर मे महासभा का अक्षुण्ण प्रभाव सदा के लिये स्थापित कर दिया। इस अधिवेशन से अकेले खाण्डलविप्र बन्धु ही नहीं अपितु खाण्डलेतर जातियाँ भी विशेष प्रभावित हुईं। लोगों के हृदयों मे खाण्डलविप्र जाति का गत गौरव फिर से प्रतिष्ठापित हुआ। महर्षि मङ्गलदत्तजी के भूले हुये उपकारो से लोग फिर परिचित हो गये।

इस अधिवेशन के सभापति और स्वागताध्यक्ष के भाषण भी विशेष प्रभावशाली थे। समयानुसार उन भाषणों मे जाति की प्राय सभी समस्याओं पर आंशिक प्रकाश डाला गया था। बाहर से आये हुये विद्वानो की संख्या भी कम न थी। जाति के प्राय सभी योग्यतम विद्वान इस अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थे। भारत के पञ्जाब, दिल्ली, हरियाणा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, मालवा, आदि प्रान्तों के ७२ प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन मे भाग लिया था। प्रतिनिधियो ने महासभा के प्रति अपने विशेष प्रेम का परिचय दिया। इस अधिवेशन मे स्त्री शिक्षा पर भी कुछ प्रकाश डाला गया। स्त्री शिक्षा से होने वाले लाभ और अशिक्षा से होनेवाली हानियाँ बडे बडे विद्वानो ने अपने प्रभावशाली भाषण व कविताओं द्वारा जाति के सामने रक्खी।

इस अधिवेशन को सफल बनाने वाले फतेहपुर निवासी पण्डित हरचन्द्रायजी चोटिया, पण्डित पद्मनाभजी रुथला, पण्डित सीतानन्दजी

जोशी, पण्डित थींसारामजी जोशी, पण्डित रामलालजी जोशी, श्री अनन्ताचार्यजी महाराज साहित्याचार्य, पण्डित रामदेवजी पीपलवा, पण्डित पूर्णमलजी जोशी, पण्डित पोकरमलजी पीपलवा, पण्डित भूरामलजी जोशी, पण्डित खेमारामजी झुंझुनाद, पण्डित उमादत्तजी बोचीवाल, पण्डित दौलतरामजी नवहाल, पण्डित भगवानदासजी हुंथला, पण्डित लादूरामजी बोचीवाल आदि सभी महानुभाव परम धन्यवाद के पात्र हैं।

इस अधिवेशन के अवसर पर एक स्वयंसेवक दल बनाया गया था, जिसने अपने कर्तव्य का पालन बड़े उत्साह और दृढ़ता से किया। उसके प्रधान पण्डित हरचन्द्रायजी चोटिया और पण्डित पूर्णमलजी बोचीवाल तथा स्वयंसेवक दल के सभी कर्मनिष्ठ कार्यकर्ता भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

यह अधिवेशन रेलवे स्टेशन से दश कोस दूर किया गया था, फिर भी स्वागतकारिणी ने आगत महानुभावों के स्वागत का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। इस अधिवेशन को कराने एवं उसके लिये विशेष उद्योग करने वाले तथा फतेहपुर के जाति भाईयों में संगठन स्थापित करने वाले स्वर्गीय पण्डित हरचन्द्रायजी चोटिया विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

अष्टमाधिवेशन

अ० भा० खाण्डलविप्र महासभा का अष्टमाधिवेशन मिति वैशाख कृ० १२, १३, १४ सं० १९८० वि० में खंडवा (सी० पी०) में महामहोपदेशक पण्डित बख्तावरलालजी माठोलिया व्याख्यानवाचस्पति फिरोजपुर निवासी की अध्यक्षता में हुआ।

इस अधिवेशन की कार्यवाही पिछले सभी अधिवेशनों से अच्छी थी। इसमें कुल आठ प्रस्ताव पास किये गये थे। जिनमें वैतनिक उपदेशक की नियुक्ति, केन्द्रीय जातीय विद्यालय की स्थापना और जातीय पत्र प्रकाशन विषयक प्रस्ताव विशेष उल्लेखनीय हैं। अष्टमाधिवेशन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों

को कार्यरूप मे परिणत होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। अधिवेशन में सी० पी० और मालवा के प्रतिनिधियों की ही अधिकता थी। अन्य प्रान्तों के प्रतिनिधि बहुत कम संख्या मे थे। एक सौ पाच प्रतिनिधियों ने इसमे भाग लिया था। राजपूताना से केवल जयपुर और उसके आस पास के सज्जन पधारे थे। इस अधिवेशन के बाद महासभा के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था।

महासभा का भारत के प्राय सभी प्रान्तों से परिचय हो गया था। इस अधिवेशन मे अन्य अधिवेशनो की अपेक्षा आर्थिक सहयोग भी अच्छा मिला था। लोग समयानुसार उत्साह पूर्वक जातीय उन्नति और उसकी आधार स्तम्भ महासभा को आदर की दृष्टि से देखने लगे। स्वागतकारिणी भी इस अधिवेशन की सुदृढ थी। उस समय महासभा के लिये प्राय सभी साधन उपयुक्त थे। अष्टमाधिवेशन के समय जैसा उत्साह महासभा के कार्यकर्ताओं मे था, वैसा यदि भविष्य में बराबर रहता तो महासभा उस समय भी कुछ करने मे समर्थ होती, परन्तु "कर्ता के मन कछु और है, तेरे मन कछु और" वाली कहावत चरितार्थ हो गई।

इस अधिवेशन को सफल बनाने वाले पण्डित रामलालजी चोटिया खण्डवा, स्वर्गीय पण्डित सावलसाहजी काकरवाल खण्डवा, पण्डित मागीलाल जी नवहाल मालेगाव (नासिक), पण्डित हमराजजी रूथला रोलगाव, पण्डित बद्रीनारायणजी जोशी चारुवा, पण्डित शिवकरणजी रणमिया हरसूद, पण्डित प्यारेलालजी नवहाल पधाना, पण्डित शिवदयालजी परवाल खण्डवा आदि महानुभावों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नवमाधिवेशन

महासभा का नवमाधिवेशन मथुरा निवासी पण्डित सोमदेवजी माठोलिया महामहोपदेशक की अध्यक्षता में मिति कार्तिक शुक्ला ७, ८, ९

मालेगॉव (नासिक) वाले जयपुर आये, और प्रतिष्ठित सज्जनों से मिलकर खाण्डलविप्र विद्यालय के भवन में जाति भाइयों को इकट्ठा कर तारीख २८-१-१९४१ ई० को महासभा की कार्यवाही चालू करने की प्रार्थना की। पर जयपुर निवासी सभी विप्र बन्धुओं ने वहां कार्य होने में कठिनता बतलाई। इस पर कुछ सज्जनों का विचार कार्यालय वापिस देहली भेजने का हुआ, परन्तु पण्डित हंसराजजी रोलगांव, पण्डित शिवनारायणजी जोशी, चारवा आदि सज्जनों ने कार्यालय खण्डवा (सी० पी०) में रखने की प्रार्थना की। इस पर कार्यालय खण्डवा लाया गया, और महासभा का काम फिर पूर्ववत् चालू हुआ।

खण्डवा में सात मास तक कार्यालय का काम सुचारु रूप से चला। फिर महासभा के कार्यकर्ताओं ने कार्यालय और महासभा के कार्यक्रम को वैधानिक रूप देने के लिये इसका एक विशेषाधिवेशन करने का विचार किया। यह विशेषाधिवेशन दक्षिणोत्तर भारत के मध्यस्थान और राजपूताना के प्रमुख नगर जयपुर में ता० १-२ सितम्बर सन् १९४१ ई० में हुआ।

इस विशेषाधिवेशन में नये पुराने मिला कर बाहर के २१ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। अधिवेशन ने नौ महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर विचार किया और इन्हें यथाशक्य कार्य रूप में परिणित करने का भावी कार्यक्रम बनाया। जातीय पत्र का प्रकाशन, नवीन कार्यकारिणी का संगठन, जातीय इतिहास की गवेषणा, आदि प्रस्ताव इस विशेषाधिवेशन में प्रमुख थे। इस अधिवेशन में अन्तरंग कमेटी की कुल पांच बैठकें वैद्यराज पण्डित गोपीनाथजी माठोलिया जयपुर की अध्यक्षता में हुई जिनमें सभी प्रस्तावों पर उचित विचार विमर्श हुआ।

ता० २ सितम्बर की रात को तिलक के मन्दिर में वयोवृद्ध पूज्यपाद पण्डित गंगाधरजी महाराज चोटिया की अध्यक्षता में खुला अधिवेशन हुआ, जिसमें बाहरी प्रतिनिधियों के साथ साथ जयपुर के प्रायः सभी महानुभाव



राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य
के सौजन्य से उनके संग्रहालय से प्राप्त

राजस्थान के प्रसिद्ध शिवभक्त, गायत्री आराधक, वेदान्तदेशिक,
तपोमूर्ति पं० श्री गंगाधरजी शास्त्री चोटिया
एवं व्रती वटुक के रूप में श्रीरामदयालु शर्मा

पृष्ठ ३९६ देखिये

उपस्थित थे। खुले अधिवेशन में अन्तरंग सभा द्वारा निश्चित नौ प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो गये। भविष्य में उन्हें कार्य रूप में परिणित करने का भी निश्चय हुआ। धर्मभूषण पण्डित मागीलालजी नवहाल मालेगाव (नासिक) अगले अधिवेशन तक महासभा के सभापति निर्वाचित हुए। कार्यालय भी अगले अधिवेशन तक खडवा में रखना ही निश्चित किया गया।

इस अधिवेशन के लिये पण्डित मागीलालजी नवहाल मालेगाव (नासिक) विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि जिन्होंने पिछले सात मास में अविरत परिश्रम कर महासभा के कार्य को सगठित किया।

साथ ही इस विशेषाधिवेशन की सफलता के मूल कारण राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य जयपुर को भी अनेकानेक धन्यवाद है कि जिन्होंने आगत सज्जनों के निवास भोजन आदि का भार अपने ऊपर लेकर समागत सज्जनों का शाही स्वागत किया।

वैद्यराज पण्डित गोपीनाथजी माठोलिया, पण्डित गोविन्दनारायणजी सोती, पण्डित जुगलकिशोरजी एम० ए०, रूपनारायणजी ढुढाढ़रा, पण्डित दुर्गालालजी सोती, पण्डित बद्रीनारायणजी सुन्दरिया, महन्त हरिदासजी पीपलया, पण्डित सूर्यनारायणजी सोती, पण्डित बद्रीनारायणजी मास्टर, पण्डित सीतारामजी विनाण्या आदि जयपुर निवासी सभी महानुभाव इस विशेषाधिवेशन की सफलता के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

दशमाधिवेशन

महासभा का दशमाधिवेशन मिति कार्तिक शुक्ला ८, ६, १० स० २००० वि० में राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी माठोलिया भिषगाचार्य प्रिंसिपल आयुर्वेद विभाग महाराजा सस्कृत कालेज जयपुर की अध्यक्षता में सफलता पूर्वक सुजानगढ (बीकानेर) में सम्पन्न हुआ। महासभा के नवजीवन का प्रारम्भ इसी अधिवेशन से हुआ।

यह अधिवेशन पिछले सभी अधिवेशनों से अच्छा रहा। इस अधिवेशन में भारत के प्राय: बहुत-से प्रान्तों के लगभग २०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। जाति में शिक्षा प्रसार और जातीय संगठन पर महत्व पूर्ण प्रस्ताव पास हुए। जाति के असमर्थ बालकों को छात्रवृत्तियां देने के लिये पूरा ध्यान दिया गया और जाति की शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिये भी बजट में निधि रक्खी गई। जाति की जन गणना सम्बन्धी प्रस्ताव पास कर समस्त जाति के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने की महत्व पूर्ण योजना इस अधिवेशन से ही चालू हुई। ओसर मोसर और विवाहादि अवसरों के अपव्यय का भी घोर विरोध किया गया।

दशमाधिवेशन के पहले अढाई साल से महासभा का कार्यालय खंडवा में था, परन्तु इस अधिवेशन के निश्चयानुसार प्रधान कार्यालय सुजानगढ़ मे रक्खा गया। कार्यालय की एक शाखा बीकानेर में भी कार्यकर्ताओं की सुविधा के लिये खोली गई। दशमाधिवेशन में स्वीकृत सभी प्रस्तावों के विषय में सुजानगढ़ व बीकानेर कार्यालय ने अच्छा कार्य किया। जातीय पत्र का प्रकाशन भी दशमाधिवेशन के बाद ही रतनगढ (बीकानेर) के पण्डित श्रीरामजी शास्त्री रूंथला के सम्पादकत्व में "बन्धु" नाम से हुआ।

यह अधिवेशन पिछले सभी अधिवेशनों से सफल रहा। वस्तुतः बीस वर्ष से प्रसुप्त महासभा का सर्वाङ्गीण पुनरुद्बोधन इसी अधिवेशन में हुआ। इस अधिवेशन में महासभा को आर्थिक सहयोग भी सन्तोष जनक मिला।

इस अधिवेशन को सफल बनाने वाले सर्व श्री पण्डित मांगीलालजी चोटिया सुजानगढ़, पण्डित श्रीरामजी शास्त्री रूंथला रतनगढ़, पण्डित हनुमानबक्सजी चोटिया सुजानगढ़, पण्डित घींसूलालजी बेगराजजी सुन्दरिया सुजानगढ़, पण्डित बोदूरामजी पीपलवा तथा अन्यान्य सभी सुजानगढ़ निवासी बन्धु और श्री खाण्डलविप्र मित्रमण्डल के कार्यकर्ताओं की जाति सेवा विशेष प्रशंसनीय है।

ग्यारहवा अधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का ग्यारहवा अधिवेशन रति पौष कृष्णा ११ १० स० २००२ को शेखावाटी के केन्द्र नवलगढ मे र्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित व्याख्यानवाचस्पति ढीढवाना निवासी पण्डित ाठकोपाचार्यजी काछवाल के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। जस प्रकार राष्ट्रीय संस्थाओं के अधिवेशनोंमें देश के एक छोर से दूसरे छोर के प्रतिनिधि और दर्शकगण उसे अपना राष्ट्रीय तीर्थ मानकर अनेक कष्ट और असुविधायें सहकर भी वहा पहु चते हैं वैसे ही भारतवर्ष के भिभिन्न प्रान्त जैसे खानदेश, बरार, मालवा, यू०पी०, सी०पी०, और राजपूताने की सभी रियासतों के प्रतिनिधि कडाके की सर्दी और यात्रा की असाधारण असुविधायें सहकर नवलगढ के इस अधिवेशन मे आये थे। नवलगढ एक तो वैसे ही खाण्डलविप्र जाति के महापुरुष प्रात स्मरणीय महर्षि मङ्गलदत्तजी की निवास भूमि होने से हमारी जाति का ऐतिहासिक स्थान है फिर महासभा का यह बृहद् अधिवेशन शेखावाटी में २३ वर्ष बाद हुआ था। इससे नवलगढ सचमुच ही हमारी जाति का तीर्थ स्थान बन गया।

इस अधिवेशन मे उपस्थित प्रतिनिधियों की ६०० के लगभग सख्या महासभा के प्रति जाति के महानुभावो का प्रेम प्रकट करता थी। प्रतिनिधियों मे सभी का शिक्षित होना जाति की भावी प्रगति का परिचायक था। इसके साथ साथ हाथी पर निकला हुआ इस अधिवेशन के सभापति का जुलूस भी अपूर्व था।

चिरकाल से सोई हुई खण्डेलवाल ब्राह्मण जाति के लिये यह अधिवेशन विशेष गौरव की वस्तु बन गया था। अधिवेशन की निकटवर्ती तारीखों में स्वागतकारिणी के कार्यकर्ता पिछले अधिवेशनों की कार्यवाहियों के अनुसार इस बात की विशेष चिन्ता कर रहे थे कि "यदि

और अधिवेशनों के समान ही इस अधिवेशन में प्रतिनिधियों की उपस्थिति कम रही तो स्थानीय लोग हमारा उपहास करेंगे"। परन्तु ६०० प्रतिनिधियों की उपस्थिति ने स्वागत-कारिणी के सदस्यों में ही नहीं अपितु सभी उपस्थित जाति प्रेमियों में उत्साह की भावना भर दी। अब तक महासभा का अखिल भारतवर्षीयपन पूर्ण न हुआ था। इस अधिवेशन में भारत के समस्त प्रान्तों के पुरुष व महिला प्रतिनिधियों ने पधार कर महासभा का अखिल भारतवर्षीयपन पूर्ण कर दिया। वस्तुतः महिला प्रतिनिधियों के पधारने से अधिवेशन सर्वाङ्ग पूर्ण हुआ।

इस अधिवेशन के उपांग युवक-सम्मेलन और शिक्षा-समेलन महासभा के इतिहास में एकदम नई वस्तु थे। पिछले किसी भी अधिवेशन में उप सम्मेलनों का आयोजन नहीं किया गया था। इस अधिवेशन का यह आयोजन जाति के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। युवक-सम्मेलन में जाति के शिक्षित और कर्मशील नौजवानों का उत्साह प्रशंसनीय था। युवकों का जात्युन्नति के प्रति अगाध प्रेम देखकर ही जाति की भावी उन्नति का अनुमान होता था। शिक्षा-सम्मेलन में पधारे हुए शिक्षकों के सारगर्भित भाषणों से जाति के शिक्षकों की प्रौढ़ता और विद्वत्ता का अनुभव होता था।

अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों के विषय में यह लिखना अनुपयुक्त न होगा कि 'इस अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव हमारी जातीय उन्नति के द्वार थे।' सभी प्रस्तावों में सामयिकता प्रौढ़ता और जाति हितैषिता का पूर्ण ध्यान रक्खा गया था। सभी प्रस्तावों में जाति की नैतिक आर्थिक एव सामाजिक उन्नति के साधन अपनाये गये थे।

उपस्थित एवं अनुपस्थित महानुभावों ने ५००० रु० की आशातीत सहायता प्रदान कर महासभा की आर्थिक कठिनाईयां दूर की। इससे भी महासभा के प्रति जातीय सज्जनों का प्रेम प्रकट होता था। खाण्डलविप्र जाति के अनन्य रत्न प्रातः स्मरणीय महर्षि मंगलदत्तजी महाराज का स्मारक भवन

नवलगढ में बनाने की योजना पिछले कई वर्षों से चल रही थी। वह योजना इस अधिवेशन मे कार्यरूप मे परिणत होने के लिये चालू हुई। स्मारक भवन के लिये नवलगढ ठाकुरसाहब श्रीमदनसिंहजी ने अमूल्य जमीन प्रदान करने का आश्वासन देकर अपने विद्यानुराग का परिचय दिया। इसके लिये हम ठाकुर साहब को अनेकानेक धन्यवाद देते हैं। इसके अतिरिक्त स्मारक भवन निर्माण के लिये नवलगढ निवासी दानवीर सेठ रामरिखदासजी परशुरामपुरिया ने पंद्रह हजार रुपये देने का आश्वासन देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। डीडवाना निवासी सेठ मगनीरामजी रामकुमारजी बागड तथा अन्य महानुभावों ने स्मारक भवन के लिये आर्थिक सहयोग दिया। इसके लिये उन्हें धन्यवाद देते हुए हम राजस्थान के राजा महाराजा, सेठ साहूकार एवं ब्राह्मणवर्ग से आशा करते हैं कि महर्षि मगलदत्तजी महाराज के स्वरूप के अनुरूप इस स्मारक भवन निर्माण मे अपना सहयोग देकर महर्षि के ऋण से उऋण होने का यत्न करेंगे।

इस अधिवेशन को सफल बनाने वाले स्वागत समिति के कार्यकर्ताओं मे सर्वश्री पण्डित जगन्नाथजी मगलिहारा आयुर्वेदाचार्य अध्यक्ष, पण्डित द्वारकाप्रसादजी जोशी उपाध्यक्ष, पण्डित वंशीधरजी चोटिया उपस्वागत मन्त्री, पण्डित जनार्दनजी जोशी, पण्डित केसरदेवजी चोटिया, पण्डित सत्यनारायणजी भाटीवाडा, पण्डित मदनलालजी पीपलवा, पण्डित लादुरामजी जोशी, पण्डित सत्यनारायणजी सामरा, पण्डित नागरमलजी सामरा, पण्डित मागीलालजी गोवला रामेश्वरजी जोशी, पण्डित भगवानदासजी मास्टर, पण्डित गिनूरामजी रूथला, पण्डित मदनलालजी जोशी, पण्डित शकरलालजी जोशी, पण्डित राधेश्यामजी चोटिया, पण्डित बद्रीप्रसादजी गोवला मन्त्री खाण्डलविप्र युवक सघ एव खाण्डलविप्र युवक संघ के कार्यकर्ताओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नवलगढ अधिवेशन से महासभा के जीवन मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ।

मंत्री पण्डित कन्हैयालालजी, पण्डित मूलचन्दजी वर्णासिया उपमंत्री, पण्डित मांगीलालजी, पण्डित लादूरामजी वर्णासिया, पण्डित जयनारायणजी, पण्डित रामानन्दजी नवहाल, पण्डित अमरचन्दजी आदि विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

फिर भी इस अधिवेशन की सर्वांगीण सफलता में पण्डित शठकोपाचार्यजी महाराज, धर्मभूषण पण्डित मांगीलालजी नवहाल, स्वामी श्री नृसिंहाचार्यजी, तथा पण्डित दामोदरजी शास्त्री का सहयोग प्रधान था। उपर्युक्त महानुभावों के सर्वांगीण सहयोग से ही स्वागतकारिणी अधिवेशन को सफल बनाने में कृतकार्य हो सकी।

* * *

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के इतिहास के आधार पर यह माना जा सकता है कि आज समस्त भारत में फैली हुई खाण्डलविप्र जाति संगठन के एक सूत्र में आवद्ध होकर अपनी भावी उन्नति के लिये प्रयत्नशील है। वस्तुतः सामयिक आधार पर महासभा का दृष्टिकोण जाति के लिये परमोपयोगी है क्योंकि जिन जातियों में पारस्परिक सहयोग और संगठन नहीं रहता वे जातियां मिटती हुई देखी गई हैं।

खाण्डलविप्र जाति के दूरदर्शी महापुरुषों ने समय रहते अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की स्थापना कर जातीयता का जो आदर्श स्थापित किया वह अपनाने योग्य है। यद्यपि समय समय पर महासभा के संगठन में शिथिलता आई है और फिर भी संभवतः ऐसा समय आसकता है, फिर भी यह निर्विवाद है कि अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा खाण्डलविप्र जाति का सर्वांगीण हित करने में समर्थ होगी।

महासभा की वर्तमान योजनाओं में प्रमुख योजनायें ये हैं :—

(१) नवलगढ़ में महर्षि मंगलदत्त स्मारक का निर्माण।

(२) समस्त जाति में व्यापक रूप से शिक्षा का प्रसार।

(३) सामाजिक कुप्रथाओं को मिटाकर जातीय जीवन को सामयिकता के आधार पर आगे बढाना।

(४) जातीय स्थानों में जहा शिक्षालयों का अभाव हो वहा शिक्षा सस्थाओं की स्थापना करना।

(५) चालू जातीय संस्थाओं को सर्वविध सहयोग देकर प्रोत्साहित करते रहना।

(६) जाति की सर्वांगीण जन गणना करना।

खाण्डलविप्र जाति की एक मात्र प्रतिनिधि सस्था अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की उपर्युक्त योजनायें समयानुसार जाति के लिये परमावश्यक और हितकारी हैं। आशा है कि महासभा अपनी इन योजनाओं को पूर्ण कर जाति को समुन्नत करने का सौभाग्य प्राप्त करेगी।

महासभा की ओर से जातीय मासिक पत्र निकलता है जो भारत के कोने कोने मे पहुँचकर जाति मे प्रचार कार्य सम्पादन करता है। यद्यपि नाना असुविधायें महासभा का मार्ग अवरुद्ध किये हुए हैं, फिर भी महासभा अपना कार्य सावधानी पूर्वक करती जा रही है।

गत २३ नवम्बर सन् १९५० ई० को अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के सदस्यों का सम्मेलन और कार्यकारिणी का अधिवेशन हुआ था जिसमें महासभा को श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीर राघवाचार्य जी महाराज द्वारा प्रदत्त भवन का ट्रस्ट बनाने का प्रस्ताव पास किया गया। श्री स्वामीजी महाराज और महासभा मे ट्रस्ट विषयक समझौता होगया है। श्री स्वामीजी महाराज ने भवन की रजिस्ट्री शीघ्रातिशीघ्र करवा देने का आश्वासन दिया है। आशा है कि भवन की रजिस्ट्री शीघ्र ही महासभा के नाम हो जायेगी।

महासभा का ट्रस्ट बनाने की योजना भी बहुत दिनों से विचाराधीन थी। एतद् विषयक प्रस्ताव भी अबकी बार स्वीकार करा लिया गया है। आशा की जाती है कि महासभा का भी ट्रस्ट शीघ्र ही बन जायगा जिनसे महासभा का कार्य भी सुदृढ़ हो जायेगा।

राजवैद्य पंडित आनन्दीलालजी माटोलिया

महात्मा श्रवणदासजी के वंश में स्वामी दौलतरामजी एक अच्छे विद्वान् हुए थे। जयपुर नगर के निर्माण काल में वे ग्वाट्ट के कुछ प्रतिष्ठित वैश्य परिवारों के साथ उनके गुरु और वैद्य बनकर यहां जयपुर में आगये थे। उनके सुपुत्र श्री खुशहालीरामजी और महात्मा श्रीलालजी जयपुर के प्रसिद्ध वैद्यों में रहे हैं।

महात्मा श्रीलालजी की वैराग्य भावना के कारण जयपुर के तात्कालिक नरेश महाराजाधिराज सवाई रामसिंहजी ने उनकी योग सिद्धियों से प्रभावित होकर जयपुर से पश्चिम में लगभग बीस मील दूर जयरामपुरा स्थान में उनके लिये एक कुटी (आश्रम) बनादी थी। महात्मा श्रीलालजी वहीं अपना योग साधन किया करते थे।

महाराजा सवाई रामसिंहजी भी यदा कदा उसी आश्रम में पहुँच जाया करते थे। यह स्थान आज भी महात्मा श्रीलालजी के वंशजों के अधिकार में है। वहीं जयरामपुरा नामक स्थान में लक्ष्मीनारायण का एक मन्दिर है जो महात्मा श्रीलालजी के अधिकार में था। उसके भोग में राज्य की ओर से कुए कोठियां हैं।

जयपुर के स्वर्गीय राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी महाराज महात्मा श्रीलालजी के ज्येष्ठ भ्राता श्री खुशहालीरामजी के औरस ज्येष्ठ पुत्र थे। वे महात्मा श्रीलालजी के दत्तक पुत्र हुए। श्रीलालजी ने जो सम्पति छोड़ी थी उसके एकमात्र उत्तराधिकारी वे ही थे।

राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी सभी प्रकार से भाग्यशाली थे। उनकी अपूर्व चिकित्सा पद्धति से जयपुर के नागरिक, सामन्त, राजा महाराजा आदि छोटे बडे सभी वर्गों के लोग प्रभावित रहे हैं। पण्डित आनन्दीलालजी के सहोदरों मे पण्डित सुखलालजी जयपुर के सम्मान्य चिकित्सकों मे रहे हैं। पण्डित सुखलालजी अपने ज्येष्ठ भ्राता पण्डित आनन्दीलालजी के अनुवर्ती सहयोगी रहे हैं।

पण्डित आनंदीलालजी को जयपुर के महाराजाधिराज सवाई रामसिंहजी ने उनके परम्परागत विजयगोविन्द मन्दिर में एक ग्राम चाटसू तहसील में जयश्रीहरवल्लभपुरा भेंट किया था। तात्कालिक सामन्तवर्ग ने भी जिसमे-सीकर, उनियारा, खण्डेला, चौमूँ, दूनी, दूदू, बासखो आदि के नाम मुख्य हैं-पण्डित आनन्दीलालजी को पर्याप्त भूसम्पत्ति भेंट की थी। ये सब उनकी चिकित्सा विभूति के प्रमाण हैं।

वि० सं० १९३७ मे महाराजा सवाई माधवसिंहजी (द्वितीय) जयपुर की गद्दी पर विराजे। आपने अपने पूज्य पिता श्री सवाई रामसिंहजी महाराज के अनुयायी रहकर अपनी शारीरिक रक्षा का भार भी पण्डित आनन्दीलालजी पर ही छोड दिया था। अनेक अवसरों पर पण्डित आनन्दीलालजी की चमत्कृत, चिकित्सा परिपाटी से पुनर्जीवन प्राप्त कर महाराजा माधवसिंहजी (द्वितीय) ने रामगज चौपड पर स्थित धोली पैडी के विशाल मन्दिर के महन्त रूप मे आपको स्वीकार किया और यह मन्दिर आपको भेंट किया। इस प्रख्या मन्दिर के भोग राग के लिये जयपुर पश्चिम से कुछ दूर दो ग्राम-सराणाडूंगर और बासडी समर्पित किये। इस भूसम्पत्ति एवं विशाल मन्दिर का सर्वात्मना प्रबन्ध श्री पण्डित आनन्दीलालजी के अधिकार में था, जो आज तक उनके वशजों के अधिकार मे चला आरहा है।

पण्डित आनन्दीलालजी के समकालीन "जयपुर विलास" काव्य के रचयिता भारत प्रसिद्ध, आयुर्वेद के अकाण्ड विद्वान् कवि भट्ट श्रीकृष्णरामजी

किया उसका दिग्दर्शन ऊपर किया जा चुका है। उनके जीवन की विभूतियां आज भी इधर उधर बिखरी हुई मिलेगी। पण्डित गोपीनाथजी जैसे सफल चिकित्सक का निर्माण पण्डित श्यामलालजी ने अपनी अहैतुकी कृपादृष्टि से किया था। पण्डित श्यामलालजी के देहावसान से लगभग दश वर्ष पूर्व पण्डित गोपीनाथजी ने अपना औषधालय अलग स्थापित कर लिया था।

पण्डित श्यामलालजी का श्याम आयुर्वैदिक औषधालय रामगंज बाजार जयपुर में उनके पुराने स्थान में था। पण्डित श्यामलालजी के तीन पुत्र हैं। जिनमें बड़े राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य हैं, जो भारत के प्रधान आयुर्वैदिक चिकित्सकों में गिने जाते हैं। उनसे छोटे पण्डित मदनमोहनजी हैं, जो घरेलू कामों में विशेष दत्तचित्त रहते हैं। उनसे छोटे पण्डित जुगलकिशोरजी एम० ए० हैं, जो राजस्थान राज्य के शिक्षा विभाग में रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त हैं।

पण्डित श्यामलालजी अपने पीछे अनन्त धनराशि और एक बड़ी भारी बपौति अपने पुत्रों के लिये छोड़ गये हैं। यद्यपि इस घराने में परम्परागत बपौति एक दीर्घकाल से चली आरही है किन्तु पण्डित श्यामलालजी ने पण्डित आनन्दीलालजी के समान ही उसका परिवर्धन संरक्षण किया। पण्डित श्यामलालजी महाराज का देहावसान वि० सं० १९८८ के पौष मास में ६२ वर्ष की अवस्था में हुआ था।

श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज के उपवन के प्रशस्ति शिलालेख में राजवैद्य पण्डित श्यामलालजी महाराज चिकित्सा चूड़ामणि के विषय में निम्न श्लोक उपलब्ध हैं :—

"एतस्य सत्यसुहृदा सुहृदा सदा सत्कार्येपुदर्शितसमग्रसमुद्यमेन।
भैषज्यमर्जितरुजा जयपत्तनीयभूपालवंशभिषजा भगवत्परेण॥
सर्वत्र विश्रुत 'विचिकित्सकवर्य चूड़ामण्या' ह्यनेन मदमानविवर्जितेन।
श्रीश्यामलाल भिषजा चिरचिन्तनीयं साहाय्यमत्र विहितं विमलान्तरेण॥



चिकित्सकचूड़ामणि
स्वर्गीय राजवैद्य पं० श्यामलालजी माठोलिया जयपुर

राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी माठोलिया जयपुर के स्वर्गीय महाराजा माधवसिंहजी (द्वितीय) के समय मे जयपुर के प्रतिष्ठित चिकित्सकों में से थे। पण्डित आनन्दीलालजी का जन्म महात्मा श्रवणदासजी के वंश मे हुआ था।

पण्डित आनन्दीलालजी के पिता पण्डित खुशहालीरामजी वैद्य जयपुर के प्रसिद्ध चिकित्सकों मे से थे। इनके अनुज योगीवर श्रीलालजी एक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा हुए हैं। महाराजा रामसिंहजी इनका बहुत अधिक आदर करते थे। पण्डित आनन्दीलालजी योगीराज श्रीलालजी के दत्तक पुत्र हुए।

जिस प्रकार महाराजा रामसिंहजी महात्मा श्रीलालजी का समादर करते थे, उसी प्रकार स्वर्गीय महाराजा माधवसिंहजी (द्वितीय) पण्डित आनन्दीलालजी का समादर करते थे। स्वर्गीय महाराजा माधवसिंहजी (द्वितीय) की कृपा और अपने अध्यवशाय से पण्डित आनन्दीलालजी ने अपने पीछे एक बहुत बडी वपौती छोडी थी।

पण्डित आनन्दीलालजी द्वारा अर्जित सम्पत्ति के श्री मुरलालजी के दत्तक पुत्र पण्डित श्यामलालजी महाराज एकमात्र उत्तराधिकारी हुए, जो श्री पण्डित आनन्दीलालजी के समान ही अलौकिक प्रतिभाशाली और कुशल चिकित्सक थे।

पण्डित श्यामलालजी महाराज के तीन पुत्र हैं, जिनके नाम क्रमश राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य, पण्डित मदनमोहनजी और पण्डित जुगलकिशोरजी एम० ए० हैं। ये तीनों भाई भी अपने पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। सबसे ज्येष्ठ पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य के विषय में दो शब्द लिखना अनुचित न होगा।

वैसे तो महात्मा श्रवणदासजी के वंशज राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी के इस घराने का प्रभुत्व खाण्डलविप्र जाति में सर्वोपरि है ही किंतु राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य ने अपनी प्रतिभा और अध्यवशाय से जो कुछ किया है, वह इतिहास में एक गौरवशाली घटना है।

राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य का त्रिविध स्वरूप से वर्णन करना उपयुक्त होगा क्योंकि उनमें गुणत्रय का समाहार स्वतः ही है। सर्वप्रथम वे खाण्डलविप्र जाति में उत्पन्न हुए हैं, अतः उनके जीवन पर एक खाण्डलविप्र के दृष्टिकोण से विचार करना नितान्त आवश्यक है। फिर वे एक सफल चिकित्सक हैं। इस दृष्टिकोण से वे समाज के एक स्तम्भ हैं, अतः चिकित्सक के दृष्टिकोण से भी उनके जीवन चरित्र पर प्रकाश डालना आवश्यक है। फिर वे एक गंभीर विद्वान् हैं। इस गुण के साथ भी उनके जीवन चरित्र के विषय में सही उल्लेख होना आवश्यक है। उपर्युक्त तीनों विषयों पर क्रमशः लिखते हुए हम पाठकों को यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि वस्तुतः राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य खाण्डलविप्र जाति के एक रत्न और सुयोग्य नेता हैं।

राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य का जन्म विक्रम संवत् १९५८ में हुआ था। आपने स्वर्गीय स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज की सेवा में आयुर्वेदीय शिक्षा प्राप्त की और स्वामीजी महाराज के कालेज से अवकाश ग्रहण करने पर आप उनके स्थान पर महाराजा संस्कृत कालेज के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। इससे पहले आप महामना मदनमोहनजी मालवीय के तत्त्वावधान में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में भी कुछ काल तक अध्यापन कार्य कर चुके थे। वैद्यक व्यवसाय आपके घर में परम्परागत है। इस कार्य को आप अपने निजी औषधालय द्वारा सम्पादित करते हैं।

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के इतिहास में यह स्पष्ट उल्लेख है कि जयपुर में खाण्डलविप्र महासभा का कार्यालय स्थापित होने के बाद वह सर्वात्मना मर गई थी। लगातार कई वर्षों तक प्रयत्न करने पर भी महासभा का पुनरुद्धार असम्भवप्राय होगया था।

इस विषय में खाण्डलविप्र जाति के वयोवृद्ध नेता धर्मभूषण पण्डित मांगीलालजी नवहाल और उनके सहयोगी पण्डित गोविन्दनारायणजी

संथला ने बहुत अधिक प्रयत्न किया किन्तु वे सम्वत् १६६८ तक बराबर अपने प्रयत्न में असफल रहे। अन्त में पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य ने जाति प्रेम के वशीभूत होकर महासभा का पुनरुद्धार करवाया। इस कार्य में उनको सभी प्रकार के मानापमानों का सामना करना पड़ा किन्तु जाति सेवा के नाते उन्होंने अपने मानापमान का कोई विचार नहीं किया और महासभा का पुनरुद्धार कर उसका कार्य सुचारु रूप से चालू कर दिया।

राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य ने महासभा का पुनरुद्धार ही नहीं किया अपितु समस्त खाण्डलविप्र जाति का ही पुनरुद्धार किया। विक्रम सम्वत् १६६५ में पण्डित रामजीलालजी माटोलिया ने जातीय जीवन को प्रकाशित करने के लिये महासभा रूपी जो ज्योति जगाई थी, वह विक्रम सम्वत् १६८७ में जयपुर में आकर बुझ गई थी उसे पुन ज्योतिर्मान कर आपने जाति को प्रकाश प्रदान किया। यह खाण्डलविप्र जातीय इतिहास का एक गौरवशाली अध्याय है जो भावी सन्तान को सदा प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

इसके अतिरिक्त भी राजवैद्यजी जाति सेवा के लिये अहर्निश तत्पर रहते हैं। वे केवल जातीयता के नाते ही नहीं अपितु वैद्य और विद्वान् के नाते भी जाति की अत्यधिक सेवा करते हैं। आपने समय समय पर जाति के लिये एक नहीं अपितु अनेक कार्य ऐसे किये हैं, जिनसे जाति को बहुत अधिक लाभ हुए हैं और वर्तमान में हो रहे हैं।

सुजानगढ में होने वाले महासभा के दशमाधिवेशन पर राजवैद्यजी ने सभा की अध्यक्षता कर सफल नेतृत्व का परिचय दिया। सुजानगढ अधिवेशन के बाद महासभा के इतिहास में लगभग तीन वर्ष का समय प्रचार की दृष्टि से बहुत ही महत्व पूर्ण रहा है। कार्यालय की व्यवस्था, सगठन की पूर्णता, समुचित आर्थिक व्यय की स्पष्टता एव सर्वोपरि वैधानिक रूप से महासभा को एक ढर्रे में लाने का श्रेय आपको ही है।

जयपुर जैसे जातीय केन्द्र में आये दिन जाति में अनेक जातीय समस्यायें उठ खड़ी होती हैं, उनका अधिकतर समाधान राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य द्वारा ही होता है। आप जयपुर के खाण्डलविप्रों में प्रमुख हैं।

चिकित्सक के नाते आपके विषय में कुछ लिखना सरल काम नहीं है। आपने आयुर्वेद की जो सेवा की है, वह अभूतपूर्व है। आपने अपने चिकित्सा-चमत्कार से समस्त भारत को चमत्कृत किया है। आयुर्वेद संबंधी नाना सभा सोसाइटी और सम्मेलनों की अध्यक्षता कर आपने अपने आयुर्वेदीय नेता होने का प्रमाण पेश किया है। वृहद् राजस्थान राज्य में तो आप धन्वन्तरिकल्प है। वृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हुए जयपुर राज्य के राजघराने में आपने वैद्य होने के नाते जो प्रतिष्ठा प्राप्त की वह विरले ही महानुभावों को प्राप्त होती है।

वृहद् राजस्थान राज्य के निर्माण से पूर्व जयपुर इकाई में महाराजा संस्कृत कालेज से आयुर्वेद विभाग को अलग कर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना करवाना और उसके लिये महाराज के द्वारा माधवविलास जैसे राजप्रासाद को प्राप्त करवाना एवं आयुर्वेद के प्राचीन क्रम को नवीनता के साथ संयुक्त कर विशिष्ट पाठ्यक्रम के द्वारा भारतीय आयुर्वेद की आदर्श शिक्षा का राजस्थान में सूत्रपात करवाना एक मात्र आपही के श्रम का फल कहा जा सकता है।

जयपुर राज्य में वैद्यों के रजिस्ट्रेशन, ग्राम सुधार औषधालयों की राज्य द्वारा स्थापना करवाना, शास्त्रीय पद्धति के अनुसार भेषज निर्माण की समुचित व्यवस्था के लिये राजकीय फार्मेसी निर्माण करवाना आदि विविध आयुर्वेदोन्नति के कार्य वृहद् राजस्थान की दिशा में भी आयुर्वेद-रूपरेखा में मूल रूप रहे हैं यह आपके विशिष्ट प्रभाव एवं प्रतिभा के पूर्ण द्योतक हैं। आपकी प्रत्युत्पन्नमतिता बड़ी प्रसिद्ध है।

जयपुर के वर्तमान नरेश महाराजा सवाई मानसिंहजी (द्वितीय) ने आपको अपने रजत-जयन्ती महोत्सव पर दरबार में कुर्सी प्रदान कर आपका सम्मान किया। आप एक दीर्घकाल से आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल हैं। अभी वृहद् राजस्थान राज्य ने आयुर्वेद का जो एकीकरण किया उसमे आपको सुपरिंटेन्डेन्ट का पद प्रदान कर सम्मानित किया गया है। आज के राजस्थान राज्य के वैद्य, शिक्षक और चिकित्सकों में आप अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। भारत मे भी आपकी गणना चोटी के वैद्यों में होती है।

भारत विख्यात स्वर्गीय स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज के विद्याशिष्यों में आपका प्रमुख स्थान है। राजस्थान में आयुर्वेदिक चिकित्सा का गौरव स्वामीजी के अनन्तर आपने ही स्थापित किया है। स्वर्गीय महाराजा गंगासिंहजी बीकानेर नरेश भी आपकी चिकित्सा पर श्रद्धा रखते थे। वर्तमान जयपुर नरेश ने अपनी रजत-जयन्ती के अवसर पर भिषक्‌रत्न की उपाधि से आपको सम्मानित किया था। फलत आपको जयपुर दरबार में विशेष स्थान प्राप्त है।

देश विदेशों से अनेक जीर्ण रोगी चिकित्सा के लिये आपकी सेवा में आकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते हैं। किम्बहुना आज यह साधिकार कहा जा सकता है कि भिषग्‌रत्न पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य राजवैद्य जयपुर-राजस्थान राज्य में धन्वन्तरिकल्प हैं। आपकी चिकित्सा पद्धति सर्वश्रेष्ठ और सद्य फल प्रदायिनी है। आपका सम्मान जयपुर के अतिरिक्त जोधपुर, किशनगढ़, सीकर आदि के राजघरानों में भी बहुत अधिक है।

राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी महाराज की विद्वत्ता के विषय में भी दो शब्द लिखना उपयुक्त होगा। आप आयुर्वेद के तो प्रगाढ विद्वान हैं ही, साथ ही साहित्य और दर्शन आदि विषयों में भी आपका प्रखर पाण्डित्य विशेष रूप से प्रकाशमान है। आप प्राय सभी विषयों के साधिकार विद्वान् हैं। आपके अगाध ज्ञान की प्रौढता तक पहुँचना शक्य नहीं है।

आप संगीत के बहुत अधिक प्रेमी हैं। अध्यापन, वक्तृता एवं लेखन आदि में आप अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपकी विद्वत्ता परम गंभीर और प्रभावोत्पादिका है। संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी विषयों में आपकी गति निर्बाध है।

इसके अतिरिक्त आपकी व्यवहार कुशलता, सौजन्य आदि गुण भी मनुष्य को बरबश आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। स्थापत्य एवं ललित कलाओं के प्रति आपका प्रेम बहुत अधिक है। अभी जयपुर के दक्षिण की ओर मोतीडूंगरी रोड़ पर आपने "नवजीवन उपवन" का निर्माण करवाया है। यह अनुमानतः पांच लाख की धन राशि से तैयार हुआ है। अभी उत्तरोत्तर शिल्प कार्य चालू है। अनेक वर्षों में इसके पूर्ण होने पर यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान जाति में होजायगा। पाठकगण "नवजीवन उपवन" का पूर्ण परिचय उसके प्रशस्ति पद्यों से प्राप्त कर सकेंगे।

राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य के दो पुत्र हैं, जिनमें ज्येष्ठ श्री रामदयालुजी भिषगाचार्य उपाधि प्राप्त कर शनैः शनैः वैद्य समाज में अपना स्थान बना रहे हैं। श्री रामदयालुजी के नाम से ही "नवजीवन चिकित्सालय" और "उपवन" निर्मित हैं। श्री रामदयालुजी भी अपने पिता के समान ही अत्यन्त प्रौढ़ और प्रतिभाशाली विद्वान् हैं।

इसके अतिरिक्त राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी महाराज के एक पुत्र और एक कन्या और हैं। आपके द्वितीय पुत्र श्री बालगोविन्दजी अभी अध्ययन कर रहे हैं।

आज राजवैद्यजी और उनका घराना खाण्डलविप्र जाति में सर्वश्रेष्ठ है। एक हजार वर्ष पहले महात्मा श्रवणदासजी से जिस वंश का क्रम चालू हुआ उस वंश में समय समय पर विद्वान् महानुभाव होते रहे हैं और उन्होंने अपनी खाण्डलविप्र जाति को सब प्रकार का अपेक्षित सहयोग देकर अपने जातीय प्रेम का परिचय दिया है।

इसी महात्मा श्रवणदासजी के वंशक्रम में परम्परया प्रसिद्ध राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी महाराज के इस घराने ने तो खाण्डलविप्र जाति को बहुत ही अधिक सहयोग दिया है। इस घराने के वर्तमान कर्णधार राजवैद्य पंडित नन्दकिशोरजी ने सबसे अधिक त्याग कर सेवा वृत्ति द्वारा जातीय प्रेम का जो परिचय दिया वह अभूतपूर्व है। आपके त्याग का ही यह परिणाम है कि आप अनेक संस्थाओं में मुक्त हस्त होकर दान दिया करते हैं। प्रायः प्रतिवर्ष ही किसी न किसी प्रकार के चन्दे आदि चालू ही रहते हैं।

आपके लघुभ्राता श्री जुगलकिशोरजी एम० ए० राजस्थान शिक्षा विभाग में डाइरेक्टर हैं। आप भी अपने अग्रज के समान ही प्रगतिशील हैं। पंडित जुगलकिशोरजी का कार्यक्षेत्र शिक्षा विभाग है। संस्कृत साहित्य विभाग के रजिस्ट्रार पद पर आपके गौरवपूर्ण कार्य की धूम है। अंग्रेजी के सुयोग्य विद्वान् होने पर भी सनातन धर्म के प्रति आपकी निष्ठा प्रशंसनीय है।

पंडित मदनमोहनजी भी एक शान्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। आप अपनी धर्मपत्नी के स्वर्गारोहण के बाद अधिकतर भगवद् भजन में ही लीन रहते हैं।

पंडित लक्ष्मीचन्दजी चोटिया "मुनीम"

पंडित लक्ष्मीचन्दजी चोटिया चूरू (बीकानेर) के रहने वाले थे। आप चूरू के प्रसिद्ध धनपति सेठ भगवानदासजी बागला के प्रधान मुनीम थे। आपका प्रभाव सेठ साहूकारों में बहुत अधिक था। बीकानेर राज्य के ऊंचे अफसरों और राजघराने के सदस्यों में भी आप अपना प्रभाव रखते थे।

चूरू निवासी खाण्डलविप्रों में आप सर्वविध प्रतिष्ठित थे। आपने जाति के लिये एक पंचायती धर्मशाला का निर्माण करवा कर अपना नाम

अमर किया था। आपकी बनाई हुई धर्मशाला आज भी चूरू में विद्यमान है, जो हर समय जाति के लोगों के काम में आती रहती है।

पण्डित लखमीचन्दजी चोटिया अत्यधिक व्यवहार कुशल और एक सुयोग्य प्रबन्धक थे। आपने केवल चूरू में ही नहीं अपितु आसपास में सर्वत्र ही अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। आज भी प्रायः सर्वत्र पंडित लखमीचन्दजी चोटिया का नाम सुयोग्य मुनीमों में प्रसिद्ध है। मुनीम वर्ग में आपकी ख्याति इतनी अधिक है कि लोग समय पर अच्छे मुनीमों की तुलना करने में सर्वप्रथम आपको याद करते हैं।

आपने अपने बुद्धिकौशल से बागला परिवार को बहुत अधिक लाभ पहुँचाया था। सेठ भगवानदासजी बागला और उनकी धर्मपत्नी का आप पर इतना अधिक विश्वास था कि उन्होंने अपने घर का कुल प्रबन्ध ही आप पर छोड़ रक्खा था। लाखों रुपये का लेन देन आप स्वयं करते थे। सेठजी प्रायः आपके कामों की ओर से सदा निश्चिन्त रहते थे।

आज भी चूरू के आबाल वृद्ध आपके नाम से परिचित हैं। चूरू के ग्रामवृद्ध आपके जीवन की घटनाओं का वर्णन बड़े गर्व से नाना प्रकार की कहानियाँ कह कर करते हैं।

पंडित वैद्यनाथजी जोशी

खाण्डलविप्र जाति का प्रधान आवास स्थान राजस्थान प्रान्त है और इस जाति में हुए ऐतिहासिक महापुरुष भी अधिकतर राजस्थान में ही अपनी विभूतियां बिखेर गये हैं। फिर भी इस जाति के महापुरुषों ने केवल राजस्थान प्रान्त को ही अपनी कीर्ति कौमुदी से धवलित किया हो सो बात नहीं है, उन्होंने भारत के अन्य प्रान्तों में भी अपनी जन सेवा परायण मनोवृत्ति द्वारा जनता जनार्दन की पर्याप्त सेवा कर अपनी महत्ता का परिचय दिया है।

इस प्रकार के सार्वदेशिक विद्वानों में रतनगढ़ (बीकानेर) निवासी पण्डित वैद्यनाथजी जोशी का नाम सर्वप्रथम उल्लेख योग्य है। पण्डित वैद्यनाथजी जोशी काशीस्थ "मारवाडी संस्कृत कालेज" के संस्थापक थे। वे महर्षि मंगलदत्तजी के प्रिय शिष्य पण्डित भूधरमलजी के पुत्र पण्डित हुक्मीचन्दजी के सुपुत्र थे।

पण्डित भूधरमलजी महर्षि मंगलदत्तजी के प्रधान शिष्यों में से थे। रामगढ़ (शेखावाटी) के प्रसिद्ध पौद्दार घराने में उनका प्रभाव बहुत अधिक था। पण्डित हुक्मीचन्दजी भी अपने पिता के समान ही सुयोग्य विद्वान् और बुद्धिशाली थे। वे वृद्धावस्था में काशी जाकर रहने लगे थे। पण्डित हुक्मीचन्दजी के सात पुत्र थे, जो सभी सुयोग्य विद्वान् हुए। पण्डित वैद्यनाथजी उन सब में विशेष प्रतिभाशाली थे।

पण्डित वैद्यनाथजी ने अपने मित्र पण्डित मदनमोहनजी शास्त्री के सत्परामर्श और अपने पितामह पण्डित भूधरमलजी के शिष्य धनिक वर्ग के आर्थिक सहयोग से वि० सं० १९७४ में "मारवाड़ी संस्कृत कालेज" की स्थापना काशी में की। वे जब तक जीवित रहे "मारवाडी संस्कृत कालेज" की सेवा तन, मन, धन से करते रहे।

पण्डित वैद्यनाथजी काशी के प्रसिद्ध विद्वानों में गिने जाते थे। उन्हें भारत धर्म महामण्डल द्वारा "विद्याभूषण" की उपाधि प्राप्त हुई थी, जिसके प्रमाण पत्र में दरभंगा नरेश श्रीमान् रामेश्वरसिंहजी के हस्ताक्षर हैं।

पण्डित वैद्यनाथजी का देहान्त वि० सं० १९८३ में हुआ था। उनके देहान्त से मारवाड़ी समाज को बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ी। पण्डित वैद्यनाथजी के बड़े भाई पण्डित शिवलालजी जोशी वेदान्त मार्तण्ड रतनगढ़ में रहते हैं, जो उनके समान ही विद्वान और प्रतिभाशाली हैं। उन्होंने पण्डित वैद्यनाथजी के देहान्त से दुखी होकर उनकी स्मृति में "मंगल महर्षि चरित काव्य" का निर्माण कवि चक्रवर्ती पण्डित देवीप्रसादजी शुक्ल काशी

निवासी से धन देकर करवाया था। इस काव्य को वेदान्त मार्तण्ड जी ने अपने धन से छपवाया। पण्डित वैद्यनाथजी का जीवन चरित्र भी इसी काव्य में संगृहीत है।

पण्डित वैद्यनाथजी जोशी द्वारा स्थापित "मारवाड़ी संस्कृत कालेज" भारत के प्रमुख शिक्षणालयों में से एक है। इस संस्था ने देश की बहुत बड़ी सेवा की है और उत्तरोत्तर करती जा रही है। यद्यपि आज पण्डित वैद्यनाथजी जोशी इस पृथ्वी पर नहीं हैं, पर उनका स्मृति चिन्ह "मारवाड़ी संस्कृत कालेज" जब तक रहेगा तब तक पण्डित वैद्यनाथजी जोशी का नाम अमर रहेगा।

पौराणिकरत्न पण्डित हरिहरजी गोवला

वृहद् राजस्थान राज्य में विलीन हुए भूतपूर्व अलवर राज्य के छोटे से गांव गोरखपुर के रहने वाले पण्डित मोहनदेवजी गोवला अपनी साधारण स्थिति से खिन्न होकर मथुरा जा बसे थे। वे अपने जीवन की आर्थिक विषमताओं से तो दुःखी थे ही साथ ही बहुत दिनों तक उनके जीवन में सन्तानोत्पत्ति का योग भी नहीं आया। उनके जीवन में सन्तानोत्पत्ति के बाद आर्थिक विषमताओं के दूर होने का योग था अतः वे सन्तानोत्पत्ति के विविध उपायों में लगे रहते थे।

अनायास एक सन्यासी से उनका साक्षात्कार होगया। उस सन्यासी ने उनको वृन्दावनस्थ गोपेश्वर महादेव की आराधना करने का आदेश दिया। पण्डित मोहनदेवजी ने सन्यासी की आज्ञानुसार दत्तचित होकर गोपेश्वर महादेव की अराधना की। परिणाम स्वरूप उनके पुत्र हुआ। पुत्रोत्पत्ति के बाद भी पण्डित मोहनदेवजी की आर्थिक स्थिति साधारण रही।

पण्डित मोहनदेवजी को गोपेश्वर महादेव की कृपा से जो पुत्र रत्न प्राप्त हुआ था उसका नाम हरिहर था। बालक हरिहर बचपन से ही कुशाग्र

बुद्धि और प्रतिभाशाली था। हरिहरजी साधारण शिक्षा दीक्षा के बाद १२ वर्ष की अवस्था में ही कथावाचन में प्रवृत्त होगये थे उनकी बोली और कथावाचन की शैली अत्यधिक आकर्षक थी अत वे बहुत शीघ्र ही प्रसिद्ध होगये। कथावाचन के साथ साथ उन्होंने नाना विषयों का ज्ञान प्राप्त कर अपने पाण्डित्य को पर्याप्त बढ़ा लिया। उन्होंने अपना कार्यारम्भ किया ही था कि उनके पिता मोहनदेवजी का देहान्त होगया। पिता के देहावसान समय तक भी उनकी स्थिति बहुत साधारण थी। हरिहरजी ने पिता के देहान्त के बाद अपने भविष्य को सुन्दर बनाने की ओर ध्यान दिया और कथावाचन के आधार पर ही उन्होंने अपने उत्साह और अध्यवशाय से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त की। उन्होंने मथुरा मे वसुदेव तीर्थ पर अपना निजी भवन भी बना लिया और एक प्रौढ विद्वान् और अद्वितीय पौराणिक के रूप मे शीघ्र ही प्रसिद्ध होगये।

पण्डित हरिहरजी दूर दूर तक कथावाचन के लिये जाया करते थे। वे जयपुर भी आते रहते थे। वहा उनके कथावाचन की धूम मची रहती थी। जयपुर के तात्कालिक दीवान खवास बालाबक्सजी उनके परम भक्त थे। पण्डित हरिहरजी वाल्लभ वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने "स्कान्द श्रीमद्भागवत महात्म्य" की पाण्डित्य पूर्ण टीका लिखकर वि० स० १६६३ में प्रकाशित की थी। वे केवल टीकाकार ही न थे। सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और मार्मिक कवि भी थे। उन्होंने उक्त महात्म्य में टिप्पणी के अतिरिक्त जो कविता की है वह बहुत ही सुन्दर है। प्रारंभ मे उनका लिखा हुआ यह श्लोक उक्त महात्म्य में उपलब्ध है।

श्रीमद्भागवतं नत्वा लब्धवल्लभद्विजवरात्मजः।
कुर्वे हरिहराऽख्योह श्रीमन्महात्म्यटिप्पणीम्॥

जयपुर के तात्कालिक दीवान खवास बालाबक्स उनके परम भक्त थे, यह ऊपर लिखा जा चुका है। जयपुर मे प्रसिद्ध पत्तानियों का मन्दिर

पहिले ठिकाना गलता के अधिकार में था। पण्डित हरिहरजी जब यहां आते थे तो वे यहीं ठहरा करते थे और यहीं कथावाचन करते थे। ख्वास वालावक्सजी ने गलता के तात्कालिक महन्तों को कहकर यह मन्दिर गलता वालों से ही पण्डित हरिहरजी को दिलवाया था। परतानियों का मन्दिर आज भी उनके पुत्र श्री गोवर्धनलालजी के अधिकार में है। पण्डित हरिहरजी खवास वालावक्स के साथ अपने प्रगाढ़ सम्बन्ध का परिचय देते हुए "स्कान्द श्रीमद्भागवत महात्म्य" में लिखते हैं :—

येनाकारि सुशोभनं जयपुरे श्रीकालिका मन्दिरं,
येनाश्रावि पुराणमुख्यमखिलं वारत्रयं स्वे गृहे।
येनाधाय्यशनप्रवृत्तिरखिला विद्यार्थिनां विंशते,
शास्त्राम्भोधिरमन्थि येन कृतिना जीयात्स वालाभिधः ॥ १ ॥
श्री गोवर्द्धनसेवया हि सततं पुत्रावलम्भि स्त्रिया,
येनाधारि सतामनेकविदुषां कार्याण्यनेकान्यपि ।
येनातापि च विद्विषां हि हृदयं राजाप्यमोहि प्रभु-
स्तस्य प्रार्थनया मया कृतमिदं सर्वं समालोक्यताम् ॥ २ ॥

पण्डित हरिहरजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे कथावाचन में बहुत अधिक निपुण थे। उन्होंने अपने जीवन में अनन्त यश और सम्पत्ति अर्जित की थी। लोग उन्हें पौराणिकरत्न अथवा अपने समय का मुनि शुकदेव कहते थे। उनके परिचय में निम्न श्लोक उपलब्ध है :—

"श्रीमत्यां मथुरापुरीश्रतनृणां मोक्षप्रदायां सदा,
श्रीमद्वल्लभसद्गुरुक्तपदवीं सम्मानयन् भाग्यवान्।
श्रीमद्भागवतं पठन् हरिहरः पौराणिकाऽग्रेसरो-
लोकान्रञ्जयते यथा शुकमुनिः कल्याणपुण्यार्णवः ॥ १ ॥

इस प्रकार के लोकहितैषी महानुभाव का देहान्त लगभग ६४ वर्ष की अवस्था में हुआ। आपने जाति के इतिहास निर्माण में जो कुछ किया वह

अभूतपूर्व था। वर्तमान में आपके पुत्र श्री गोवर्धनलालजी और पौत्र श्री पुरुषोत्तमाचार्य एवं श्री नरोत्तमजी एम० ए० विद्यमान है। तीनों पिता पुत्र भी परम सुयोग्य और मिलनसार हैं। आप लोग जयपुर के जातीय बन्धुओं मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

पंडित जयदेवजी रून्थला

महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के जीवन चरित्र में यह उल्लेख हो चुका है कि महर्षि का स्मारक "श्री मंगलदत्त विद्यालय" रतनगढ़ (बीकानेर) में वि० स० १९७४ से शिक्षा के क्षेत्र में बराबर जनता की सेवा करता आरहा है। "श्री मंगलदत्तजी विद्यालय" के संस्थापकों में पण्डित शिवलालजी जोशी वेदान्त मार्तण्ड, पण्डित जयदेवजी रून्थला, पण्डित पूसारामजी घोचीवाल, पण्डित कुन्दनमलजी भरूनाड़िया आदि महानुभाव प्रमुख थे।

पण्डित जयदेवजी रून्थला "श्री मंगलदत्त विद्यालय" के संस्थापकों में से ही नहीं थे, वे विद्यालय के अनन्य भक्त और सर्वाधिक हितैषी थे। वे विद्यालय के स्थापना दिवस से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त उसके अवैतनिक मंत्री रहे। उन्होंने विद्यालय की सबसे अधिक सेवा की और जाति के लिये सर्वाधिक त्याग किया। उनके जैसे कर्मठ और जाति हितैषी कार्यकर्ता विरले ही लोग होते हैं।

पण्डित जयदेवजी रून्थला का जन्म शेखावाटी प्रदेश के छोटे से गाव "धानणी" में हुआ था, जो लक्ष्मणगढ़ (सीकर) से पश्चिम मे स्थित है। खाण्डलविप्र जाति में "धानणी" के रून्थला बन्धुओं का घराना बहुत ही प्रसिद्ध है। बीकानेर के राजा रतनसिंहजी को सकट काल में आर्थिक सहायता देने के कारण "धानणी" के रून्थला बन्धुओं को जागीर प्राप्त हुई थी और पुरोहित का गौरवशाली स्थान प्राप्त हुआ था। राजा द्वारा गाव और पौरोहित्य प्राप्त करने वाले "धानणी" निवासी रून्थला बन्धु रतनगढ़ के

निर्माणकाल में ही रतनगढ़ में आ बसे थे। इसी सम्पर्क के कारण पण्डित जयदेवजी रून्थला भी "धानणी" छोड़कर रतनगढ़ आ बसे थे।

पण्डित जयदेवजी रून्थला ने अपने बुद्धि बल से रतनगढ़ में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वे रतनगढ़स्थ ब्राह्मण सभा के मंत्री भी रहे थे। जिस समय पण्डित शिवलालजी जोशी वेदान्त मार्तण्ड ने सभी जाति भाइयों के सामने महर्षि मंगलदत्तजी के स्मारक रूप में एक शिक्षा संस्था स्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा उस समय पण्डित जयदेवजी ने इस विषय में विशेष उत्साह प्रकट किया था। फलतः शीघ्र ही "श्री मंगलदत्तजी विद्यालय" की स्थापना हुई।

विद्यालय की स्थापना के बाद पण्डित जयदेवजी रून्थला आठ दश वर्ष तक जीवित रहे। उन्होंने निःस्वार्थ होकर तन, मन, धन से विद्यालय की सेवा की। उन्हीं के त्याग और तपस्या का परिणाम है कि आज तेतीस वर्ष से "श्री मंगलदत्त विद्यालय" बराबर जनता जनार्दन की सेवा के साथ जाति का भी परमहित सम्पादन कर रहा है।

जाति प्रेमी विद्वानों में पण्डित जयदेवजी रून्थला का स्थान पण्डित रामजीलालजी माटोलिया के समान ही गौरवशाली है। यद्यपि पण्डित जयदेवजी रून्थला सार्वदेशिक संस्थाओं में नहीं चमके किन्तु उन्होंने जातीय संस्थाओं के क्षेत्र मे "श्री मंगलदत्त विद्यालय" को इतना अधिक शक्तिशाली बना दिया कि विद्यालय भूतपूर्व बीकानेर राज्य की प्रमुख शिक्षा-संस्थाओं में गिना जाने लगा।

पण्डित जयदेवजी के पुत्र पण्डित मदनलालजी भी अपने पिता के तुल्य ही सुयोग्य और जाति प्रेमी महानुभाव हैं। आप भी अपने पिता श्री के समान ही विद्यालय के परम भक्त हैं। आपने भी अपने पिता के समान ही विद्यालय की सेवा का व्रत ले रक्खा है। यद्यपि आप सार्वकालिक अवैतनिक मंत्री नहीं हैं, फिर भी विद्यालय की सेवा में प्रमुख भाग लेते हैं।

व्याख्यान वाचस्पति पण्डित वक्तावरलालजी माटोलिया

व्याख्यान वाचस्पति पण्डित वख्तावरलालजी माटोलिया उपदेशक भारत धर्म महामण्डल खाण्डलविप्र जाति के ऐतिहासिक महापुरुष पण्डित रामजीलालजी माटोलिया के ज्येष्ठ भ्राता के पुत्र थे। पण्डित रामजीलालजी कोटकपूरा में रहा करते थे और उनके अग्रज फिरोजपुर (पञ्जाब) में रहते थे। पण्डित वख्तावरलालजी का जन्म फिरोजपुर में हुआ था। वे अपने पितृव्य पण्डित रामजीलालजी के समान ही प्रतिभाशाली विद्वान् थे। पण्डित वख्तावरलालजी भारत धर्म महामण्डल के ख्याति प्राप्त उपदेशक थे।

पण्डित वख्तावरलालजी अपने पितृव्य पण्डित रामजीलालजी के समान ही परम जाति हितैषी थे। आप वि० सं० १९८२ मे अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के खण्डवा (सी० पी०) में होने वाले आठवें अधिवेशन के सभापति हुए थे। महासभा का यह अधिवेशन दक्षिण भारत मे सबसे अधिक प्रभावशाली अधिवेशन था।

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के सप्तमाधिवेशन फतेहपुर (शेखावाटी) मे पण्डित वख्तावरलालजी ने अपने अगाध पाण्डित्य का प्रदर्शन किया था। उन्होंने खाण्डलविप्र जाति के उत्पत्ति विषयक पहलुओं पर भ्रामक प्रचार करने वाले लोगों को ऐसा मुँह तोड़ उत्तर दिया था कि उनके सामने बोलने की किसी में शक्ति भी न रह गई थी।

पण्डित वख्तावरलालजी ने जाति सेवा के कार्यों में बहुत अधिक भाग लिया और समय समय पर जाति का सफल नेतृत्व कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। आपके वंशज अब भी फिरोजपुर मे ही रहते हैं। आपने जाति और जातीय संस्थाओं को सब प्रकार का अपेक्षित सहयोग दिया। आप "श्री मगलचन्द विद्यालय" रतनगढ़ के वार्षिकोत्सव पर प्रवश्य पधार कर अपने भाषणों से लोगों को बहुत अधिक प्रभावित करते थे।

योगीराज गणेशजी महाराज रून्थला

योगीराज श्री गणेशजी महाराज रून्थला का जन्म नवलगढ़ (शेखावाटी) में हुआ था। आपका लिखित जीवन चरित्र तो नहीं मिलता, पर जनश्रुतियां बिलकुल ताजा हैं क्योंकि आपको देखने वाले बहुत-से आदमी अभी जीवित हैं।

आप बचपन से ही एकान्त सेवी और कुशाग्र बुद्धि थे। आपने शिक्षा दीक्षा में पर्याप्त श्रम किया था। आपकी मनोवृत्तियां अधिकतर योग की ओर झुकी हुई थी, इसीलिये आप शिक्षा सम्पन्न होते हुए भी सर्वांगीण रूपसे सांसारिक क्षेत्र में नहीं उतर सके। आपने योग की एकान्त साधना में ही जीवन को लगा दिया और समय पाकर एक सिद्ध योगी के रूप में जनसाधारण के सामने प्रकट हुए।

शैशव और यौवन काल नवलगढ़ में विताने के बाद आप चिड़ावा चले गये थे। आपके विषय में यह किम्वदन्ती है कि—आप प्रायः अकेले बैठे बातें किया करते थे, जैसा कि योगी लोग ब्रह्म साक्षात्कार के समय करते हैं।

यह भी सुनने में आया है कि भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति बिड़ला बन्धुओं पर आपकी अपार कृपा थी। लोग यह भी कहते हैं कि बिड़ला बन्धुओं को यह अतुल सम्पत्ति योगीराज श्री गणेशजी महाराज के शुभाशीर्वाद के फल स्वरूप ही प्राप्त हुई थी। बिड़ला बन्धु भी आपको विशेष आदर की दृष्टि से देखा करते थे।

आपके जीवन का विस्तृत साहित्य उपलब्ध न होने पर भी आपकी शेष विभूतियां आज भी जनसाधारण को प्रेरणा प्रदान करती हैं। आप एक पहुँचे हुए महात्मा और आत्म साक्षात्कार करने वाले योगी थे। आपका जीवन एक योगीराज का जीवन था। खाण्डलविप्र जाति में जन्म लेने के

कारण आप इस जाति के लिये सर्वाधिक श्रद्धेय थे और इतिहास प्रसिद्ध महापुरुष होने के कारण इस जाति की भावी सन्तान के लिये भी आप श्रद्धास्पद रहेंगे। इसके साथ साथ यह लिखना अनुचित न होगा कि योगीराज श्री गणेशजी महाराज राजस्थान के इतिहास में भी विभूति स्वरूप रहेंगे।

आयुर्वेदाचार्य पण्डित जयदेवजी जोशी

राजस्थान प्रान्त और विशेषकर शेखावाटी प्रदेश के अग्रवाल महाजनों के कुल पुरोहित खाण्डलविप्र जोशी बन्धु अधिक हैं। शेखावाटी प्रदेश के प्रसिद्ध कस्बे रामगढ़, फतेहपुर, नवलगढ़, बिसाऊ और बीकानेर राज्य के चूरू रतनगढ़ आदि में अग्रवाल पोद्दारों के कुल पुरोहित खाण्डलविप्र जोशी ही हैं।

रामगढ़ शेखावाटी का प्रसिद्ध पोद्दार घराना भारत विख्यात है। इस घराने का व्यापार केवल भारत में ही नहीं अपितु योरोप तक में चमक चुका है। इस घराने के कुल पुरोहित भी खाण्डलविप्र जोशी हैं।

रामगढ़ (शेखावाटी) के जोशी बन्धुओं में पण्डित सांवलरामजी एक सुयोग्य विद्वान् होगये हैं। पण्डित सांवलरामजी जोशी के दो पुत्र थे, जिनमें बड़े पण्डित बद्रीप्रसादजी और छोटे पण्डित जयदेवजी आयुर्वेदाचार्य थे।

पण्डित बद्रीप्रसादजी भी असाधारण विद्वान् थे किन्तु अधिकतर कर्मकाण्ड में रुचि रखते थे जिससे वे पौरोहित्य कार्य में निपुण हुए। उनके अनुज पण्डित जयदेवजी ने रामगढस्थ हरनन्दराय रुइया संस्कृत कालेज में राजस्थान के प्रसिद्ध चिकित्सक पण्डित मणिरामजी महाराज के अन्तेवासी रहकर आयुर्वेदाध्ययन किया था।

पण्डित जयदेवजी आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान् तो थे ही साथ ही वे असाधारण कवि भी थे। राजस्थान में पण्डित श्रीकृष्णरामजी भट्ट के बा-

आयुर्वेदिक कवियों में पण्डित जयदेवजी जोशी का ही प्रमुख स्थान है। आपकी कविता आयुर्वेद प्रधान होते हुए भी इतनी सरस और हृदयग्राही होती थी कि सुनने वाले झूम उठते थे।

पण्डित जयदेवजी जोशी ने "सिद्धभैषज्य मंजूषा" नामक आयुर्वेदिक ग्रन्थ की रचना की थी जो उनके असामयिक निधन से अपूर्ण रह गया। "सिद्धभैषज्य मंजूषा" का प्रथम भाग छप गया था और द्वितीय भाग का निर्माण हो रहा था उसी समय पण्डित जयदेवजी जोशी का देहान्त होगया।

इस जागृति युग में पण्डित जयदेवजी जैसे उद्भट विद्वान का असामयिक निधन खाण्डलविप्र जाति के लिये अत्यधिक दुर्भाग्य की बात है। पण्डित जयदेवजी का देहान्त चौबीस वर्ष की अवस्था में ही होगया था। उनके कोई सन्तान न हुई थी। पण्डित बद्रीप्रसादजी को अपने अनुज के असामयिक निधन से बहुत बड़ी ठेस पहुँची।

पण्डित जयदेवजी के अग्रज पण्डित बद्रीप्रसादजी के दो पुत्र हैं। जिनमें छोटे पुत्र पण्डित जयदेवजी के उत्तराधिकारी हैं। दुर्भाग्य की बात है कि सन् १९४६ ई० में थोड़े समय के अन्तर से पण्डित बद्रीप्रसादजी और उनकी अनुज वधू का देहान्त होगया।

अब पण्डित बद्रीप्रसादजी के दोनों पुत्र (वेणीप्रसाद और विश्वनाथ) हैं। पण्डित सांवलरामजी जोशी की सह धार्मिणी भी अभी तक जीवित हैं।

पण्डित चतुर्भुज मिश्र ने आठवीं शताब्दी में "रस हृदय तंत्र" की टीका लिखकर आयुर्वेद का उपकार करते हुए खाण्डलविप्र जाति का नाम उज्ज्वल किया था। पण्डित चतुर्भुज मिश्र से ठीक बारह शतक बाद बीसवी शताब्दी में पण्डित जयदेवजी जोशी (मिश्र) ने आयुर्वेदिक साहित्य में मौलिक ग्रन्थ रचना कर अपना गौरव बढ़ाते हुए जाति का नाम उज्ज्वल किया। वस्तुतः पण्डित जयदेवजी जोशी खाण्डलविप्र जाति के ऐतिहासिक पुरुष थे, जिन्होंने अपना यश अनन्तकाल के लिये अमर किया था।

रायसाहब पण्डित यशराजजी, पीपलवा

रायसाहब पण्डित यशराजजी, पीपलवा सुजानगढ (बीकानेर) के रहने वाले थे किन्तु वे जिला बालाघाट (सी० पी०) में रहते थे । वहा उन्हें जागीर के गाव मिले हुए थे । लालबर्रा (बालाघाट) उनका प्रधान निवास था, अत लोग उन्हें वहीं का निवासी मानते थे ।

रायसाहब ने अपने जीवन में जो प्रगति की वह उनके अध्यवसाय का प्रतीक है । जबसे रायसाहब जातीय सगठन से परिचित हुए और उन्होंने अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा से परिचय प्राप्त किया तभी से वे जाति के प्रति पूर्ण उत्सुक होगये । उन्होंने समय समय पर जाति को अपेक्षित सहयोग प्रदान कर अपने जाति प्रेमी होने का परिचय दिया ।

सर्वप्रथम वे सन् १९४३ ई० में महासभा के सुजानगढ़ अधिवेशन के अवसर पर जाति के सामने आये थे उसी समय इनका सर्वांगीण परिचय खाण्डलविप्र जाति को मिला था । यद्यपि इसके बाद रायसाहब थोड़े दिन जीवित रहे किन्तु वे जब तक जीवित रहे तब तक तन मन धन से जाति की सेवा करते रहे ।

नवलगढ़ अधिवेशन के अवसर पर रायसाहब स्वय नहीं आ सके किन्तु उन्होंने छात्रवृत्ति फण्ड में रुपया भेजकर अपने शिक्षा प्रेम का परिचय दिया था । रायसाहब की यह आन्तरिक इच्छा थी कि खाण्डलविप्र जाति का प्रत्येक बालक शिक्षित होकर सुयोग्य नागरिक बने । इस जाति प्रेमी सुयोग्य महानुभाव का असामयिक निधन सन् १९४७ ई० में होगया । खाण्डलविप्र जाति को इससे पर्याप्त हानि उठानी पड़ी । यदि रायसाहब कुछ दिन और जीते तो सम्भवत वे जाति सेवा में और भी अधिक भाग लेते और जाति को पर्याप्त लाभ पहुचाते । खेद है कि उनका असमय में ही देहान्त होगया ।

ज्योतिर्विद् पण्डित नाथूरामजी बोचीवाल

ज्योतिर्विद् पण्डित नाथूरामजी बोचीवाल सहनाली (सीकर) निवासी पण्डित गिरधारीलालजी बोचीवाल के पुत्र थे। पण्डित गिरधारीलालजी एक सुयोग्य ज्योतिषी थे। वे अपनी स्थिति सुधर जाने के बाद रामगढ़ (शेखावाटी) में आकर बस गये थे। उन्होंने कलकत्ते के मारवाड़ी व्यापारियों में अपनी अच्छी ख्याति प्राप्त कर रक्खी थी। उनके पुत्र पण्डित नाथूरामजी बोचीवाल ज्योतिष शास्त्र के पारदृश्वा विद्वान् थे। पण्डित नाथूरामजी ने यश और धन प्राप्त करने के साथ साथ अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप भी मारवाड़ियों पर रक्खी थी।

पण्डित नाथूरामजी मारवाड़ी व्यापारियों के प्रतिष्ठित और धनी घरानों में अपना विशेष प्रभाव रखते थे। ज्योतिष शास्त्र के वे पारदृश्वा थे ही। उन्होंने कलकत्ते से "श्रीविश्वविमोहन" पंचांग का प्रकाशन किया था। वे जब तक जीवित रहे उनका पञ्चांग मारवाड़ी समाज में खूब चला।

उनके निधन के बाद पंचांग का प्रकाशन कुछ दिन तक उनके सुयोग्य पुत्र पण्डित रामगोपालजी करते रहे किन्तु बाद में व्यावसायिक लाइन में पड़ जाने के कारण वे पंचांग का प्रकाशन सुचारु रूप से न कर सके और इसी लिये उन्होंने पंचांग का प्रकाशन बन्द कर दिया।

यद्यपि पण्डित रामगोपालजी अपने पिता के समान ही ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् हैं किन्तु उनकी रुचि व्यावशायिक कार्यों में अधिक है और इसीलिये वे ज्योतिष की और अधिक ध्यान नहीं दे पा रहे हैं।

पण्डित नाथूरामजी अपने अमर यश के साथ साथ लाखों रुपयों की सम्पत्ति छोड़ गये हैं। उनका देहान्त सन् १६४२ ई० में हुआ था। वे केवल शेखावाटी के ही नहीं अपितु राजस्थान के प्रमुख ज्योतिषी थे। उनका प्रभाव मारवाड़ी समाज में सर्वोपरि था।

उन्होंने कलकत्ते में खाण्डलविप्रों की सुख सुविधा के लिये याली गोदाम में पर्याप्त स्थान ले रक्खा था। जहां देश से आने वाले जातीय सज्जन प्रारम्भ में ठहर जाते और अपनी सुविधानुसार व्यवस्था होने तक वहा रहकर विदेश के कष्टों से बच जाते थे। इस प्रकार से पंडित नाथूरामजी कलकत्ता रहने वाले जातीय सज्जनों के आश्रयभूत थे। उन्होंने जाति की पर्याप्त सेवा की। अपने शिष्य वर्ग में उन्होंने बहुत से खाण्डलविप्र युवकों को प्रतिष्ठित कराया और जहा तक बना वे जाति सेवा से विमुख नहीं हुए।

पण्डित जुगलकिशोरजी सेवदा

पण्डित जुगलकिशोरजी सेवदा रामगढ (शेखावाटी) के रहने वाले थे। यद्यपि वे बडे विद्वान् नहीं थे किन्तु उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने कलकत्ते में मारवाडी ब्राह्मण समाज की बहुत अच्छी सेवा की थी। वे मारवाड़ी ब्राह्मण समाज की संस्थाओं के प्रमुख कार्यकर्ता थे। उनका प्रभाव धनिक वर्ग पर पर्याप्त था।

वैसे वे प्राचीन विचारों के अवश्य थे किन्तु उनका प्रभाव युवक समाज मे भी पर्याप्त था। रामगढ़ के खाण्डलविप्रों में वे प्रमुख पच थे। सीकर राज्य और सेठ साहुकारों मे भी उनका प्रभाव बहुत अधिक था। सम्वत् १९८८ वि० में रामगढ ताजिया काण्ड के सिलसिले मे वे जेल गये थे। सीकर के रावराजा श्रीकल्याणसिंहजी बहादुर उनका अच्छा आदर करते थे। कलकत्ते के मारवाडी समाज में तो वे प्रतिष्ठा प्राप्त थे ही, साथ ही शेखावाटी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कस्बों में भी उनका प्रभाव एक ख्याति प्राप्त नेता से कुछ कम न था।

आज से पचास वर्ष पहले यहा पंचायतों का बोलबाला रहा था। पञ्च सामाजिक मामलों में निर्विरोध जन समाज पर शासन करते थे। अपनी अपनी जातियों में सभी पञ्चों का प्रभाव बढ़ा चढ़ा था इस समय

बड़ी बड़ी पञ्चायतें हुआ करती थी। पण्डित जुगलकिशोरजी सर्वदा प्रायः आस पास के सभी स्थानों के पञ्चों में ख्याति प्राप्त थे अतः वे बराबर बड़ी बड़ी पञ्चायतों में भाग लेते थे।

इन्होंने अपने जीवन में समाज और राजनीति दोनों को अपनाया था। अपने अन्तिम दिनों में इन्होंने समाज सेवा का कार्य कुछ शिथिल कर दिया था और विशेषरूप से राजनीति की ओर झुक गये थे। यद्यपि वे कांग्रेस के मंच पर नहीं आये और स्थानीय कार्यकर्ताओं के प्रतिपक्षी थे किन्तु उनके सिद्धान्त उपयुक्त थे। वे जब तक जीवित रहे उपयुक्त जन सेवक और प्रभावशाली नेता के रूप में जनता जनार्दन की सेवा करते रहे।

आपके पुत्र पण्डित पुरुषोत्तमजी हैं जो रामगढ़ (शेखावाटी) में ही रहते हैं। आप अपने पिता के समान ही सुयोग्य और सुलझे हुए विचारों के हैं।

* * *

नवयुग के इतिहास निर्माताओं में केवल थोड़े से जातीय ऐतिहासिक महापुरुषों का आंशिक परिचय मात्र ही देकर हम इस प्रसंग से विरत होते हैं। यदि सभी महानुभावों का विस्तृत परिचय दिया जाय तो ग्रन्थ का कलेवर अत्यधिक बढ़ जायगा। इसमें भी उन महापुरुषों का भिन्न परिचय नहीं दिया गया है जो महासभा से सम्बन्धित हैं। महासभा के साथ साथ जातीय उन्नति में सहयोग देने वाले बहुत से महानुभावों का उल्लेख महासभा के इतिहास में हो चुका है अतः उनका परिचय हम उसी रूप में स्वीकार करते हैं। जाति के ऐतिहासिक महापुरुषों का विस्तृत चरित्र चित्रण जो हमारे पास संगृहीत है समय आने पर पाठकों की सेवा में उपस्थित करेंगे। वर्तमान युग के इतिहास निर्माताओं का चरित्र चित्रण भी विस्तार भय से ही नहीं किया गया है। उनका भी केवल नामोल्लेख मात्र ही किया गया है।

भूत और वर्तमान का समन्वय

खण्डलविप्र जाति की प्रादुर्भाव विषयक गवेषणाओं से यह सिद्ध हुआ कि इस जाति का प्रादुर्भाव लगभग तीन हजार वर्ष पहले हुआ था। प्रारंभ में इस जाति का मानव समुदाय भी भारतीय ब्राह्मण जाति का एक अंग था, उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं थी किन्तु घटना विशेष के कारण इस जाति के प्रारंभिक काल के पूर्वज मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों का नाम "खण्डल या खाण्डलविप्र" पड गया था, जो समय पाकर "खण्डेलवाल ब्राह्मण" के रूप में परिणत हुआ।

इस जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि संख्या में पचास थे और इसीलिये "खाण्डलविप्र" या खण्डेलवाल ब्राह्मणों के पचास गोत (अवटंक) प्रचलित हुए। प्रारंभ के ये पचास गोत (अवटंक) उनचास ही प्रसिद्ध हुए। आज भी खाण्डलविप्र जाति में उनचास गोत (अवटंक) प्रसिद्ध हैं। इन उनचास गोतों (अवटकों) को उनचास ख्यात भी कहते हैं। सूची में पचास अवटंको का विवरण सहित उल्लेख है और प्राय मिलते भी सभी हैं। पचास के स्थान पर उनचास गोतों की प्रसिद्धि का कारण यह है कि लोहार्गल तीर्थ में परशुराम के यज्ञ की हिरण्यमयी वेदी के जो खण्ड किये गये थे वे उनचास थे और मधुछन्दादि ऋषियों की सख्या पचास थी, इसलिये जिसे आकाशवाणी द्वारा उन उनचास का पूज्य घोषित किया गया उसे सामान्य गोतों में नहीं गिना गया। इसलिये लोक में केवल उनचास गोत (अवटंक) प्रसिद्ध हुए और शास्त्रानुसार उनकी संख्या पचास है।

परशुराम ने यज्ञ वेदी के सात खण्ड किये और सात खण्डों के सात सात खण्ड किये। अर्थात् (१×७=७, ७×७=४६) इस प्रकार सोने की एक वेदी के उनचास खण्ड कर मधुछन्दादि ऋषियों को दिये गये तो उनचास खण्ड उनचास ऋषियों को ही मिले। मधुछन्दादि संख्या में पचास

थे, अतः एक अवशेष रह गया। इससे उपस्थित सभासदों को भारी चिन्ता हुई क्योंकि एक को सुवर्ण खण्ड न मिलने से धर्मनाश का भय था। सभासदों को चिन्तातुर देखकर आकाशवाणी द्वारा उसका समाधान हुआ और दिव्यवाणी ने उपस्थित सभासदों से कहा कि—'इस में चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह अवशिष्ट ऋषि इन उनचास का पूज्य होगा। इसमें धर्म-नाश की कोई सभावना नहीं है। तुम लोग चिन्ता मत करो। यह श्रेयस्कर ही होगा।'

आकाशवाणी के उपर्युक्त कथन से उपस्थित सभासद चिन्तामुक्त हो गये। वह अवशिष्ट ऋषि भी उन उनचास द्वारा पूजित होकर प्रसन्न हुआ। उस पूज्य गोत (अवटंक) का पता अब नहीं लग रहा है। वहीभाट (वड़वे) उस ऋषि की सन्तान होने का दावा करते हैं परन्तु वस्तुस्थिति इससे प्रतिकूल है। वड़वे खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न नहीं हैं। वे लोग तो वंश परम्परा की आर्ष प्रणाली उठ जाने के बाद जाति के बहीभाट बने हैं। इसलिये वड़वों को ऋषि सन्तान मानकर पूज्य मानना केवल भ्रम ही है।

जिस घटना के आधार पर खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों का नाम खाण्डलविप्र पड़ा उस घटना का उल्लेख श्रीमद्भागवत, महाभारत, तैत्तरेयारण्यक, कौशीतकी ब्राह्मण, विमल संहिता, स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थों में मिलता है। कथाभाग प्रायः सभी का मिलता जुलता है। संक्षेप में महाभारत का निम्नलिखित श्लोक उस घटना का स्पष्टीकरण करता है।

तां कश्यपस्यानुमते, ब्राह्मणाः खण्डस्तदा।
व्यभजँस्ते यदा राजन्! प्रख्याताः खाण्डवायनाः॥

महाभारत वन पर्व।

अर्थात्—राजन्! कश्यप की अनुमति से ब्राह्मणों ने जब उस वेदी को खण्ड खण्ड कर आपस में बाँट लिया तब वे खाण्डवायन वासी ब्राह्मण खाण्डलविप्र नाम से प्रख्यात हुए।

इस श्लोक का स्पष्टीकरण यथास्थान पहले किया जा चुका है। यहां केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि इस घटना के आधार पर खाण्डल-विप्र जाति के प्रवर्तक मधुच्छन्दादि ऋषियों का नाम "खाण्डलविप्र" अथवा "खण्डेलवाल ब्राह्मण" पड़ा था।

इसके बाद इन ऋषियों की सन्तानें एक जाति के रूप में सगठित होती चली गई और समय पाकर इस मानव समुदाय का जातीय रूप एक शक्तिशाली सगठन में परिणित होगया। खाण्डलविप्र जाति को भारतीय ब्राह्मण जाति का एक अंग न मानकर अब उसे उसका एक भाग समझना उपयुक्त समझा गया और उसीके अनुसार इस जाति की सामाजिक स्थिति रही।

यद्यपि खाण्डलविप्र जाति के प्रादुर्भाव काल से बहुत पहले ही भारतीय आर्य समाज में जातीयता का अकुर उत्पन्न होगया था परन्तु इसे फलीभूत होने में समय लगा। रामायण काल से लेकर महाभारत काल तक का भारतीय आर्य समाज एक समृद्ध और सुशिक्षित समाज था। कालान्तर में समाज में दुर्गुणों का समावेश हुआ और भारतीय आर्य समाज अशिक्षित होकर पतन की ओर झुक गया। उस समय अशिक्षा ने समाज में रूढी वादिता को जन्म दिया जिससे समाज के अलग अलग सगठन रूढ जातियों के रूप मे परिणत होगये। मधुच्छन्दादि ऋषियों की सन्तान खाण्डल विप्र जाति का प्रारम्भिक इतिहास भी इसी तथ्य की अपेक्षा रखता है। अत खाण्डलविप्र जाति को भारतीय ब्राह्मण समाज का एक अङ्ग और भारतीय ब्राह्मण जाति का एक प्रमुख भाग मानते हुए हमने खाण्डलविप्र जाति के इस प्रारम्भिक इतिहास में आशिक विवेचन किया है।

इस जाति के आदि पुरुष भरद्वाज और विश्वामित्र नामक ऋषि हुए थे, जिनका विस्तृत परिचय यथास्थान देते हुए हमने वास्तविकता के निकट पहुंचने का प्रयत्न किया है। इस जाति के पूर्वज पुरुषों की लीला भूमि श्री लोहार्गल तीर्थ है, जो आज के राजस्थान राज्य के मध्य में स्थित है।

लोहार्गल तीर्थ का पूर्ण परिचय यथास्थान दिया गया है और यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वस्तुतः खाण्डलविप्र जाति का आदि निवास-स्थान अप्रैल सन् १९४९ ई० के पूर्व का राजपूताना और इसके बाद का बृहद् राजस्थान राज्य है।

यद्यपि आज खाण्डलविप्र जाति समस्त भारत में फैली हुई है किन्तु भारत के विभिन्न प्रान्तों अथवा राज्यों में बसने वाले सभी खाण्डलविप्र जातीय परिवार प्रारम्भ में बृहद् राजस्थान से ही उठकर गये हुए हैं। बृहद् राजस्थान में भी इस जाति के मूल निवास स्थान का प्रधान भू भाग बृहद् राजस्थान निर्माण के पहले का जयपुर राज्य है। लोहार्गल बृहद् राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर के पश्चिम में लगभग ७५ मील पर स्थित है। लोहार्गल के पश्चिम का प्रान्त सूखा और रेतीला है जिसे शेखावाटी कहते हैं। यहां कछावहा वंशीय राजपूतों की शेखावत शाखा वालों का राज्य है। अतः इस भू भाग को शेखावाटी कहते हैं। यह भूतपूर्व जयपुर राज्य का ही एक भाग था। इस भू भाग में खाण्डलविप्र जाति प्रचुर मात्रा में बसती है। लोहार्गल से पूर्व और दक्षिण का भाग सजल और उपजाऊ है। लोहार्गल के पूर्वी दक्षिणी भू भाग को तोरावाटी कहते हैं। यहां खाण्डलविप्र जाति का निवास अधिक तो है ही साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि लोहार्गल तीर्थ से चलकर खाण्डलविप्र जाति के पूर्व पुरुष सर्वप्रथम यहीं बसे थे, अतः इस प्रदेश को भी जाति के प्राचीन निवास स्थान के रूप में स्मरण रखना उचित है। यद्यपि आज भी तोरावाटी में खाण्डलविप्र जाति अत्यधिक संख्या में बसती है परन्तु उसका यह निवास स्थान अन्य स्थानों के समान अर्वाचीन नहीं अपितु अत्यन्त प्राचीन है।

तोरावाटी से लगता हुआ तथाकथित जयपुर राज्य का राजावाटी प्रदेश है जहां खाण्डलविप्र जाति तोरावाटी के समान ही अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचुर मात्रा में बसती है। राजावाटी का प्रमुख नगर और बृहद्

राजस्थान की राजधानी जयपुर खाण्डलविप्र जाति का केन्द्र स्थल है। अकेले जयपुर में ही खाण्डलविप्र जाति के लगभग पाच सौ घर हैं। जयपुर के आस पास के गावों मे भी खाण्डलविप्र जाति के हजारों घर हैं। इस प्रकार देखने मे आता है कि लोहार्गल के पूर्वी दक्षिणी भू भाग मे खाण्डलविप्र जाति का प्रधान निवास स्थान है।

ऊपर यह उल्लेख हो चुका है कि लोहार्गल से पश्चिम मे शेखावाटी में भी खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है परन्तु शेखावाटी में बसने वाले प्राय सभी परिवार तोरावाटी से उठकर पश्चिम में शेखावाटी के आगे जोधपुर और बीकानेर तक फैले हुए हैं। यह ध्यान मे रखने की बात है कि जोधपुर और बीकानेर कमिश्नरियों मे खाण्डलविप्र अथवा खण्डेलवाल ब्राह्मणों का आवास बहुत कम है। यद्यपि जोधपुर के पूर्वी भू भाग मे खाण्डलविप्र जाति का पर्याप्त आवास है किन्तु जोधपुर के पश्चिमी भाग में खाण्डलविप्र जाति का निवास बिलकुल ही नहीं है। इसी प्रकार बीकानेर राज्य मे भी खाण्डलविप्र जाति का आवास केवल शेखावाटी के सीमान्त पर ही अधिक है। बीकानेर के थली प्रदेश मे खाण्डलविप्र जाति का आवास नगण्य है। वैसे तो बहुत से परिवार पंजाब तक पहुँच चुके हैं किन्तु उधर जाना नूतनतम है।

लोहार्गल से दक्षिण मे मेवाड़ और मालवा म पर्याप्त खाण्डलविप्र परिवार रहते हैं। मालवा के विषय मे पहले लिखा जा चुका है कि उधर बहुत पहिले ही पर्याप्त श्रोत्रिय परिवार चले गये थे, जो मालवा के विभिन्न राज्यो द्वारा प्रतिष्ठित हुए। इस विषय मे मातृमिश्र-जिसका विस्तृत विवेचन अन्यत्र कर दिया गया है-का उदाहरण विद्यमान है। मातृमिश्र का उद्भव दशम शतक मे हुआ था, जिनके आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि दशवी सदी मे खाण्डलविप्र जाति के परिवार मालवा म भी रहते थे। यद्यपि आजकल मालवा के विभिन्न नगरों मे बसने वाले अधिकांश खाण्डलविप्र

परिवार ऐसे हैं जो जयपुर और इसके आस पास के स्थानों में जाकर यहाँ बसे हैं परन्तु कुछ अपवाद ऐसे भी हैं जिनका निवास स्थान बहुत अधिक प्राचीन काल से मालवा है। अर्थात् लगभग दो हजार वर्ष पहले तक मालवा में खाण्डलविप्र परिवारों का आवास था।

इसी प्रकार मेवाड़ के खाण्डलविप्र परिवारों के विषय में भी कुछ तथ्य ऐसे मिले हैं कि उनके आधार पर मेवाड़ में भी खाण्डलविप्र परिवारों का आवास बहुत पुराना सिद्ध होता है। मेवाड़ में खाण्डलविप्र परिवारों के पास डूक और माफी की जो जमीनें हैं उनके अधिकांश पट्टे वि० सं० १५५५ के हैं, जिनके आधार पर यह समझ में आता है कि मेवाड़ में भी खाण्डलविप्रों का निवास हजारों वर्ष पुराना है। मेवाड़ प्रान्त में जो पट्टे डूक और माफी के हैं उनके अतिरिक्त दो तीन गांव भी खाण्डलविप्रों के अधिकार में हैं। सौभागपुरा (भीलवाड़ा) (मेवाड़) का इतिहास इस विषय में विशेष प्रकाश डालता है क्योंकि सौभागपुरा खाण्डलविप्र जातीय धनीवाल बन्धुओं को माफी में मिला था। उनका यह माफी सम्बन्धी इतिहास पर्याप्त पुराना है। सौभागपुरा के शासकों के वंशज बीकानेर में भी रहते हैं जिनका घराना पर्याप्त प्रतिष्ठित है। मेवाड़ में और भी दो गांव खाण्डलविप्र बन्धुओं के अधिकार में हैं जिनका उल्लेख यथावकाश होगा।

लोहार्गल से पूर्व में खाण्डलविप्र परिवारों की बसती भरतपुर तक है। इसके बाद आगे खाण्डलविप्र परिवारों की बसती बहुत कम है। यदि कोई इक्के दुक्के परिवार उत्तर प्रदेश में हैं तो वे भी विशेषता रहित हैं।

दक्षिण में आबादी के दृष्टिकोण से खण्डवा तक खाण्डलविप्र जाति का सिलसिला है किन्तु सविशेष बसती इन्दौर तक है। इन्दौर से आगे खांडल विप्र जाति की बसती साधारण है। आगे चलकर खानदेश में फिर खांडल विप्र जाति के पर्याप्त परिवार बसे हुए हैं। खानदेश हैदराबाद राज्य आदि में पर्याप्त खाण्डलविप्र परिवार हैं किन्तु उनमें अधिकतर मेवाड़, मारवाड़

और हाड़ौती प्रदेश से उठकर गये हुए हैं। खानदेश में धुलिया आदि स्थान ऐसे भी हैं जहां खाण्डलविप्रों के पर्याप्त परिवार स्थायी रूप से रहते हैं। वे लोग अधिकतर व्यापारी हैं और लगातार सैंकड़ों वर्षों से वहीं रह रहे हैं। अतः हम दक्षिण में खाण्डलविप्र जाति को खानदेश तक फैली हुई मान सकते हैं।

खानदेश से आगे पूना और शोलापुर में भी खाण्डलविप्र जाति के पर्याप्त परिवार बसते हैं जो व्यापार व्यवसाय के कारण वहां दिनों दिन चिरस्थायी होते जा रहे हैं।

व्यापार व्यवसाय के कारण भरतपुर के आगे उत्तर प्रदेश मे भी कई एक स्थानों मे खाण्डलविप्रों की बसती है। जैसे हाथरस, मथुरा आदि स्थानों में रहने वाले खाण्डलविप्र परिवार उत्तर प्रदेश के अस्थायी निवासी माने जा सकते हैं। सासनी (अलीगढ) को छोड़कर उत्तर प्रदेश में खाण्डलविप्र परिवारों की स्थायी बसती नहीं है। खाण्डलविप्र जाति की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के संस्थापक पंडित आनन्दवल्लभजी, जगन्नाथजी, रामकुमारजी आदि रुन्थला बन्धु सासनी में ही रहते थे। अब भी उनका घराना सासनी में पूर्ण प्रतिष्ठित है। महासभा की स्थापना पण्डित द्वारिकाप्रसादजी के विवाह में हुई थी। वे पण्डित द्वारिकाप्रसादजी सी० पी० के, प्रसिद्ध नगर जबलपुर में वैद्यक व्यवसाय करते हैं। आपकी प्रतिष्ठा जबलपुर में विशेष रूप से है।

दिल्ली और पंजाब में भी खाण्डलविप्रों की बसती है। दिल्ली प्रांत मे तो बहुत कम खाण्डलविप्र परिवार हैं परन्तु दिल्ली नगर में कुछ तो स्थायी परिवार हैं और कुछ व्यापारी और नौकरी पेशा परिवार वहां रहते हैं जिसके कारण दिल्ली मे खाण्डलविप्रों की अच्छी संख्या है। पंजाब के रोहतक जिले मे खाण्डलविप्र जाति की अच्छी बसती है। रोहतक जिले में भी हजारों की संख्या में खाण्डलविप्र परिवार हैं। यद्यपि वे लोग अधिकतर

उधर ही रहते हैं और प्रादेशिक कारणों से उनका इधर आना जाना भी कम है फिर भी शिक्षितों के आवागमन से पंजाब और राजपूताना के खाण्डल विप्र परस्पर में मिले हुए से ही हैं। अधिकतर दिल्ली और पंजाब वाले वे ही लोग राजपूताने वालों से विशेष परिचित हैं जो व्यापार अथवा तत्सम कोई कार्य करते हैं। हांसी, हिस्सार, भिवानी और सरसा के आस पास के गांवों में खाण्डलविप्र जाति के पर्याप्त परिवार बसते हैं जो अधिकतर कृषि कार्य कर अपना निर्वाह करते हैं।

जयपुर से दक्षिण में काठेड़ा (प्रदेश जिसमें जयपुर की मालपुरा मावोराजपुरा आदि दक्षिणी तहसील भूतपूर्व किशनगढ़ राज्य और कुछ प्रदेश मेवाड तथा हाड़ौती का है) में खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बस्ती है। काठेड़ा प्रदेश के खाण्डलविप्र भी समृद्धिशाली हैं। इस उपजाऊ प्रदेश में रहने वाले अधिकतर कृषक अवश्य हैं परन्तु उनका जातीय प्रेम शिक्षितों को भी पीछे धकेलता है। श्रीपुष्करराज में जातीय संस्था निर्माण के हेतु उत्साह पूर्वक आगे बढ़ने वालों में प्रमुख स्थान काठेड़ा प्रान्तीय खाण्डल विप्रों का है। काठेड़ा में भी खाण्डलविप्र जाति का आवास अति प्राचीन काल से है।

हाड़ौती और मेवाड़ प्रदेश में खाण्डलविप्र जाति की अच्छी बस्ती है। इन दोनों प्रदेशों में भी खाण्डलविप्र जाति चिरकाल से बस रही है। व्यवसाय अधिकतर खेती है। हाड़ौती प्रदेश की अपेक्षा मेवाड़ में खाण्डल विप्र जाति के मनुष्य अधिक हैं। मेवाड़ प्रदेश में लगभग तीन चार हजार खाण्डलविप्र बसते हैं। मेवाड़ वालों का अतीत प्रेरणाप्रद और भविष्य आशामय है। मेवाड़ प्रदेश में बसने वाले खाण्डलविप्रों के पूर्वज इतिहास में विशेष रूप से अपना स्थान रखते हैं। जिस प्रकार जयपुर नगर के निकटस्थ नांगलगढ़ का पट्टा महाप्रतापी जयसा बोहरा के वंशजों के अधिकार मे है उसी प्रकार मेवाड़स्थ पनोतिया और सरेड़ी गांव भी वहां के

खाण्डलविप्रों के अधिकार में हैं। पनोतिया के अधिपति वहा के परवाल व्यास बन्धु हैं और सरेडी के अधिपति वहा के बुढाढरा बन्धु हैं। वैसे अधिकतर मेवाड निवासी खाण्डलविप्र परिवारों को उदक व माफी के रूप मे कुछ न कुछ जमीन अवश्य मिली हुई है। पनोतिया और सरेडी पूर्ण रूप से खाण्डलविप्र जाति के उपर्युक्त महानुभावों को मिले हुए हैं।

मेवाड प्रदेश मे भीलवाडा, पुर, पनोतिया, सरेडी, घोसुण्डा, कपासन, सौभागपुरा, उदयपुर, बेगू, मेजा, घोडास और कोठडी आदि स्थान खाण्डल विप्र जाति के केन्द्र हैं। इन स्थानों मे खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं। भीलवाडा मे डोलिया और पुर मे दूतों का घराना प्रसिद्ध है। पुर के दूतों का घराना किसी समय मेवाडस्थ समस्त खाण्डलविप्र जाति का नेतृत्व करता था। वर्तमान मे इस घराने मे पण्डित हरलालजी दूत हैं, जिनके पुत्र पण्डित हीरालालजी और ललितप्रसादजी परम जाति हितैषी हैं। पण्डित हीरालालजी तहसीलदार हैं। भीलवाडा के डोलियों के घराने मे पण्डित घासीलालजी डोलिया प्रसिद्ध जाति हितैषी महानुभाव हैं। आपके पुत्र पर्याप्त शिक्षा प्राप्त हैं।

उदयपुर मे पण्डित हीरालालजी झरसनाड़िया का प्रसिद्ध घराना है। पण्डित हीरालालजी का देहावसान हो चुका है। उनके सुपुत्र पण्डित भंवर लालजी वर्तमान मे मेवाड के सभी खाण्डलविप्रों के नेता हैं। यहा यह लिखना अनुचित न होगा कि मेवाड मे अब तक हुई जातीय प्रगति का समस्त श्रेय पण्डित हीरालालजी झरसनाड़िया को है। आधुनिक युग मे सर्वप्रथम शिक्षा प्राप्त कर मेवाड में जाति को नवयुग का सन्देश सुनाने वाले पण्डित हीरालालजी शास्त्री ही थे। वे अध्यापन कार्य करते हुए भी जाति की प्रगति के लिये पर्याप्त काम करते रहते थे। उनके सुपुत्र पण्डित भंवरलालजी तो आज मेवाड़ में खाण्डलविप्र जाति के पूर्ण रूप से नेता हैं। पण्डित भंवर लालजी झरसनाड़िया ने जाति के लिये बहुत अधिक त्याग किया है।

कुछ समय पूर्व परवाल व्यास बन्धुओं का पनोतिया खालसे होगया था। तीन वर्ष तक उसकी लटाई तात्कालिक मेवाड़ राज्य करता रहा। जब पण्डित भवरलालजी झखनाड़िया को पता लगा तो उन्होंने पनोतिया के परवाल व्यास बन्धुओं को संगठित किया और उन्हें पर्याप्त सहयोग देकर अपने अध्यवशाय से समस्त गांव तीन वर्ष की लटाई सहित वापिस दिलवा दिया। पण्डित भँवरलालजी झखनाड़िया आजकल राजस्थान राज्य के सेटलमेंट विभाग में उच्च पद पर नियुक्त हैं।

मेजा में पण्डित हरिशंकरजी भी जाति के प्रतिष्ठित महानुभाव हैं। आप ठिकाना मेजा के फौजदार कामदार हैं। मेजा मेवाड़ राज्य का प्रमुख ठिकाना है। इस ठिकाने में हरिशंकरजी का प्रभाव सर्वोपरि है।

यद्यपि मेवाड़ प्रान्त के खाण्डलविप्र अभी तक शिक्षा के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पाये हैं परन्तु उनकी सम्पन्नता धीरे धीरे उनकी अशिक्षा को दूर कर देगी। मेवाड़ वाले आधुनिक सम्पन्नता के आधार पर तो सम्पन्न नहीं कहे जा सकते किन्तु उनके पास कृषि के व्यवशाय और अन्न की कमी नहीं है।

हाड़ौती प्रदेशस्थ खाण्डलविप्रों के विषय में भी यही दृष्टिकोण उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि हाड़ौती वाले भी कृषि द्वारा अन्नादि से सम्पन्न हैं। उनमें भी शनैः शनैः जागृति हो रही है। हाड़ौती में भी कतिपय परिवार समृद्ध और शिक्षित हैं।

इसी प्रकार जोधपुर (मारवाड़) के पूर्वी भाग में भी खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त वसती है। वहां के लोग भी प्रायः दक्षिण हैदराबाद और खानदेश में व्यापार व्यवशाय करते हैं।

शेखावाटी और बीकानेर राज्य में वसने वाले खाण्डलविप्र परिवारों में से व्यापार और नौकरी पेशा करने वाले लोग अधिकतर कलकत्ता, बम्बई और आसाम में रहते हैं। पहले कुछ लोग वर्मा में भी व्यापारिक कार्य करते थे परन्तु अब वर्मा में बहुत कम लोग रहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे हमने लिखा है कि खाण्डलविप्र जाति के कुछ परिवार बहुत पहिले ही मालवा मे चले गये थे। इनमे अधिकतर श्रोत्रिय (सोती) परिवार थे। इन परिवारों का उधर जाना पुराना है दशवीं सदी मे सामन्त दुलहराय कछावहा के साथ मानमिश्र का ग्वालियर से आना यह सिद्ध करता है कि दशवीं सदी मे बहुत पहले मालवा मे खाण्डलविप्र जाति के परिवार जा बसे थे। यद्यपि अब श्रोत्रियों का मालवा मे पहले जैसा प्रभाव नहीं है किन्तु अब भी वहा श्रोत्रिय परिवार पर्याप्त सख्या मे है। श्रोत्रिय परिवारों की पर्याप्त सख्या या तो जयपुर नगर मे है या मालवा मे। बाकी प्राय सर्वत्र श्रोत्रिय (सोती) बन्धु बहुत कम मिलते हैं।

समस्त भारत मे फैली हुई खाण्डलविप्र जाति का निवास स्थान विषयक यह साधारण परिचय है। इस परिचय के साथ साथ यह लिखना अनुचित न होगा कि खाण्डलविप्र जाति के सद् गृहस्थों के साथ साथ एक बडा भारी समुदाय उन सन्त महन्तों और मठाधीशों का है जो खाण्डलविप्र जाति मे उत्पन्न हुए हैं और आज धर्मासन पर बैठे समाज शिक्षण के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। यह तो सुनिश्चित है कि भारतीय सस्कृति के आधार स्तम्भ मन्दिर और मठ रहे हैं। मन्दिर और मठों का सस्कृति रक्षण कार्य आज भी है। राजस्थान (जहा खाण्डलविप्र जाति की सबसे अधिक बसती है) मे अधिकतर मन्दिर और मठों के अधिपति आज से नहीं अपितु चिरकाल से खाण्डलविप्र वंशोत्पन्न महानुभाव होते आये हैं। राजस्थान के भूतपूर्व राज्यों मे जयपुर सबसे अधिक समृद्धिशाली राज्य था। जयपुर में जितने अधिक मन्दिर और मठ है उतने राजस्थान के अन्य किसी भी भाग मे नहीं हैं। जयपुर राज्य के इन मठ, मन्दिरो की आर्थिक दशा भी प्राय अच्छी है। प्राय सभी मन्दिरों के भोग राग के लिये राज्य की ओर से कुछ न कुछ व्यवस्था है। जयपुर नगर के बहुसख्यक मन्दिरों में अधिकाश खाण्डलविप्रों के अधिकार मे है। प्राय मन्दिरों के सभी अधिपति राज्य

द्वारा प्रदत्त जागीरों के पूर्ण रूप से स्वामी हैं। अतः जयपुर के मन्दिरों व महन्तों की आर्थिक अवस्था अच्छी है।

जयपुर के पश्चिम में शेखावाटी और उत्तर में तोरावाटी में भी अनेक मन्दिर हैं। वहां भी अधिकांश मन्दिर खाण्डलविप्रों के अधिकार में हैं। गांवों के छोटे मोटे मन्दिरों के बिना भी शेखावाटी में रैवासा पलसाना, सीकर, लछमनगढ़, फतेहपुर, नवलगढ़, मुकुन्दगढ़, बिसाऊ, रामगढ़, चूरू, रतनगढ़ आदि प्रमुख स्थानों में बड़े बड़े मन्दिर हैं जो खाण्डलविप्रों के अधिकार में हैं।

इसी प्रकार तोरावाटी में भी श्रीमाधोपुर, मुण्डरू, अमरसर, नाण, वागरियावास, बाणगंगा, मदनी, आदि स्थानों में बड़े बड़े मन्दिर हैं जो खाण्डलविप्रों के अधिकार में हैं।

शेखावाटी और तोरावाटी के समान ही जयपुर के निकटस्थ राजावाटी प्रदेश में भी अनेक मन्दिर ऐसे हैं जिन पर खाण्डलविप्रों का अधिकार है।

जोधपुर और बीकानेर राज्यों में भी कई एक मन्दिर भू वृत्ति वाले ऐसे हैं जिन पर खाण्डलविप्रों का पूर्ण अधिकार है, जिनमें शंभुपुरा, डीडवाना, लाडनूँ आदि के मन्दिर प्रमुख हैं। इसी प्रकार बूंदी में भी एक पर्याप्त समृद्ध मन्दिर खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न आचार्य के अधिकार में है जो कभी बूंदी नरेशों के गुरु थे।

किशनगढ़ (बड़ा) में काचरिया मन्दिर परम प्रसिद्ध है जो खाण्डलविप्रों के अधिकार में है। भूतपूर्व किशनगढ़ स्टेट में सलेमाबाद में निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान पीठ है जो अनेक बार खाण्डलविप्रों के अधिकार में रह चुका है। किशनगढ़ रेनवाल में निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसके आचार्य श्री राधिकादासजी महाराज हैं, जो जाति के परम हितैषी महानुभाव हैं। इसी प्रकार पलसाना (शेखावाटी) का निम्बार्क सम्प्रदाय का मन्दिर वर्तमान में खाण्डलविप्रों के अधिकार में है। पलसाना के निम्बार्क

सम्प्रदाय के मन्दिर के वर्तमान अधिपति श्री माधवाचार्यजी महाराज हैं जो एक दिव्य महापुरुष हैं।

राजस्थान में जो वैरणव महानुयायी तथा अन्य मठ, मन्दिर हैं उनमें रामानुज और निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिर ही अधिक हैं। इन दोनों प्रकार के मन्दिरों में पर्याप्त खाण्डलविप्र मन्दिरों के प्रधान आचार्य के पद पर मिलते हैं। राजस्थान में गृहस्थ और विरक्त दोनों प्रकार के महन्त मिलते हैं। विरक्त महन्तों में शिष्य बनाने की परिपाटी है और गृहस्थ महन्तों में ज्येष्ठ पुत्र देवोत्तर सम्पत्ति का अधिपति होता है। देवोपभुक्त सम्पत्ति का उपयोग ठीक से सत्कार्य में होता रहे, इसी उद्देश्य को लेकर उभय पक्ष में उत्तराधिकार का निर्णय किया जाता है। महन्त केवल भू सम्पत्ति के रक्षक मात्र हैं। यह व्यवस्था जयपुर में प्राचीन काल से चली आती है। कुछ अपवाद गृहस्थ महन्तों में सेवा के ओसरे के रूपमें भी होते हैं किन्तु इससे मंदिर की मर्यादा में बहुधा दोष आते हैं। इसी दृष्टि से कदाचित् जयपुर राज्य ने केवल महन्त के ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार देवोत्तर सम्पत्ति पर रक्खा था। यह व्यवस्था आज भी पूर्ववत् चालू है।

राजस्थान के इन रामानुजीय वैष्णव मन्दिरों का उद्गम स्थल गलता (गालवाश्रम) है। गलता खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषियों में हुए गालव ऋषि का भूतपूर्व आश्रम है यह ऊपर लिखा जा चुका है। गलता की प्रारम्भिक पीढ़ी परम्परा का समय की दीर्घता के कारण कुछ पता नहीं लगता किन्तु पिछली सात आठ पीढ़ियों से गलता का इतिहास क्रमबद्ध मिलता है। वस्तुत वर्तमान गलता (गालवाश्रम) का इतिहास पयोहारीजी महाराज के आविर्भाव काल से प्रारम्भ होता है। पयोहारीजी महाराज ने अपने प्रभाव से जयपुर (आमेर) के राजाओं को नाथ सम्प्रदाय के शिष्यत्व से मुक्त कर अपना शिष्य बनाया था। पयोहारीजी महाराज स्वय वैष्णव थे। इसलिये उनके शिष्य भी वैष्णव हुए।

पयोहारीजी महाराज के शिष्यों और प्रशिष्यों द्वारा [illegible] स्थापित हैं, जिनमें यहाँ गणना की गयी है । श्री अग्रदेव का और [illegible] कृष्णदासजी के रैवासा नामक स्थान पर चले गये तथा वहीं जानकीनाथ मन्दिर [illegible] मिल गया । गलता के बाद दूसरे स्थान में रैवासा का नम्बर आता है । बाकी के प्रायः सभी मन्दिरों पर इन्हीं शिष्य परम्परा में है । जयपुर राज्य के मन्दिरों के अतिरिक्त गलता की गद्दी के [illegible] सर्वत्र है कि गलता की गद्दी रैवासा वालों के लिये पूज्य है, [illegible] अधिक रैवासा की शिष्य परम्परा में भी है । रैवासा में भी गलता के समान ही जागीरि जयपुर राज्य एवं शेखावाटी के गाँवों में मिली हुई थी जिनकी वार्षिक आय लगभग पचास हजार रुपये थी । स्वर्गीय जयपुर महाराजा के पितामह सवाई श्री रामसिंहजी के शैवमतानुयायी होने से रैवासा की जागीर सरकार के आदेश से जब्त भी नहीं थी किन्तु इस पीठ के हजारों सम्पन्न शिष्य देश विदेश में हैं जिनके आर्थिक सहयोग से मन्दिर का सब खर्चा चलता है । रैवासा पीठ के तत्त्वावधान में एक छोटा सा संस्कृत विद्यालय भी चलता है । वर्तमान में रैवासा पीठ के आचार्य श्री[illegible] महाराज एक आचार परायण चरित्रशाली उपासक महानुभाव हैं ।

सीकर और लोहार्गल के अत्यन्त निकट रैवासा पीठ उत्तरी भारत का श्रीरंगम कहा जा सकता है । यहाँ के आचार्य [illegible] सम्प्रदायनिष्ठ भी हैं । इस रैवासा पीठ की शिष्य परम्परा में अनेक मन्दिर और मठों में अनेक खाण्डलविप्र आचार्य समासीन हैं जिनसे जातीय जीवन को सर्वांगीण प्रोत्साहन मिलता है ।

उत्तर भारत में भगवद् रामानुजाचार्य के वैष्णव मत का प्रचार उनके शिष्य स्वामी रामानन्द ने किया था । प्रारम्भ में उत्तर भारत के वैष्णव अपने सम्प्रदाय को रामानन्दोपमुक्त रामानुज सम्प्रदाय का मानते रहे होंगे किन्तु सुनने में आता है कि स्वामी रामानन्द ने कबीर को अपने सम्प्रदाय की दीक्षा दी थी

अतः अन्य वैष्णव इससे असन्तुष्ट हुए और कुछ लोगों ने स्वामी रामानन्द का विरोध किया। फिर भी स्वामी रामानन्द के समर्थक पर्याप्त थे। परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत के वैष्णवों में दो दल होगये। जिनमें एक दल अपने को रामानन्दोपभुक्त रामानुज सम्प्रदाय का मानता है और दूसरा दल अपने को केवल रामानुज सम्प्रदाय का अनुयायी मानता है। राजपूताने और विशेषकर गलता की शिष्य परम्परा में होने वाले सभी वैष्णव अपने को केवल रामानुजी ही समझते आये हैं। स्वामी रामानन्द को भी अपने सम्प्रदाय का एक आचार्य मानते आये हैं। स्वामी रामानन्द के मत की विशेषता केवल यही थी कि वे उत्तर भारत में रामानुज सम्प्रदाय के प्रचारक थे इसीलिये उन्हें पूज्य मान कर इधर वाले अपने को रामानन्दोपभुक्त रामानुजी कहते हैं परन्तु वे लोग अधिकतर खाकी वैष्णव हैं जिनमें वर्णाश्रम विधान का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। राजस्थान के विशुद्ध वैष्णवों की स्थिति इससे भिन्न है।

प्रसगवश यह लिखना अनुचित न होगा कि तथास्थित रामानन्द सम्प्रदाय भगवद् रामानुजाचार्य के पद चिन्हों पर ही चलने वाला है और इसीलिये राजस्थान के रामानन्द पीठों के अधिकारी आचार्य कहलाते हैं किन्तु धर्म में भी राजनैतिक विप्लव समय की गति से होते ही रहते हैं। वर्तमान में सुधारक रामानन्दी वैष्णव अपने को रामानुजोपभुक्त नहीं मानते वे अपनी परम्परा पृथक् मानते हैं। "वैष्णव मताब्जभास्कर" जो जयपुरस्थ बालानन्द पीठ से प्रकाशित हुआ है—में इस विषय की गंभीर चर्चा है। उन तथ्यों के रहते हुए भी अभी कुछ समय पहले गलता पीठ पर रिफार्मर रामानन्दियों का अधिकार होगया है। निसन्देह गलता, रैवासा और बालानन्दादि पीठ स्वामी रामानन्द के वैष्णव धर्म के प्रचार स्वरूप ही स्थापित हुए थे किन्तु उनको अपनी परम्परा स्वतन्त्र न चला कर श्रीरामानुजोपभुक्त ही माननी चाहिये क्योंकि स्वामी रामानन्द भी रामानुजाचार्य के पद चिन्हों पर चलने वाले थे। इस प्रसङ्ग को अधिक न बढ़ाकर

तात्पर्यांश में राजस्थान में फैले हुए वैष्णव पीठों में 'अधिकतर खाण्डलविप्र समासीन हैं' इतना ही कहना हमारा ध्येय है। निम्बार्क और रामानुजी वैष्णव राजस्थान में अधिक संख्या में मिलेंगे जिनमें अधिकतर खाण्डलविप्र जाति के निहंग ठिकाने सैकड़ों वर्षों से अद्यावधि चले आते हैं।

रैवासा पीठ की शिष्य पम्परा में संस्थापित हजारों मंदिरों में आज खाण्डलविप्र अधिकारारूढ़ हैं। यद्यपि आज अस्पष्ट रूपसे यह सुनाई देने लगा है कि "विरक्त सन्त, महन्त और मठाधीश यह कह रहे हैं कि हमें जाति से क्या मतलब! हम तो विरक्त हैं।" यद्यपि यह भावना उपयुक्त प्रतीत नहीं होती और जिन मंदिर मठाधीशों की ये भावनायें हैं उन्हें ऐसा सोचना भी नहीं चाहिये। एक ओर जहां इस प्रकार के कुविचार अपनी जाति के प्रति उठ रहे हैं वहां दूसरी ओर श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीररावबाचार्यजी महाराज उत्तराहोबिल मालरिया डीडवाना (मारवाड़) श्रीपुष्कर तीर्थ में अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा को लगभग एक लाख रुपये की लागत का भवन प्रदान कर चुके हैं। कहने को तो श्री स्वामीजी महाराज भी उपर्युक्त विरक्तिभाव प्रकट कर जाति से नाता तोड़ सकते थे परन्तु उन्होंने जातीय जीवन के महत्व को समझते हुए सामयिक मांग के अनुसार जाति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया, यह उनकी महत्ता का परिचायक है।

मन्दिर का अधिपति बन जाने से किसी व्यक्ति की जाति छूट नहीं जाती अथवा जातीय रक्त के कीटाणु उस व्यक्ति के शरीर से निकल नहीं जाते। जाति और व्यक्ति का सम्बन्ध अटूट है। यद्यपि इस सम्बन्ध का आधार दूसरा भी है परन्तु आज की सामाजिक परम्परा के आधार पर यह मान लेना उपयुक्त होगा कि आज की रूढ़ीवादी जाति से भी व्यक्ति अलग नहीं हो सकता। यद्यपि मठ और मन्दिरों के अधिकारी एक वर्ग विशेष के सदस्य माने जाते हैं परन्तु जातीयता को मानने अथवा न मानने का उन

पर इस वर्ग विशेष की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है। ऐसी अवस्था में जातीयता के साथ चलना समीचीन ही प्रतीत होता है। इसके साथ साथ इस तथ्य को ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि आज खाण्डलविप्र जाति के नर रत्नों के अधिकार में मन्दिर और मठों का जो शासन है वह कोई नई वस्तु तो है नहीं। यह तो एक परम्परागत वस्तु है। इस प्रान्त में प्रारम्भ से ही खाण्डलविप्र जाति के प्रवर्तक मधुछन्दादि ऋषि और उनकी सन्तानें जननेतृत्व का कार्य करती आई हैं। परम्परया उसी गद्दी के उत्तराधिकारी आज के सन्त, महन्त और मठाधीश हैं। पूर्वजों ने भी समाज का नेतृत्व करते हुए जातीय जीवन का पथ प्रदर्शन किया था। आज भी पहले के समान समाज का नेतृत्व करते हुए खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न सन्त, महन्त और मठाधीश जाति के लिये सुयोग्य पथ प्रदर्शक का कार्य कर सकते हैं, जैसा कि श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीरराघवाचार्यजी महाराज उत्तराहोबिल झालरिया ने किया है।

राजस्थान और विशेषकर तथाकथित जयपुर के सभी मन्दिरों के विषय में हमने आंशिक उल्लेख किया है। उपर्युक्त उल्लेख में साधारणतया गलता व रैवासा की शिष्य परम्परा के प्राय सभी मन्दिरों का उल्लेख होगया है। डीडवाना (मारवाड़) के दो परम प्रसिद्ध मन्दिरों का परिचय भी प्रसगवश यहीं दे देना उपयुक्त होगा।

डीडवाना के दो मन्दिरों में एक है उत्तराहोबिल झालरिया और दूसरा है उत्तर तोताद्रि नागोरिया। ये दोनों मन्दिर दक्षिण भारत के रामानुज मतानुयायी वैष्णव मन्दिरों से अधिक सम्पर्क रखते हैं और इनमें दक्षिणी ढंग से ही सेवा पूजा होती है। इन दोनों मंदिरों के वर्तमान अधिपति खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न महानुभाव हैं। उत्तराहोबिल झालरिया के अधिपति श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीरराघवाचार्यजी महाराज का नामोल्लेख ऊपर हो चुका है। उत्तर तोताद्रि नागोरिया के अधिपति श्री श्री

१००८ श्री बालमुकुन्दाचार्यजी महाराज हैं जो परम महापुरुष के रूप में देखे जा सकते हैं। उपर्युक्त दोनों ही महानुभाव जाति के परम प्रेमी और हितैषी हैं। झालरिया मठाधीश्वर ने तो वि० सं० १९९१ में श्री मंगलदत्त विद्यालय रतनगढ़ (बीकानेर) के भवन निर्माण में भी सहयोग देकर अपने शिक्षा प्रेम का परिचय दिया था। श्री मंगलदत्त विद्यालय में आपका बनाया हुआ एक कमरा है।

इसी प्रकार नागोरिया मठाधीश्वर भी समय समय पर जाति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जातीय जीवन को प्रोत्साहन देते रहते हैं। वस्तुतः ये दोनों ही महानुभाव खाण्डलविप्र जाति के प्रति विशेष प्रेम रखते है और जाति के लिये हर प्रकार से तैयार रहते हैं। डीडवाना का संस्कृत महाविद्यालय झालरिया मठाधीश्वर के तत्त्वावधान में चल रहा है। नागोरिया ने भी समय समय पर शिक्षा के प्रति प्रेम भाव प्रदर्शित करते हुए जाति का पथप्रदर्शन किया है।

वस्तुतः ये मन्दिर भारतीय हिन्दू समाज और संस्कृति के रक्षा केन्द्र तो हैं ही साथ ही खाण्डलविप्र जाति के लिये इनको जातीय दुर्ग मान लेना अनुचित न होगा क्योंकि इन सांस्कृतिक दुर्गों में निवास करने वाले धर्मवीर आचार्य प्रवर खाण्डलविप्र जाति और समस्त समाज का शिक्षण और नैतिक संरक्षण करते हुए अपने आदर्श और त्याग द्वारा जाति को नवजीवन प्रदान करते हैं। जिस प्रकार भूतकाल में इन्होंने जातीयता को प्रोत्साहन दिया है वैसे ही वर्तमान और भविष्यत् में भी देना होगा।

उपर्युक्त लेखांश का आशय यह नहीं है कि सन्त महन्त और मठाधीश अपनी जाति को चाहते नहीं। हमने केवल उन बातों की ओर संकेत किया है जिनके द्वारा भविष्य में अनिष्ट की आशंका हो सकती है। समाज के शिक्षक सन्त, महन्त और मठाधीश हमारे पूज्य हैं और रहेंगे। उनके साथ सद्भावना पूर्ण सम्पर्क आज बना हुआ है और भविष्यत् में रहेगा परन्तु



बंशीधर सेकसरिया एण्ड कम्पनी के सौजन्य

नाँगलगढ़ के ध्वंसावशेषों का उपरी भाग

जातीयता के आधार पर भी सन्त, महन्तों और मठाधीशों को हमारा पथप्रदर्शन करना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खाण्डलविप्र जाति के गौरवशाली अतीत के साथ साथ उसका भविष्य भी उज्ज्वल है। वर्तमान में भावी युग की प्रगति के लिये इस जाति के पास अपरिमित साधन वर्तमान हैं। यद्यपि जनसाधारण में शिक्षा की कमी अवश्य है किन्तु बदलते युग की जागृति को देखते हुए आशा है कि अशिक्षा शीघ्र ही दूर हो जायगी।

खाण्डलविप्र जाति के निवास स्थान और उसकी वर्तमान स्थिति के विषय में ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाल दिया गया है। अब जाति की समुन्नति विषयक संस्थाओं के विषय में भी दो शब्द लिख देना उपयुक्त होगा।

खाण्डलविप्र जाति की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा है जिसका पिछले ४२ वर्ष का इतिहास यथास्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त जातीय संस्थाओं में प्रमुख रतनगढ (बीकानेर) का श्रीमंगलदत्त विद्यालय और जयपुर का श्री खाण्डलविप्र विद्यालय है। ये दोनों संस्थायें जातीय बालकों को शिक्षा देकर सुयोग्य नागरिक बनाती हैं। श्रीमंगलदत्त विद्यालय पिछले तेतीस वर्ष से बराबर जाति सेवा के साथ साथ जनता जनार्दन की सेवा करता हुआ उत्तरोत्तर प्रगति करता जा रहा है। इसी प्रकार श्री खाण्डलविप्र विद्यालय जयपुर भी बीस पचीस वर्ष से बराबर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है।

इन दो शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त एक छात्रावास सुजानगढ (बीकानेर) में श्री खाण्डलविप्र मित्रमण्डल के तत्त्वावधान में चल रहा है। श्री खाण्डलविप्र मित्रमण्डल सुजानगढ निवासी खाण्डलविप्रों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है जिसका निजी भवन है।

अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का प्रधान कार्यालय सन् १९४६ ई० से श्रीपुष्कर में श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीर राघवाचार्यजी

महाराज द्वारा प्रदत्त अपने निजी भवन में आगया है, जहाँ एक छात्रावास शीघ्र ही चालू होने वाला है। इसके अतिरिक्त फतेहपुर (शेखावाटी) की श्री खाण्डलविप्र सभा जातीय संस्थाओं में जीवित संस्था है। फतेहपुर की श्री खाण्डलविप्र सभा प्रत्येक कार्य में वहाँ के जातीय सज्जनों का प्रतिनिधित्व करती है।

महर्षि मंगलदत्त स्मारक भवन जिसकी योजना अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के तत्त्वावधान में चालू है शीघ्र ही नवलगढ़ (शेखावाटी) में स्थापित होगा जिसका स्वरूप जाति का एक चिरस्मरणीय ऐतिहासिक स्थान होगा। महर्षि मंगलदत्त स्मारक भवन में एक ऐसा छात्रावास खोलने की योजना है जिसमें कमसे कम पांच सात सौ छात्र रहकर सुविधा पूर्वक सब विषयों की शिक्षा ग्रहण कर सकें।

इसके अतिरिक्त दो एक संस्थायें ऐसी भी हैं जिनका स्वरूप अर्ध जातीय है। आशा है वे संस्थायें शीघ्र ही जाति के लिये हितकर सिद्ध होंगी। समय पाकर इनका स्वरूप भी पूर्ण जातीय हो सकेगा।

समस्त भारत में फैली हुई खाण्डलविप्र जाति की जनगणना अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की योजनाओं में है। इस दिशा में महासभा कुछ कार्य कर भी चुकी है किन्तु अभी तक जनगणना कार्य पूरा नहीं होसका है अतः हम जातीय केन्द्रों का संक्षिप्त परिचय ही देंगे।

जयपुर

यह नगर वृहद् राजस्थान राज्य की राजधानी है। यहां खाण्डलविप्र जाति के लगभग पांच सौ घर हैं। यहां कई एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित घराने ऐसे भी हैं जो जाति के इतिहास की सम्पत्ति हैं। यहां जाति के भारतविख्यात महानुभाव भी हैं। यहीं श्री खाण्डलविप्र विद्यालय है जो जाति की एक प्रमुख शिक्षा संस्था है। यहां जाति के वर्तमान में प्रमुख

महानुभावों में सर्वश्री राजवैद्य पण्डित नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य, पण्डित रामकिशोरजी वैद्य, पंडित जुगलकिशोरजी एम० ए०, पंडित गोविन्दसहायजी वकील, महन्त हरिदासजी महाराज, चौधरी रूपनारायणजी बुढादरा, पण्डित सूर्यनारायणजी सोती, पण्डित सीतारामजी चोटिया, पण्डित दुर्गालालजी मोती, चिरंजीलालजी सोती, वैद्य पण्डित फूलचन्द्रजी सुन्दरिया, पण्डित दामोदरजी साहित्याचार्य, पण्डित सीतारामजी निनाण्या, पंडित मोहनलालजी वाछनाल, पण्डित श्यामलालजी चोटिया, पण्डित गोविन्दनारायणजी सोती, पण्डित हरिनारायणजी मंगलिहारा, भिषगाचार्य पण्डित रामदयालुजी राजवैद्य पंडित सीतारामजी चोटिया, पुरुषोत्तमजी, नरोत्तमजी एम ए आदि प्रमुख हैं।

अजमेर

यहा खाण्डलविप्र जाति के लगभग चालीस पचास घर हैं। पसेटी मोहल्ला में श्री रघुनाथजी का मन्दिर है जिसके अधिकारी खाण्डलविप्र हैं। यहा के जातीय सज्जनों में पर्याप्त जागृति है। वर्तमान में पण्डित काशीरामजी चोटिया तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मणीदेवी चोटिया, पण्डित रनाथजी नवहाल, पण्डित मूलचन्दजी बणसिया, पण्डित श्रीकृष्णजी स्टेशन मास्टर आदि महानुभाव प्रमुख हैं। तीर्थ गुरु श्रीपुष्करराज में अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का कार्यालय अजमेरस्थ खाण्डलविप्रों के जातीय प्रेम के बल पर ही चल रहा है।

पुष्कर

यहा खाण्डलविप्र जाति के घरो की संख्या तो नगण्य है परन्तु मन्दिरो के अधिपतियों में खाण्डलविप्रों की संख्या पर्याप्त है। अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का प्रधान कार्यालय यहा श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीर राघवाचार्यजी महाराज द्वारा प्रदत्त अपने नीजी भवन में है। महासभा

का प्रधान कार्यालय होने से ही पुष्कर की गणना जातीय केन्द्रों में की जाने लगी है।

पीपार

यह मेड़ता जंकशन से जोधपुर जाने वाली रेल्वे लाइन पर स्थित है। यहां खाण्डलविप्र जाति के लगभग चालीस पचास घर हैं। यहां के कुछ लोग दक्षिण में पूना, शोलापुर और हैदराबाद राज्य में रहते हैं। वे लोग व्यापार व्यवशाय द्वारा दिनों दिन समुन्नत होते जारहे हैं।

मूण्डवा

यह नगर मेड़ता से बीकानेर जाने वाली रेल्वे लाइन पर स्थित है। यहां भी खाण्डलविप्र जाति के चालीस पचास घर हैं। यहां के झुन्झुनाद बन्धुओं का घराना प्रसिद्ध है। अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के तत्त्वावधान में निकलने वाले "खाण्डविप्र हितैषी" के सम्पादक पण्डित देवीलालजी झुंझुनाद यहीं रहते हैं। पण्डित देवीलालजी झुंझुनाद खाण्डलविप्र जाति के इतिहास की विभूति हैं। सर्वप्रथम जातीय पत्र का सम्पादन कर जाति को नवयुग का सन्देश देने वाले आप ही हैं। "खाण्डल-विप्र हितैषी" लगभग पचीस वर्ष पहले महासभा के मुख पत्र के रूपमें निकला था। महासभा के कार्य शैथिल्य के कारण उस पत्र का प्रकाशन भी बन्द होगया था। उसीके स्थान पर अब महासभा का मुखपत्र "विप्र बन्धु" निकलता है।

पीपार और मूण्डवा के आस पास में भी खाण्डलविप्रों के परिवार छोटे छोटे गांवों में हैं। उनकी संख्या भी पर्याप्त है किन्तु ज्ञात हो कि पीपार के पश्चिम में और मुंडवा के उत्तर में खाण्डलविप्र परिवारों की संख्या बहुत कम है।

इसके अतिरिक्त तथाकथित भूतपूर्व जोधपुर राज्य के नागोर परगने में खाण्डलविप्र परिवारों की संख्या पर्याप्त है। रुण, जायल, धनकोली और सारडी आदि स्थान मारवाड में खाण्डलविप्र जाति के केन्द्र है। जायल मे पचास के लगभग खाण्डलविप्रों के घर हैं। यहा के झुन्झुनाड़ व्यास बन्धुओं का घराना परम प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हैं। पण्डित भवानी-शंकरजी कथाभट्ट तथा पण्डित श्रीवल्लभजी इंजिनियर जोधपुर आदि महानुभावों का पूर्व निवासस्थान यही था।

सारडी मे भी तीस पैंतीस घर खाण्डलविप्रों के हैं। यहा के काछवाल बन्धुओं का घराना प्रसिद्ध है। अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के भूतपूर्व सभापति कर्मकाण्ड कोविद व्याख्यानवाचस्पति पण्डित शठकोपाचार्यजी महाराज काछवाल के पूर्वज यहीं के निवासी थे।

आज कल श्रीशठकोपाचार्यजी महाराज डीडवाना मे स्थायी रूप से रहते हैं। आप श्रीयुत सेठ मंगनीरामजी, रामकुमारजी बागड के धर्माध्यक्ष हैं। भारतवर्ष के इस प्रसिद्ध धनपति घराने में आपका प्रभाव सर्वोपरि है। आपने जाति सेवा मे अपना बहुत-सा अमूल्य समय लगाया है। आज भी आप महासभा के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। श्रीपुष्कर मे महासभा को भवन प्राप्ति मे आपका सबसे अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। किंबहुना, यदि यह कहा जाय कि अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा को श्रीपुष्कर तीर्थ मे लाखों रुपये की जो स्थायी सम्पत्ति मिली है, उसके सूत्रधार आपही हैं तो कोई आपत्ति न होगी। आप श्री श्री १००८ श्री स्वामी वीर राघवाचार्यजी महाराज के सहाध्यायी हैं।

धनकोली भी खाण्डलविप्रों की बसती के दृष्टिकोण से एक जातीय स्थान कहा जा सकता है। यहा चालीस वर्ष पूर्व खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न पण्डित रामलालजी वैद्य एक सफल चिकित्सक होगये हैं। आपने अपने आसपास के प्रदेश मे अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। पण्डित रामलालजी वंश

के वंशज पण्डित जयनारायणजी वैद्य वर्तमान में वहां के एक सुयोग्य चिकित्सक हैं। आप भी अपने पूर्वज पण्डित रामलालजी के समान ही लोकप्रिय महानुभाव हैं।

बीकानेर

यहां जाति के बीस पचीस घर हैं। यहां वाले प्रायः सभी घराने प्रतिष्ठित और सम्पन्न हैं। यहां के वसीवाल बन्धुओं का उल्लेख मेवाड़ प्रान्तीय खाण्डलविप्रों के परिचय के अवसर पर हो चुका है। सौभागपुरा (भीलवाड़ा, मेवाड़) के वसीवाल यहां हैं, जो राज्य के उच्चाधिकारी हैं। पण्डित महादेवजी बद्रीप्रसादजी इस घराने में प्रमुख हैं। यहां ये लोग "पाण्डया" कहलाते हैं।

यहां खाण्डलविप्र जाति के ख्यातनामा महापुरुष चौमूं के प्रतिष्ठित वैद्यराज पण्डित श्रीनारायणजी पीपलवा रहते हैं। आप यहां बहुत समय से रह रहे हैं। आपने यहां पर लाखों रुपये की चल अचल सम्पति अर्जित करली है। अब आपका स्थायी निवास यहीं है। आज जाति में आपका घराना सर्वश्रेष्ठ है। आपने साधारण स्थिति से ऊपर उठकर अपने अध्यवशाय से जो उन्नति की है वह आदर्श है। आपके सुपुत्र श्रीगोविन्दनारायणजी एक सुयोग्य और उत्साही नवयुवक हैं।

यहां के प्रमुख जातीय महानुभावों में सर्वश्री वैद्यराज पंडित श्रीनारायणजी पीपलवा, पण्डित राधाकृष्णजी जोशी, पंडित गोरधनजी वसीवाल, आयुर्वेदाचार्य पण्डित वंशीधरजी माठोलिया, पण्डित राधाकृष्णजी पीपलवा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

बीकानेर के पास ही उदरामसर नामक गांव में जाति के पर्याप्त घर हैं। संक्षेप में यह समझना चाहिये कि बीकानेर से पूर्व मे खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है। पश्चिमोत्तर में एकदम नगण्य है।

सरदारशहर

यह भूतपूर्व बीकानेर राज्य का एक समृद्ध कस्बा है। बीकानेर स्टेट रेल्वे के रतनगढ़ जंकशन से सरदारशहर को ब्राच लाइन गई है। यहा जाति के पचास साठ घर हैं। प्राय अच्छे समृद्ध जातीय सज्जन यहा हैं। "खाण्डलविप्र परिषद्" यहा जाति की प्रतिनिधि संस्था है। नवयुवक पर्याप्त उत्साही और उन्नतिशील हैं। यहा के स्वर्गीय पण्डित तेजारामजी माठोलिया का घराना परम प्रसिद्ध है। स्वर्गीय पण्डित तेजारामजी के चार पुत्र हैं, जिनमें बड़े पण्डित रामेश्वरलालजी तहसीलदार हैं। उनसे छोटे पण्डित सूरजमलजी सफल व्यवसायी हैं। मझले पण्डित वंशीधरजी आयुर्वेदाचार्य सफल चिकित्सक हैं और उनसे छोटे श्री मोहनलालजी वकील हैं। पण्डित रामेश्वरजी तहसीलदार शकुन शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। आपने "तेजस्त्रयोदय विज्ञान" नामक एक मौलिक ग्रन्थ शकुन शास्त्र पर लिखा है।

यहा के वर्तमान महानुभावों में सर्वश्री भीखारामजी चोटिया, पण्डित धनराजजी सेवदा, पण्डित चुन्नीलालजी रूथला, पण्डित मोहनलालजी माठोलिया पण्डित हीरालालजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रतनगढ़

भूतपूर्व बीकानेर राज्य में रतनगढ़ खाण्डलविप्र जाति का केन्द्र स्थल है। यहा लगभग तीन सौ घर खाण्डलविप्रों के हैं। जातीयता के दृष्टिकोण से आसपास के सभी गाव और कस्बों में रतनगढ़ प्रमुख है। यहा के खाण्डलविप्र बधु विशेष प्रगतिशील हैं। धानणी के रूथला बन्धु जिनको बीकानेर राज्य की ओर से गाव मिला हुआ है—यहीं रहते हैं। वे पुरोहित के नाम से प्रसिद्ध हैं। बीकानेर के राजा रतनसिंहजी के समय में इनके पूर्वज राज्य पुरोहित थे।

महर्षि मङ्गलदत्तजी महाराज का स्मृति चिन्ह "श्री मङ्गलदत्त विद्यालय" रतनगढ में ही है। यहां खाण्डलविप्र जाति में बड़े बड़े विद्वान् और सुयोग्य जाति सेवक होगये हैं। "मारवाड़ी संस्कृत कालेज बनारस" के संस्थापक पण्डित वैद्यनाथजी जोशी यहीं के निवासी थे। पण्डित जयदेवजी रून्थला, फूसारामजी बोचीवाल, कुन्दनमलजी झखनाडिया, पंडित रामचन्द्रजी काछवाल आदि महानुभाव यहीं के रहने वाले थे. जिन्होंने जातीय प्रेम के वशीभूत होकर "श्रीमङ्गलदत्त विद्यालय" की तन, मन और धन से सेवा की। रतनगढ का "श्री मङ्गलदत्त विद्यालय" जाति की शिक्षा संस्थाओं में प्रमुख है। "श्रीमङ्गलदत्त विद्यालय" के संस्थापकों में प्रधान पण्डित शिवलालजी जोशी वेदान्त मार्तण्ड यहीं के निवासी हैं। जातीय स्थानों में हम रतनगढ को प्रथम प्रवुद्ध मान सकते हैं।

रतनगढ़ के चारों ओर खाण्डलविप्र जातीय पर्याप्त परिवार छोटे छोटे गांवों में बसे हुए हैं। उन सबकी उन्नति का प्रतीक रतनगढ़ ही है। रतनगढ़ से लगभग पन्द्रह मील उत्तर में सरदारशहर ब्रांच लाइन पर "मेलूसर" नामक गॉव है, जो रतनगढ़ के तथाकथित पुरोहितों (धानणी के रून्थला वन्धु) के अधिकार में है। रतनगढ़ के पास ही दक्षिण में "लूंछ" नामक छोटे गॉव में रतनगढ़ के रणवा वन्धुओं की जमीन है।

वर्तमान में भी पर्याप्त महानुभाव ऐसे हैं जो जाति के परम हितैषी हैं "श्री मङ्गलदत्त विद्यालय" के अधिष्ठाता पण्डित श्रीरामजी शास्त्री-रून्थला यहीं रहते हैं। पण्डित श्रीरामजी जाति के सर्वाधिक हितैषियों में से हैं। पण्डित जयदेवजी रूंथला के वाद "श्री मङ्गलदत्त विद्यालय" को सुचारु रूप से चलाने का सारा श्रेय आपको ही है। यहां रून्थला, रणवा, बुढ़ाढ़रा, जोशी, चोटिया. झखनाडिया और माठोलिया वन्धुओं की वसती विशेष है।

यहाँ सर्वश्री उमादत्तजी सूरजमलजी माठोलिया, ओंकारमलजी वासुदेवजी झखनाडिया, पण्डित जीतमलजी जोशी, पण्डित शिवलालजी जोशी

वेदान्त मार्तण्ड, पण्डित गणेशरामजी मंगलिहारा, पण्डित नथमलजी रोची-वाल, पण्डित मदनलालजी रुथला, पण्डित रामेश्वरजी जोशी, पण्डित बद्रीप्रसादजी जोशी, पण्डित भोजराजजी पुरोहित, जयनारायणजी पीपलवा, घनश्यामजी जोशी, सुखदेवजी काछवाल, लालचन्दजी दुगोलिया, पण्डित जुहारमलजी चोटिया आदि महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुजानगढ़

सुजानगढ बीकानेर स्टेट रेल्वे का अन्तिम स्टेशन है। यहा से दक्षिण मे डेगाना को रेल जाती है। इस स्थान पर खाण्डलविप्र जाति के लगभग दो अढाइसौ घर हैं यहा के खाण्डलविप्र अधिकतर व्यापारी हैं। यहा सुदरिया, चोटिया, पीपलवा और मगलिहारों के घराने परम प्रतिष्ठित और समृद्ध हैं। लालवर्रा (बालाघाट) के रायसाहब श्री यशराजजी पीपलवा यहीं के रहने वाले थे। यहा "श्री खाण्डलविप्र मित्र मण्डल" नामक एक जातीय सस्था है जिसका निजी भवन है। उक्त सस्था के तत्त्वावधान मे एक छात्रा-वास चल रहा है। यहा भी रतनगढ के समान ही खाण्डलविप्र बन्धुओं में पर्याप्त जागृति है।

यहा के पण्डित मागीलालजी चोटिया एक प्रमुख जाति प्रेमी महानुभाव हैं, जिन्होंने "श्री खाण्डलविप्र मित्रमण्डल" की स्थापना करवा कर अपने अध्यवशाय से उस सस्था को बीस हजार का भवन सुजानगढ़ के प्रसिद्ध सेठ श्री रामेश्वरदासजी रामवल्लभजी पसारी द्वारा बनवा दिया है। पण्डित मागीलालजी चोटिया के अथक परिश्रम का ही यह फल था कि अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का अठारह वर्ष बाद अधिवेशन होकर नवजीवन प्रारम्भ हुआ। उस समय निकट भविष्य में महासभा का कोई अधिवेशन होने की कोई आशा न थी किन्तु पण्डित मागीलालजी चोटिया ने जातीय प्रेमवश उन विषम परिस्थितियों में भी अधिवेशन करवा ही दिया।

पण्डित घींसूलालजी वेगराजजी सुन्दरिया के घराने में पण्डित श्यामलालजी तथा भंवरलालजी आदि विशेष जाति प्रेमी हैं।

इसके अतिरिक्त सर्व श्री चोदूरामजी पीपलवा, हनुमानबक्सजी चोटिया हनुमानदत्तजी वकील, पीथारामजी मंगलिहारा, गणेशरामजी, बालाबक्सजी सेवदा, नथमलजी माठोलिया बी० ए०, गणपतिजी आर्य आदि महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुजानगढ़ के आसपास जसवन्तगढ़, लैंडी आदि छोटे छोटे गांवों में खाण्डलविप्र जाति के पर्याप्त परिवार बसते हैं।

लाडनूँ

लाडनूँ सुजानगढ़ से डेगाना जाने वाली रेल्वे लाइन पर स्थित है। यह सुजानगढ़ से दूसरा प्रमुख स्टेशन है। यहां खाण्डलविप्रों के तीस चालीस घर हैं। यहां के ओसवाल बन्धुओं के गुरु श्री सुमेरुविजयजी यती खाण्डलविप्र जाति के ही नररत्न हैं। यतिजी आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान् हैं। खाण्डलविप्र जाति के सुपुत्रों को केवल शैव और वैष्णवों के धर्मासन ही नहीं प्राप्त हैं अपितु वे जैन बन्धुओं के धर्माचार्य पद पर भी आसीन हैं।

डीडवाना

यहां खाण्डलविप्रों के तो अधिक घर नहीं है किन्तु खाण्डलविप्र जातीय मठाधीशों द्वारा शासित दो प्रमुख स्थान हैं जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उत्तराहोबिल झालरिया और उत्तर तोताद्रि नागोरिया मठ यहीं हैं। ये दोनों मठ खाण्डलविप्र जाति के लिये आदर्श स्थान हैं। यहां झालरिया मठ के तत्त्वावधान में जो संस्कृत महाविद्यालय चल रहा है वह अर्ध जातीय संस्था है परन्तु उससे जाति को पर्याप्त लाभ होरहा है। भविष्यत् में भी होता रहेगा ऐसी आशा है।

यद्यपि डीडवाना नगर मे खाण्डलविप्रों के अधिक घर नहीं हैं परन्तु इसके आसपास खाण्डलविप्र जाति के बहुत-से घर छोटे छोटे गावों में हैं। पण्डित भवानीरामजी रुन्थला एक अद्वितीय विद्वान् और साधु स्वभाव महापुरुष थे। वर्तमान में इनके पौत्र पण्डित सीतारामजी शास्त्री एक सुयोग्य विद्वान् और प्रभावशाली वक्ता है। डीडवाना से पूर्व में लगभग ७-८ कोस की दूरी पर धनकोली जातीय सज्जनों का केन्द्र है यहा १५-२० घर हैं।

कुचामन

यहा खाण्डलविप्रों के चालीस पचास घर हैं। यहा कई एक प्रमुख व्यापारी और विद्वान हैं। यहा रघुनाथजी के मन्दिर के महन्त श्री बलभद्राचार्यजी के पूर्वज भरा जागीर के गुरु थे। कुचामन के पास ही मकराना, जूसरी भावता आदि स्थानों में जाति के पर्याप्त घर हैं। जिस प्रकार रतनगढ़ के आसपास खाण्डलविप्रों के बहुत-से घर छोटे छोटे गावों मे हैं उसी प्रकार कुचामन के पास भी छोटे छोटे गावों मे खाण्डलविप्र जाति प्रचुर मात्रा मे बसी हुई हैं। कुचामन के पास ही नावा प्रसिद्ध स्थान है यहा खाण्डलविप्र जाति के पर्याप्त परिवार बसे हुए हैं। कुचामन से पश्चिम में सादडी, थाली, घाघेराव तक खाण्डलविप्र जाति का आवास है। यहा घुढाड़रा बन्धुओं का प्रमुख घराना है। राधाकृष्णजी गंगाविष्णुजी घुढाडरा यहीं के हैं। —

सांभर

यहा खाण्डलविप्र जाति के चालीस पचास घर हैं। यहा के कई एक व्यापारी व्यवसायी खाण्डलविप्र बन्धु अच्छे प्रतिष्ठित व सम्पन्न हैं। यहा सूरजमल सत्यनारायण का प्रमुख फर्म है। यह फर्म नमक का व्यापार करता है।

फुलेरा

फुलेरा में खाण्डलविप्रों के लगभग पचीस तीस घर हैं। यहां भी कई एक सुयोग्य सज्जन हैं जो जाति प्रेमी हैं।

फुलेरा के आसपास के छोटे छोटे गांवों में खाण्डलविप्रों की अच्छी बसती है। फुलेरा से उत्तर में सीकर तक प्रायः सभी गांवों में खाण्डलविप्र मिल जाते हैं। दक्षिण में काठेड़ा प्रदेश है जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। पश्चिम में साली, माखून आदि छोटे छोटे गांवों में जाति के प्रचुर घर हैं। पूर्व में रेल लाइन के पास-पास आसलपुर आदि स्थानों में जाति के पर्याप्त घर हैं।

आसलपुर में ही खाण्डलविप्र जाति के वड़वा (वहीभाट) रहते हैं। आसलपुर से उत्तर में रींगस तक छोटे छोटे गांवों में खाण्डलविप्र जाति के लोग प्रचूर परिमाण में रहते हैं। आसलपुर स्टेशन के एकदम पास में ही "ध्यावड़ी" नामक स्थान में पण्डित गणेशीलालजी चोटिया रहते हैं जो परम जाति हितैषी हैं।

किशनगढ़

यह नगर भूतपूर्व किशनगढ़ राज्य का प्रमुख नगर है। यहां खाण्डल-विप्र जाति के गृहस्थो के तो अधिक घर नहीं हैं परन्तु यहां का काचरिया मन्दिर परम प्रसिद्ध है इस मन्दिर के भावी उत्तराधिकारी श्री बालकृष्णजी भाटीवाड़ा हैं। इस मन्दिर के वर्तमान अधिपति खाण्डलविप्र हैं। अधिक गृहस्थों के न होने पर भी यह जाति का केन्द्र स्थल है। किशनगढ़ के आसपास दादिया, सरखुरा आदि गांवों में जाति के प्रर्याप्त लोग रहते हैं।

काठेड़ा प्रदेश जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। किशनगढ़ से ही प्रारंभ होता है जो पूर्व में सवाई माधोपुर तक है। दक्षिण में टोरड़ी सागर

तक अर्थात् जयपुर से दक्षिण मे टोरडी सागर तक का भू भाग जो पूर्व पश्चिम में सवाई माधोपुर से लेकर किशनगढ तक फैला हुआ है काठेडा प्रदेश कहलाता है। इसमे मालपुरा, डिग्गी आदि स्थान ऐसे हैं जो जाति के केन्द्र स्थल है। उनियारा, जून्या, रामसर आदि स्थान भी इसीमे हैं। काठेडा में जातीय दृष्टिकोण से अधिक सम्पन्न स्थान मालपुरा है। यह जाति का केन्द्र स्थल है। काठेडा प्रदेश मे बहुत-से जाति हितैषी महानुभाव रहते हैं। जिनमें पण्डित भवरलाल पटवारी मालपुरा आदि प्रमुख हैं।

किशनगढ–रेनवाल

यह स्थान उस रेल्वे लाइन पर स्थित है जो फुलेरा से रींगस होती हुई रिवाड़ी को गई है। यहा खाण्डलविप्र जाति के तीस पैंतीस घर हैं। यहा भी कई एक महानुभाव अच्छे प्रतिष्ठित और समृद्ध हैं। यहा के मदिर के वर्तमान अधिपति श्री राधिकादासजी महाराज है जो जाति के परम हितैषी हैं। यहा से थोडी दूर पश्चिम मे मारोठ के पास शंभुपुरा है जहा एक सम्पन्न मदिर खाण्डलविप्र जात्युत्पन्न श्री केशवदासजी महाराज के अधिकार मे है। किशनगढ–रेनवाल के उत्तर में मींडा, त्योद, दान्ता रामगढ इटावा आदि स्थान हैं जहा खाण्डलविप्र जाति के लोग पर्याप्त परिमाण मे रहते हैं। रेल्वे लाईन के सहारे सहारे मढ़ा भैंसलाना आदि स्थानों मे भी जाति के लोग रहते हैं।

किशनगढ–रेनवाल मे वर्तमान मे पण्डित जगन्नाथजी माठोलिया का नाम उल्लेखनीय है। आप जाति मे प्रमुख कार्यकर्ता है। दहेज और मृतक भोज जैसी कुरीतियों को अपने घर से तोड़ने में आपने सर्वप्रथम जाति के सामने आदर्श उपस्थित किया है।

इधर जयपुर से पश्चिम में जयसा बोहरा के नागलगढ के बाद रेल्वे लाइन के पास-पास के कस्बों एवं गाँवों में भी जाति की पर्याप्त बसती है।

चौमूँ

जयपुर से चलने पर यही पहला बड़ा कस्बा आता है। यहां खाण्डलविप्र परिवार पर्याप्त संख्या में रहते हैं। यहां पीपलवा बन्धुओं का प्रसिद्ध घराना है जो आज कल बीकानेर में रहते हैं। ये लोग "बड़ाबालिया" नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वैद्यराज पंडित श्री नारायणजी पीपलवा का नामोल्लेख ऊपर हो चुका है। यहां के माठोलिया बन्धुओं का घराना भी पूर्ण प्रतिष्ठित है किन्तु वे लोग अधिकतर जयपुर में जा बसे हैं। चौमूँ निवासी पंडित रामसहायजी माटोलिया भूतपूर्व जयपुर राज्य में एम० एल० ए० थे। चौमूँ के आसपास भी छोटे छोटे गॉवों में पर्याप्त खाण्डलविप्र हैं।

गोविन्दगढ़

यहां भी खाण्डलविप्रों के बीस पचीस घर हैं। इसके पास ही धोबोलाई नामक स्थान में खाण्डलविप्रों के पचासों घर हैं। इससे थोड़ी दूर पर नावलाई नामक स्थान में खाण्डलविप्रों के सैंकड़ों घर हैं। इसके अतिरिक्त छोटे छोटे गॉवों में भी खाण्डलविप्र प्रचुर मात्रा में रहते हैं। पूर्व में वैराठ के आगे तक खाण्डलविप्र जाति की बसती है। रींगस से आगे रिवाड़ी की ओर जाने वाली रेल्वे लाइन के पूर्व में अर्थात् जयपुर के पश्चिमोत्तर प्रदेश में खाण्डलविप्रों के हजारों घर हैं। यद्यपि इधर बड़े बड़े कस्बे नहीं हैं परन्तु छोटे छोटे गॉवों में खाण्डलविप्र जाति के घर प्रायः सर्वत्र मिलते हैं।

रींगस

यहां खाण्डलविप्र जाति के लगभग तीस पैंतीस घर हैं। यहां भी कई एक प्रमुख जाति प्रेमी सज्जन निवास करते हैं। रींगस के आसपास खेजड़ोली,

मऊ, मुँडरू आदि स्थानों मे भी खाण्डलविप्र रहते हैं। आसपास के और भी कई एक छोटे छोटे गाँवों मे खण्डेलवाल ब्राह्मण रहते हैं। यहा के प्रमुख कार्यकर्ताओं में पण्डित रामसहायजी जाति के पूर्ण हितैषी हैं।

श्रीमाधोपुर

यह स्थान भी जाति का केन्द्र स्थल है। यहा भी जाति के पचासों घर हैं। यहा के मंदिरों में कई एक अधिपति खाण्डलविप्र हैं। यहा के जातीय सज्जन धीरे धीरे प्रगति कर रहे हैं। आसपास के गाँवों में भी जाति के परिवारों की अच्छी बसती है। यहा श्रीलक्ष्मीनारायणजी महन्त प्रमुख हैं।

पलसाना

यहा खाण्डलविप्रों के चालीस पचास घर हैं। एक निम्बार्क सम्प्रदाय का मंदिर है जिसके अधिपति श्री माधवाचार्यजी महाराज खाण्डलविप्र हैं। यहा महात्मा श्रवणदासजी के वंशज माठोलिया रहते हैं। पलसाना के आसपास लाडपुर, गोविन्दपुरा साँगरवा रानोली आदि स्थानों में भी खाडल विप्र अधिक संख्या मे रहते हैं। पलसाना से उत्तर पूर्व मे खण्डेला के आस पास के छोटे छोटे गाँवों में खाण्डलविप्रों की पर्याप्त बसती है। दक्षिण पश्चिम में जीणमाता और आगे लोसल की ओर भी खाण्डलविप्र प्रचुर मात्रा में हैं।

सीकर

यहा खाण्डलविप्रों के तीस चालीस घर हैं। यहा के लोग अधिकतर साधारण स्तर के हैं। शिक्षा का प्रचार शनै शनै होरहा है। यहा खाण्डल विप्र महन्तों के अधिकार में पाच छै मन्दिर हैं, जिनमें श्रीजानकीवल्लभजी का मन्दिर प्रधान है। श्रीजानकीवल्लभजी के मन्दिर के वर्तमान अधिपति

पचास वर्ष पहले जयपुर में राजवैद्य पण्डित आनन्दीलालजी माठोलिया विशेष ख्याति प्राप्त थे वैसे ही आज आप सीकर में हैं।

सीकर के आस पास के पिपराली, नानी, सिंहोट आदि सभी छोटे छोटे गावों मे खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं।

वर्तमान मे पण्डित रामप्रतापजी वैद्यराज, श्री रामेश्वराचार्यजी महाराज, श्री महन्त महाराज सीवदासजी आदि महानुभाव सीकर में प्रमुख जाति हितैषी हैं। यहा डीडवानियों का समृद्ध परिवार है।

लछमनगढ

यहा खाण्डलविप्रों के सैंकडों घर हैं। यहा श्री रघुनाथजी का मदिर प्रमुख है जिसके वर्तमान अधिपति खाण्डलविप्र हैं। यहा के जातीय रत्न पण्डित कालूरामजी पुरानी तर्ज के खेल लिखते थे। आपकी कविता पर्याप्त प्रभावपूर्ण होती थी। लछमनगढ तहसील में पलथाना, लालासी, धानणी आदि छोटे छोटे गावों में खाण्डलविप्रों के बहुत अधिक घर हैं। वर्तमान में यहा श्रीरामप्रतापजी थाछूनाल, उनके सुपुत्र तथा पण्डित चतुर्थीलालजी वैद्य, पण्डित कृष्णदत्तजी साहित्याचार्य प्रमुख महानुभाव हैं।

फतेहपुर

यहा खाण्डलविप्रों के पौने चारसौ घर हैं। यह नगर शेखावाटी में खाण्डलविप्र जाति का प्रमुख केन्द्र है। यहा के जातीय सज्जन अधिकतर शिक्षित हैं। जाति के प्रति लोगों मे प्रेम की भावना बहुत अधिक है। यहा के लोगो मे पारस्परिक प्रेमभाव भी अच्छा है। यहा गढ का मन्दिर प्रमुख है जिसके वर्तमान अधिपति श्री श्री १००८ श्री अनन्ताचार्यजी महाराज हैं। आप एक प्रगाढ विद्वान् और परम जाति प्रेमी सज्जन हैं। आज फतेहपुर के जातीय सज्जनों मे जो पारस्परिक प्रेम और जागृति दिखाई देती

है उसका बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। आपके तत्त्वावधान में फतेहपुर के जातीय सज्जन 'श्री खाण्डलविप्र सभा' नामक एक जातीय संस्था का संचालन करते हैं। यहां के उत्साही कार्यकर्ता पण्डित गिरधारीलालजी जोशी, एक जातीय शिक्षा संस्था भी चला रहे हैं। फतेहपुर का आदर्श वस्तुतः सभी के लिये अनुकरणीय है। यहां के अनाथालय के भूतपूर्व मैनेजर स्वर्गीय श्री हरचन्दरायजी चोटिया परम जाति हितैषी महानुभाव होगये हैं। आपके प्रयत्न के फल स्वरूप ही फतेहपुर में अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा का सप्तमाधिवेशन हुआ था। यहां के जोशी बन्धु अग्रवाल महाजनों के घरू ब्राह्मण हैं।

फतेहपुर तहसील में भी छोटे छोटे प्रायः सभी गांवों में खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं।

यहां के प्रमुख कार्यकर्ताओं में सर्वश्री वासुदेवजी जोशी, काशीप्रसादजी जोशी, सीतारामजी माटोलिया, प्रह्लादरायजी माटोलिया, द्वारकाधीशजी के मन्दिर के पुजारी स्वर्गीय श्री पूर्णमलजी बोचीवाल के सुपुत्र, केशवदेवजी चोटिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रामगढ़

यहां खाण्डलविप्रों के लगभग अढ़ाई सौ घर हैं। विरतेश्वरी जोशियों को छोड़कर प्रायः सभी साधारण लोग हैं। आयुर्वेद के कवि स्वर्गीय पण्डित जयदेवजी जोशी की जन्मभूमि यहीं है। 'सिद्धभैषज्य मंजूषा" नामक ग्रन्थ का निर्माण इन्हीं पण्डित जयदेवजी जोशी ने किया था। यहां पंडित जुगलकिशोरजी सेवदा जैसे कर्मठ कार्यकर्ता और पण्डित नाथूरामजी बोचीवाल जैसे अवितथ वाणी दैवज्ञ होगये हैं जो आज मर कर भी अमर हैं। रामगढ़ के आसपास के गांवों में खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है। यहां भी विरतेश्वरी जोशियों के पर्याप्त घर हैं। यहां श्री पुरुषोत्तमजी

सेनश, महादेवजी काङ्गाल, महलादजी जोशी, लछमीनारायणजी भाटीवाडा, शिवकुमारजी माटोलिया, गुलराजजी चोचीयाल रामकृष्णजी आयुर्वेदाचार्य, रामकिशोरजी जोशी और पण्डित रामेश्वरजी पीपलवा आदि महानुभाव प्रमुख हैं।

रतननगर

किम्वदन्ती है कि रतननगर की स्थापना महर्षि मंगलदत्तजी की आज्ञा से निमाऊ के नन्दराम नामक वैश्य ने की थी। यहा खाण्डलविप्रों के चालीस पचास घर हैं। महर्षि मंगलदत्तजी महाराज के प्रपौत्र श्री पण्डित विद्याधरजी महाराज यहीं विराजते हैं। यहा महर्षि मंगलदत्तजी की गद्दी मानी जाती है। मंगलदत्तजी महाराज के शिष्यों के दर्शनार्थ प्राय यहा आते रहते हैं। शेखावाटी के सभी चोटिया बन्धु मंगलदत्तजी महाराज की इस गद्दी का समादर करते हैं। यहा के कई एक सज्जन प्रमुख जातीय कार्यकर्ता भी हैं। यहां के लढाणिया बन्धुओं का घराना परम प्रसिद्ध है।

चूरू

यहा खाण्डलविप्रों के लगभग सवा दो सौ घर हैं। यहा पण्डित लक्ष्मीचन्दजी चोटिया जैसे प्रमुख सामाजिक व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने मुनीम का कार्य करते हुए भी सेठ साहूकारों से बढ़कर बुद्धि कौशल्य दिखाया। पण्डित लक्ष्मीचन्दजी चोटिया की बनाई हुई एक धर्मशाला है जो यहा के जातीय महानुभावों के पंचायती कार्यों के लिये नियत है। यहा के जोशी बन्धु जो सुजां रहते हैं उन्होने एक मन्दिर कन्हैयालाल के कुए के पास बनवाया है। यहा के लोग अधिक शिक्षा सम्पन्नता नहीं हैं किन्तु धीरे धीरे जागृति होरही है। नई पीढ़ी में बहुतसे शिक्षित नवयुवक सुयोग्य नागरिकता का परिचय देंगे।

कन्हैयालाल के कुए के पास के मोहल्ले में अधिकतर खाण्डलविप्रों के ही घर हैं। यहां वे इक्कीस हवेलियाँ हैं जो सेठ रुक्मानन्दजी राधाकृष्णजी वागला द्वारा रून्थला बन्धुओं को प्रदान की गई थी। यहां के कई एक घराने विदेशों में व्यापार व्यवशाय के कारण सम्पन्न हैं। यहां भी रहकर काम करने वालों में कतिपय महानुभाव ऊँचे स्तर तक पहुँच गये हैं।

यहां वर्तमान में पण्डित वासुदेवजी जोशी, खेतसीदास कुम्भकर्ण डीडवानिया आदि महानुभाव प्रमुख हैं।

बिसाऊ

यहां खाण्डलविप्रों के सवासौ डेढ़सौ घर हैं। अधिकतर विरतेश्वरी जोशी हैं। मोलमीन (बर्मा) के भूतपूर्व लकड़ी के प्रमुख व्यापारी आनन्दीलाल रामनिरंजन यहीं के रहने वाले हैं। उपरोक्त फार्म के स्वामी भी जोशी हैं। इस फार्म ने व्यापारिक क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त की है, रामगढ़, चूरू और बिसाऊ के आसपास छोटे छोटे गाँवों में भी खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं।

मंडावा

यहां खाण्डलविप्रों के साठ सत्तर घर हैं। यहां शिक्षा का प्रसार अच्छा है। अधिकतर लोग कलकत्ता, बम्बई में रहते हैं। यहां वालों की आर्थिक अवस्था भी ठीक ठीक है। शिक्षा के क्षेत्र में यहां कई एक नवयुवक अच्छे तैयार हुए हैं।

चूड़ी–अजीतगढ़

यहां खाण्डलविप्रों के सवासौ घर हैं। जिनमें सभी चोटिया गोत के हैं। एक या दो घर अन्य गोत वालों के हैं बाकी सभी चोटिया बन्धु

है। वस्तुत चूड़ी चोटिया बन्धुओं का प्रमुख केन्द्र है। चूड़ी–अजीतगढ़ दोनों मिले हुए हैं। यहा के लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। चूड़ी के आस पास के गाँवों में भी प्रचुर परिमाण में खाण्डलविप्रों के घर हैं। यहा के अधिकतर चोटिया बन्धु महर्षि मंगलदत्तजी के परिवार के निकटवर्ती हैं। यहा वर्तमान में पण्डित जयदेवजी, पूर्णानन्दजी, पण्डित विरदीचन्दजी, डा० चिरंजीलालजी, इन्द्रमणिजी साहित्याचार्य आदि चोटिया बन्धु प्रमुख हैं।

मुकुन्दगढ

यहा खाण्डलविप्रों के लगभग चालीस घर हैं। प्राय सभी का स्तर साधारण श्रेणी का है। यहा भी एक मन्दिर के अधिपति खाण्डलविप्र हैं। मुकुन्दगढ के पास ही महर्षि मंगलदत्तजी महाराज की जन्मभूमि गनेड़ी ग्राम है। यहा भी मंगलदत्तजी महाराज के वंशज रहते हैं।

नवलगढ

यहा खाण्डलविप्र बन्धुओं के लगभग अढ़ाईसौ घर हैं। यहा के लोग अधिकतर सम्पन्न हैं। शिक्षा का जाति वालों में अभी तक अधिक प्रसार नहीं है किन्तु आर्थिक समृद्धि में यहा के जातीय महानुभाव अन्य स्थान वालों से अच्छे हैं। यहा भी विरतेश्वरी जोशी हैं। यहा के गोयला बन्धुओं का घराना पर्याप्त शिक्षित और सम्पन्न है। अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा के सभापति भी पण्डित केदारनाथजी गोयला यहीं के रहने वाले हैं। आप पहले आसाम प्रान्त में एम० एल० ए० थे। यहा के पण्डित जनार्दनजी जोशी भूतपूर्व तथाकथित जयपुर राज्य के एम० एल० ए० थे। यहा योगीराज गणेशजी महाराज का जन्म हुआ था। पिछले समय में यहा स्वर्गीय मास्टर भोलारामजी चोटिया प्रसिद्ध व्यक्ति होगये हैं। नवलगढ के नवयुवकों में आज जो जागृति है वह मास्टरजी के ही

अध्यवशाय का फल है। आपने जाति को एक देन देकर आभारी किया था। नवलगढ़ के आसपास के गाँवों में खाण्डलविप्र बन्धुओं की पर्याप्त वसती हैं। नवलगढ़ के निकटवर्ती पालड़ी, पोसाणी और कोलीड़ा नामक गाँवों में खाण्डलविप्रों की अच्छी वसती है। पालड़ी के गोवला बन्धु और कोलीड़ा के चोटिया परम प्रसिद्ध हैं।

नवलगढ़ खाण्डलविप्र जाति का केन्द्रस्थल तो है ही परन्तु साथ ही यह भी ध्यान में रखने की बात है कि नवलगढ़ खाण्डलविप्र जाति का ऐतिहासिक तीर्थ स्थान भी है। महर्षि मंगलदत्तजी का वैकुण्ठ प्रयाण यहीं हुआ था। यहीं महर्षि की समाधि का चबूतरा है।

नवलगढ़ के पूर्व में लोहार्गल तक छोटे छोटे सभी गाँवों में खाण्डलविप्रों के घर मिलते हैं। उत्तर में चिड़ावे तक सभी गाँवों में साधारणतया खाण्डलविप्रों की वसती है। बीच में नृसिंहपुरा, तुआ आदि कई एक स्थान ऐसे भी हैं जहां खाण्डलविप्रों के घर प्रचुर परिमाण में हैं।

वर्तमान में यहां सर्वश्री पण्डित जगन्नाथजी वैद्य, पण्डित द्वारकाप्रसादजी जोशी, महावीरप्रसादजी चोटिया, गिनूरामजी रून्थला कालुरामजी "कौशल" पंडित मदनलालजी जोशी, वासुदेवप्रसादजी चोटिया, केदारनाथजी गोवला, बद्रीप्रसादजी गोवला, रामनिवासजी मंगलिहारा, वंशीधरजी चोटिया, जनार्दनजी जोशी, केशवदेवजी मितर, शंकरलालजी जोशी, नागरमलजी सामरा, सत्यनारायणजी भाटीवाड़ा, मदनलालजी पीपलवा, राधेश्यामजी "कौशल" गुलाबरायजी पीपलवा आदि महानुभाव प्रमुख हैं।

नवलगढ़ से आगे झुञ्झनूं से पूर्व में रेलवे लाइन के निकटवर्ती बगड़ और चिड़ावा में भी खाण्डलविप्रों के कुछ घर हैं। स्थिति सामान्य है। बगड़ और चिड़ावा के आसपास भी खाण्डलविप्रों की साधारण वसतियाँ हैं। इन से दक्षिण में खेतड़ी और उत्तर में राजगढ़ तक पर्याप्त खाण्डलविप्र छोटे छोटे गाँवों में बसे हुए हैं।

सूरजगढ़

यहा खाण्डलविप्रो के चालीस पचास घर हैं। यहा के कुछ सज्जन सामान्यस्तर से ऊपर उठ रहे हैं। पण्डित छाजूरामजी द्वारकाप्रसादजी यहा प्रमुख हैं।

पिलानी

यहा खाण्डलविप्र जाति के साठ सत्तर घर हैं। स्थिति सामान्य है।

सूरजगढ और पिलानी के आसपास के गाँवों में भी खाण्डलविप्रो के पर्याप्त घर हैं। दक्षिण मे खेतड़ी के आस पास भी छोटे छोटे गाँवों में खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर मिलते हैं।

लुहारू

यहा तो खाण्डलविप्रों के अधिक घर नहीं हैं किन्तु लुहारू के आस पास के छोटे छोटे गाँवों में खाण्डलविप्रो के पर्याप्त घर हैं। गाँवो मे कई एक सम्पन्न घराने भी मिलते हैं। लुहारू के आसपास के कतिपय गाँवों मे तो जागृति यहा तक होगई है कि यहा अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा की शाखा सभायें भी हैं।

राजगढ़ (शार्दूलपुर)

यहा भी पचीस तीस घर खाण्डलविप्रों के हैं। स्थिति साधारण है। राजगढ से दक्षिण के छोटे छोटे गाँवों मे खाण्डलविप्रो के घर मिलते हैं किन्तु उत्तर में बहुत कम हैं। राजगढ़ मे उत्तर में केवल नोहर और भादरा म एक एक या दो दो घर हैं। भादरा मे पंडित ज्वालाप्रसादजी का प्रसिद्ध घर हैं। पण्डित ज्वालाप्रसादजी के पुत्र गौरीशंकरजी डाक्टर हैं। इनके छोटे भाई वकील हैं।

हिस्सार

रोहतक जिले में प्रायः सर्वत्र ही खाण्डलविप्र जाति की साधारण बसती है। यद्यपि शेखावाटी के समान इधर अधिक लोग खाण्डलविप्र जाति के नहीं हैं किन्तु फिर भी वहां खाण्डलविप्रों की बसती नगण्य नहीं मानी जा सकती। हिस्सार के आसपास करड़ावण, धानसू, दड़बा आदि स्थानों में खाण्डलविप्रों के घर हैं। खास हिस्सार में खाण्डलविप्रों के पचीस तीस घर हैं। हिस्सार से आगे सरसा में भी खाण्डलविप्रों के घर हैं। वहां कतिपय महानुभाव अच्छे प्रतिष्ठित हैं। सरसा के आसपास के गाँवों में भी खाण्डलविप्र जातीय महानुभावों के घर हैं।

भिवानी

भिवानी में खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं। यहां भी खाण्डलविप्र महासभा का चौथा अधिवेशन हुआ था। भिवानी के पास ही बेरी नामक छोटा-सा गॉव है जहां पण्डित रामदयालुजी ज्योतिषी हुए जिन्होंने पण्डित रामजीलालजी मालोठिया द्वारा संगृहीत खाण्डलविप्र जातीय वंशावली (उत्पत्ति पुस्तक) का भाषानुवाद किया था। भिवानी में पण्डित रामजीदासजी जोशी हुए हैं जिन्होंने पण्डित रामदयालजी द्वारा अनूदित वंशावली को अपने धन से प्रकाशित कर विना मूल्य वितरित की।

रिवाड़ी

भिवानी के बाद रिवाड़ी में खाण्डलविप्रों के घर हैं। यहां के वसीवाल बन्धुओं का घराना प्रसिद्ध है। रिवाड़ी में पण्डित चिरंजीलालजी वसीवाल एक सुयोग्य जातीय महानुभाव होगये हैं जिन्होंने महासभा के दिल्ली में होने वाले तृतीयाधिवेशन की अध्यक्षता की थी। रिवाड़ी के आसपास के छोटे गॉवों में भी खाण्डलविप्र बसते है।

दिल्ली

दिल्ली में भी बीस पचीस घर खाण्डलविप्रों के हैं। यहा भी दो चार घर अच्छे प्रतिष्ठित हैं। यहा पण्डित मनीरामजी एक सुयोग्य जातीय महानुभाव होगये हैं।

वर्तमान मे यहा सर्वश्री मोहनलालजी शास्त्री, बाबू रामचन्द्रजी मगलिहारा तथा उनके सुपुत्र श्री दीनदयालजी, पण्डित हीरालालजी गोचला, पण्डित पूर्णानन्दजी गोचला आदि महानुभाव प्रमुख हैं।

मथुरा

यहा खाण्डलविप्र जाति के घर तो थोड़े हैं परन्तु सभी समृद्ध और प्रतिष्ठित हैं। महासभा के नवमाधिवेशन वासम के सभापति पण्डित सोमदेवजी माठोलिया यहीं के निवासी थे। आज भी उनके वशज यहा रहते हैं। पौराणिकरत्न पण्डित हरिहरजी गोचला यहीं के थे। उनके पौत्र श्री पुरुषोत्तमजी यहीं रहते हैं। पण्डित श्री नारायणजीदेव "कौशिक" यहीं रहते हैं जिन्होंने पहले "खाण्डलविप्र हितैषी" का सम्पादन किया था।

हाथरस

यहा स्थायी रूप से बसने वाले खाण्डलविप्र बन्धु तो बहुत कम हैं। फिर भी यहा बसने वाले तीस पैंतीस घर पर्याप्त प्रगतिशील हैं। यहा पण्डित हरीनारायणजी पीपलवा वैद्यराज (चौमूं) प्रमुख हैं। आपके तत्त्वावधान मे यहा महासभा की शाखा सभा अच्छा कार्य कर रही है।

जिस प्रकार उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में आधुनिकयुग मे अनेक महानुभाव प्रमुख हैं वैसे ही मालवा और दक्षिण भारत के विभिन्न नगरों में भी अनेक महानुभाव प्रमुख हैं। मालवा के प्रमुख नगर उज्जैन तथा इन्दौर में खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है। उज्जैन मे वर्तमान मे सर्व

श्री शंकरलालजी बुढ़ाढ़रा, लादुरामजी जोशी, कन्हैयालालजी परवाल, शिवदयालजी डुगोलिया आदि महानुभाव प्रमुख हैं। इसी प्रकार इन्दौर में सर्वश्री नथमलजी काछ्वाल, परशुरामजी रुन्थला हरीशंकरजी सुंगिया आदि महानुभाव प्रमुख हैं। पण्डित नथमलजी काछ्वाल साँभर के निकटवर्ती त्योद नामक स्थान के रहने वाले हैं। आपके पूर्वज धुलिया (खानदेश) में जा बसे थे। आपने इन्दौर में वस्त्र-व्यवसाय करते हुए अनन्त सम्पत्ति अर्जित की है।

इन्दौर से आगे दक्षिण भारत में खण्डवा और उसके आस पास के अन्य स्थानों में पर्याप्त खाण्डलविप्र हैं जिनका परिचय महासभा के आठवें तथा नवें अधिवेशन के विवरण में आया है।

दक्षिण भारत के प्रमुख नगर पूना शोलापुर और हैदराबाद राज्य के प्रमुख व्यक्तियों का नामनिर्देश भी उपयुक्त होगा। पूना में पर्याप्त खाण्डलविप्र हैं जिनमें पण्डित जुगलकिशोरजी खण्डेलवाल प्रमुख हैं। आप परम जाति प्रेमी हैं। शोलापुर में बद्रीनारायण रामकरण, भैरूंबक्सजी जोशी आदि महानुभाव प्रमुख हैं।

हैदराबाद राज्य के निकटवर्ती बरार और उड़ीसा में भी खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है। बरार के पूसद नामक स्थान में पण्डित माँगीलालजी काछ्वाल वर्तमानयुग में जाति के परम प्रसिद्ध महानुभाव हैं। आपने जाति सेवा के लिये अत्यधिक त्याग किया। वासम नान्देड़ हिंगोली, परभणी आदि स्थानों के महानुभावों का नाम निर्देश ऊपर हो चुका है।

परभणी में पण्डित तुलसीदत्तजी झुंझुनादा व्यास जाति के प्रसिद्ध महानुभाव हैं। आप जाति के वयोवृद्ध नेता धर्मभूषण पण्डित माँगीलालजी नवहाल के सहयोगी हैं। आपने "विजयमाला" नामक पुस्तिका में महासभा का तिथिपत्र लिखा है जो सुललित पद्यों में है। आप एक प्रसिद्ध दैवज्ञ हैं। दक्षिण भारत में आपकी स्थिति एक जातीय नेता से कम नहीं है।

अमरावती मे पण्डित सत्यनारायणजी का नाम उल्लेखनीय है। आप भी जाति प्रेमी और अच्छे साहित्यिक है। आपके लेख व कवितायें बन्धु मे प्रकाशित होती ही रहती हैं।

वर्धा में पण्डित केसरीमलजी रुन्थला का नाम उल्लेखनीय है। आपने अपना जीवन केवल जाति सेवा करके ही सन्तोष किया तो कोई बात नहीं अपितु वर्धा स्थित, "सेकसरिया कमर्शियल कालेज" को भवननिर्माण के लिये बिना मूल्य जमीन प्रदान कर राष्ट्र के इतिहास को भी प्रभावित किया है। आपके दो बगले वर्धा मे हैं जिनका साठ रुपया माहवार का किराया महासभा के छात्रवृत्ति फण्ड में जाता है। आज के युग में जाति और राष्ट्र के लिये त्याग करने वालों मे पण्डित केसरीमलजी का नाम सर्वोपरि रहेगा।

हाड़ोती प्रदेश में खाण्डलविप्र जाति की अधिकतर बसती गाँवों मे है। यहा के लोग भी मेवाड वालों के समान अन्न से सम्पन्न हैं। प्राय कृषि कार्य करते हैं। शिक्षा बहुत कम है। फिर भी लोग समय की माग के अनुसार शिक्षा का महत्व समझ रहे हैं। हाड़ोती मे पण्डित रामनारायणजी मागरोल पण्डित चतुर्भुजजी बी० ए० अयन्ना तथा व्रजमोहनजी प्रमुख महानुभाव हैं।

मालवा में खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है। इन्दौर, उज्जैन, बड़गाव, मन्दसोर जावद, नीमच और खेड़ा आदि स्थानों में खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर है। उज्जैन इन्दौर आदि केन्द्र स्थानों के चारो ओर के छोटे गाँवों में भी खाण्डलविप्रों के पर्याप्त घर हैं। ग्वालियर के आसपास भी छोटे गावों मे खाण्डलविप्रों के घर हैं। ग्वालियर के आसपास के गाँवों में अधिकतर श्रोत्रियों के ही घर मिलेंगे। मालवा के प्रसिद्ध नगर नीमच मे पण्डित सुन्दरदत्तजी श्रोत्रिय रहते हैं जो खाण्डलविप्र जाति मे एक सुयोग्य विद्वान् और व्याख्याता हैं। पण्डित सुन्दरदत्तजी सोति खण्डेलवाल वैश्य महासभा के उपदेशक हैं। वैसे देखा जाय तो मालवा भी खाण्डलविप्र जाति

का केन्द्र है। क्योंकि इन्दौर, उज्जैन आदि स्थानों में जाति के घर पर्याप्त संख्या में हैं। उपर्युक्त स्थानों के खाण्डलविप्रों की संख्या पर्याप्त है और वे पर्याप्त जागृतिशील हैं।

खान देश और हैदराबाद राज्य के विषय में हम ऊपर लिख आये हैं। वहां भी खाण्डलविप्र जाति की पर्याप्त बसती है।

तात्पर्य यह है कि खाण्डलविप्र जाति समस्त भारत में फैली हुई है और उसका जीवन दिनों दिन प्रगतिशील होता जारहा है जिससे यह आशा की जा रही है कि यह जाति निकट भविष्य में ही जीवन के सभी क्षेत्रों में आशातीत उन्नति कर अपने महत्व का परिचय देगी।

हमने खाण्डलविप्र जाति के उपर्युक्त परिचय प्रकरण में कलकत्ता और बम्बई स्थित खाण्डलविप्रों के लिये कुछ भी नहीं लिखा है। इसका प्रधान कारण यह है कि वहां स्थायी निवास तो किसी का है नहीं, केवल व्यापार व्यवसाय और नौकरी आदि करने के लिये लोग वहां जाते हैं जो अस्थायी रूप से वहां रहकर साल दो साल बाद अपने देश लौट जाते हैं किन्तु वहां के खाण्डलविप्रों के विषय में भी यहां कुछ उल्लेख होना आवश्यक है। कलकत्ता और बम्बई दोनों ही नगरों में अखिल भारतवर्षीय खांडलविप्र महासभा की शाखायें हैं जो वहां के जातीय सज्जनों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अधिकतर इन बड़े नगरों में शिक्षित लोग ही रहते हैं जो सामयिक मांग के अनुसार जातीय संगठन बनाये रखते हैं। कलकत्ता, बम्बई में अधिकतर शेखावाटी और उसके उत्तर पश्चिमी प्रदेश में रहने वाले लोग रहते हैं।

संक्षिप्त रूप से खाण्डलविप्र जाति के इस परिचय से उसकी भौगोलिक परिस्थिति का ज्ञान होता है। सामाजिक जीवन के विषय में मोटे रूप से तो यह समझ लेने की आवश्यकता है कि इस जाति का सामाजिक जीवन भी राजस्थान की अन्य ब्राह्मण जातियों के समान ही है। फिर भी इस

जाति के सामाजिक जीवन में कुछ विशेषतायें हैं जो इतिहास मे उल्लेख योग्य हैं।

यद्यपि अभी इस जाति का साधारण समुदाय शिक्षा के क्षेत्र मे विशेष प्रगतिशील नहीं है किन्तु परम्परागत सस्कार कुछ ऐसे हैं जो जाति के जीवन को विशेष रूप से प्रस्फुरित करते हैं। देखने मे आता है कि खाण्डलविप्र जाति का अधिकाश जनसमुदाय स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका उपार्जन करने मे गौरव का अनुभव करता है। इसीलिये इस जाति में कृषि करने वाले अधिक हैं। उन कृषकों के जीवन का भी एक स्तर विशेष है। कृषि कार्य करते हुए भी खाण्डलविप्र जाति के लोग अपने मे ऋषि रक्त का प्रवाह अनुभव करते हुए यह सोचते हैं कि 'भृत्यवृत्ति हमारे लिये गर्हित है।' उनकी यह भावना ही उन्हें सच्चे ऋषि आदर्श के निकट पहुँचाती है। राजस्थान मे कतिपय ब्राह्मण जातिया ऐसी हैं जो कृषि कार्य को हेय समझती हैं किन्तु उन्हें यह न भूलना चाहिये कि आर्य जाति और विशेषकर ब्राह्मण जाति के पूर्वज ऋषि महर्षियों ने इस कृषि प्रधान देश मे कृषि का महत्व समझा था और अपने उस महत्वपूर्ण ज्ञानजन्य अनुभव को कार्य रूप में परिणत किया था। अर्थात् सबसे पहले ऋषियों ने ही कृषि का महत्व समझकर उसका आविष्कार किया था। समय पाकर सामाजिक आवश्यकतानुसार यदि ऋषि समुदाय से कृषि कार्य करने की प्रणाली उठ गई हो तो दूसरी बात है। अत यह ध्यान मे रखते हुए खाण्डलविप्र जाति को भी यह समझलेना उपयुक्त होगा कि जाति का अधिकाश मानवसमुदाय जो कृषि कार्य करता है वह किसी प्रकार भी हेय नहीं है अपितु खाण्डलविप्र जाति को इस बात का गौरव होना चाहिये उसका अधिकाश जनसमुदाय स्वतन्त्रता पूर्वक परिश्रम कर अपनी जीविकोपार्जन करता है। आज के इस युग में तो स्वावलम्बन का महत्व और भी अधिक समझा जाता है। ऐसी स्थिति में इस जाति के लोगों को अपने अपने स्वतन्त्र उद्योग धधों मे रुचि रखनी चाहिये और उन्हें

आधुनिकता के आधार पर समुन्नत करने की ओर कदम बढ़ाना चाहिये।

स्वावलम्बन का महत्व समझकर यदि कृषि कार्य में प्रगति की जाय तो यह एक गौरव की वस्तु होगी। यद्यपि खाण्डलविप्र जाति के लोग भी नौकरी का व्यवसाय करते हैं परन्तु उनकी संख्या नगण्य है। शिक्षित वर्ग में भी अधिकतर स्वावलम्बी ही अधिक मिलेंगे। जैसे वैद्य व्यवसायी और व्यापारादि कार्य करने वाले। खाण्डलविप्र जाति के शिक्षितों में अधिकतर चिकित्सक मिलते हैं जिनमे अधिकांश अपने स्वतंत्र व्यवसाय द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़कर स्वावलम्बी बनना आज के युग में विशेष महत्व रखता है क्योंकि उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज शासकों ने भारतियों को एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करा दिया था जो वस्तुतः घातक था। अंग्रेजों ने शिक्षितों को नौकरियों का लालच देकर स्वावलम्बन का आश्रय छुड़ाया और देश के स्वाभिमान को कुचल दिया। अंग्रेजी शासनकाल की यह भावना अभितक विद्यमान है। आज के भारतीय शिक्षित भी शिक्षा की परिभाषा केवल नौकरी तक ही सीमित रखते हैं। जहां शिक्षा अर्थ ज्ञानप्राप्ति समझा जाता था वहां अब केवल शिक्षा नौकरी प्राप्ति के लिये ही ग्रहण की जाती है। आज के अधिकतर भारतीय छात्र उच्च शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य अच्छी नौकरी पाना ही रखते हैं। जनसाधारण की यह भावना जाति समाज और राष्ट्र सभी के लिये अहितकर है। अंग्रेज़ों ने जिस विष वृक्ष का बीजारोपण किया था उसका विनाश एक साथ होना कठिन है। संभवतः समय पाकर यह घातक भावना देश से दूर हो जाय।

हर्ष की बात है कि खाण्डलविप्र जाति के जनसाधारण ने पिछले प्रलोभन में पड़कर अपने उद्देश्य और लक्ष्य को नहीं छोड़ा। खाण्डलविप्र जाति में भी समयानुसार शिक्षा का प्रसार हुआ और लोगों ने नवयुग को देखा और समझा। फिर भी वे किसी प्रवाह में न बहे। उन्नीसवीं सदी में खाण्डलविप्र

जाति के जिन परिवारों ने उन्नति की उनमें अधिकतर वाणिज्य व्यवसायी ही मिलेंगे।

जो साधारण परिवार आर्थिक विषमताओं में से निकले उन्होंने भी स्वावलम्बन को ही प्रधानता दी। आज भी अधिकतर सम्पन्न परिवार स्वावलम्बी ही मिलेंगे। इस स्वावलम्बन का ही यह परिणाम है कि इस भ्रष्ट युग में भी खाण्डलविप्र जाति का नैतिक पतन बहुत कम अंश में हुआ है। वैसे तो समयानुसार प्रायः सभी जातियों में नैतिकता का स्तर गिरा है किंतु खाण्डलविप्र जाति बहुत कुछ बची हुई है। अब यदि सामयिक माग के अनुसार भावी संतान का शिक्षण किया जाय तो भविष्यत् में भी जाति के नैतिक स्तर के गिरने की संभावना नहीं है।

इसके अतिरिक्त खाण्डलविप्र जाति के मानवसमुदाय के स्वावलम्बन का प्रधान आधार बोहरावृत्ति है। खाण्डलविप्र जाति में लगभग अस्सी प्रतिशत लोग बोहरावृत्ति से अपना जीवन यापन करते हैं। बोहरावृत्ति द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले लोगों के घरों में यह व्यवसाय अधिकतर परम्परागत है। अतः प्रायः बहुत-से युवक अन्य व्यवसायों की ओर न झुककर अपने घरेलू व्यवसाय में ही लगे रहते हैं। यही दशा प्रायः कृषि करने वाले परिवारों की है। कृषि करने वालों की सन्तानें भी कृषि की ओर ही प्रगति करती है।

तात्पर्य यह है कि खाण्डलविप्र जाति में वर्तमानकाल तक तो वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक समुन्नति की ओर अग्रसर होने वाली जाति में होने चाहिये। यद्यपि उन्नति के दृष्टिकोण से जाति की वर्तमान अवस्था को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता किन्तु खाण्डलविप्र जाति का भविष्य सभी प्रकार से समुज्ज्वल है। समय और साधनों का सयोग उपयुक्त दिखाई देता है जिससे यह आशा पूर्ण रूप से की जा सकती है कि खाण्डलविप्रजाति की अगली पीढी आज से बहुत कुछ समुन्नत अवस्था को पहुँच जायगी।

इसके साथ साथ हमें यह न भूलना चाहिये कि खाण्डलविप्र जाति के अतीत में सामाजिक जीवन के जो आधार थे वे परम्पराओं के रूप में थे और उन्हीं के बल पर जातीय शासन चलता आरहा था। प्राचीनकाल से चली आ रही परम्परागत सामाजिक संस्थाओं में पंचायत का प्रमुख स्थान है किन्तु आज सामयिक परिवर्तन के कारण पंचायती संस्था समाप्तप्राय है। पंचायतों का महत्व गिर अवश्य गया है, फिर भी उनकी थोड़ी बहुत सत्ता देहातों में पाई जाती है। जाति में पंचायत संस्था की आवश्यकता का अनुभव उन पूर्वजों ने किया था जो हमसे विशेष दूरदर्शी थे। आज पंचायती संस्था का विरोध प्रायः सर्वत्र होरहा है किन्तु यह भी समझ का फेर है। एक ओर जहां राष्ट्रीय प्रजातंत्रीय सरकार पंचायतों का संशोधित रूप "स्वायत्त शासन मंडलों" के रूप में जनसाधारण के सामने रखती जारही है वहां उसी "स्वायत्त शासन मंडल" के पूर्वरूप पंचायत का विरोध हो, इसे सिवा समझ के फेर के और कुछ नहीं कहा जासकता। सामाजिक जीवन में संगठन और पारस्परिक सहयोग की भावनाओं को आगे बढ़ाने के लिये यह परमावश्यक है कि जातियां अपने संगठनों की प्रधान संस्थाओं-पुरानी पंचायतों को आधुनिक रूप में फिर से चालू करें। आज की पंचायतें पिछले पांचसौ वर्ष पुरानी स्वार्थमय संस्थायें न होकर आज से दो हजार वर्ष पुरानी जन सेविका पंचायत संस्थायें होनी चाहियें जिनसे जातियों को आगे बढ़ने में प्रोत्साहन मिलता था और जो सही रूप में अपने अपने वर्ग का पथ प्रदर्शन करती हुई राष्ट्र को बल प्रदान करती थी।

खाण्डलविप्र जाति और उसकी पंचायती संस्थायें भी राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का पालन उसी रूप में कर सकती हैं। वर्गगत जातियां पहले के समान ही राष्ट्र की निधि होकर अपने अपने संगठनों द्वारा राष्ट्र को बल प्रदान करें तो कोई आश्चर्य नहीं कि देश अत्यल्प काल में ही समुन्नत होकर प्रजातंत्रीय देशों के लिये एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।

खाण्डलविप्रजाति भी अपने कर्तव्य का पालन इसी प्रकार कर सकती है। पचायतों द्वारा वह अपने संगठन को दृढ कर अपना स्थान समाज में सुरक्षित रखकर समय पर राष्ट्र के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से निभा सकती है।

अन्त में हम जातीयता के प्रति निराश महानुभावों को यह बतला देना उपयुक्त समझते हैं, जिनका दृष्टि कोण यह है कि–"अब जातीयता के नष्ट होने का युग आगया है" उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि अगली पीढिया जिस समाज का निर्माण करेंगी वह समाज वर्ग हीन होते हुए भी जातीयता के सिद्धान्तों पर ही निर्भर रहेगा और उसका आधार जातीयता ही होगा, भले ही उसमें जन्मजात जातीयता की प्रधानता न हो पर कर्म प्रधान जातीयता अवश्य रहेगी। जातीयता मिट नहीं सकती। भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र का यह सिद्धान्त अटल रहेगा कि —

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

गीता

समय की माग यह होती जारही है कि हम जन्मजात जातीयता को न अपना सकें तो कर्म प्रधान जातीयता को अपनायें। दोनों मे से एक प्रकार की जातीयता प्रत्येक मानव समुदाय के साथ रहेगी। ऐसी स्थिति मे अपने अपने समूहों अर्थात् जन्मजात जातियों के संगठनों को सुदृढ बनाते हुए उन्हें सामयिक बनालिया जाय तो क्या आपत्ति है! खाण्डलविप्र जाति मे आज उन्नति की जो अपेक्षा है वह भी बहुत कुछ अंश मे इसी भारी परिवर्तन पर निर्भर करती है।

पूर्व मे जन्मजात जातीयता का समर्थन कर अब कर्म प्रधान जातीयता का पक्ष समर्थन करने का तात्पर्य यह है कि हमें अपने कर्तव्यों को न भुला देना चाहिये। ब्राह्मणोचित कर्मों में सजग रहकर यदि ब्राह्मण जातिया आगे बढ़ेंगी तो उनका स्वरूप पूर्ववत् ही स्थिर रह सकेगा। कर्म प्रधान वर्ण माने

गये हैं। वर्णों का रूढ़ रूप ही जन्मजात जातीयता है। इस दृष्टिकोण से जन्मजात और कर्म प्रधान में कोई अन्तर नहीं है।

यद्यपि आज जन्मजात जातीयता के सिद्धान्तों पर कुठाराघात अवश्य हो रहे हैं और इसीलिये हम कर्मजात जातीयता के प्रति उदार रहें, यह समय की मांग है। प्राचीन परम्परा और रूढ़ संस्कारों के प्राबल्य को देखते हुए कम-से-कम भारत में तो अभी कई सदियों तक इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि-'भारतीय समाज या भारतीय जातियां अपने जीवन में अथवा समाज में कोई युगान्तकारी परिवर्तन करेंगी। शासनसत्ता भले ही अपने बल पर कुछ करने की चेष्टा करे परन्तु उसमें कोई स्थायित्व न होगा। फिर भी उचित यह है कि हम अपने जातीय समुदाय को समुन्नत कर आगे बढ़ाते हुए सामयिक परिवर्तनानुसार अपने में परिवर्तन करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करें।

हमारे पूर्वजों ने भी समय समय पर परिवर्तनों को अपनाया था। यही कारण था कि हमारे पूर्वज उत्तरोत्तर विकासशील रहे। जब से परिवर्तन के प्राकृतिक सिद्धान्त को भूलकर अन्ध परम्परा के साथ साथ रूढ़ी वादिता का समावेश आर्य हिन्दू समाज में हुआ तभी से उसकी अवनति का इतिहास प्रारंभ होता है। यदि आज भी हम उस पूर्वकालीन भूल का परि-मार्जन कर सकें तो हमारा आज का यह कदम उपयुक्त होगा और हम अपने जीवन में पर्याप्त आगे बढ़ सकेंगे।

हमने इस ग्रन्थ के प्रारंभ में ही जातीयता का पक्ष समर्थन किया है। वहां हमने जन्मजात जातीयता को रूढ़ मानते हुए भी उसे वर्ग प्रधान माना है। यहां हम जन्मजात जातीयता के साथ साथ कर्म प्रधान जातीयता का भी समर्थन इसलिये करते हैं कि सभी समाज सामयिक परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तन की अपेक्षा रखते हैं। हमारे पूर्वजों में यह विशेषता थी कि वे सामायिक परिवर्तनों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करते हुए

भी अपनी दूरदर्शिता के बल पर अपने सिद्धान्तों मे प्रौढता रखते थे। यही कारण है कि जन्मजात जातीयता के सिद्धान्त भी इतने प्रौढ हैं कि उनका अस्तित्व विना किसी युगान्तकारी परिवर्तन के नहीं मिट सकता। ऐसी स्थिति मे कोई भी समझदार व्यक्ति एकबारगी ही ऐसा नहीं कह सकता कि हमारे समाज अथवा जातियों के प्रचलित सिद्धान्त यों ही हवा मे उड जायेंगे। उनके आधार अत्यधिक सुदृढ । उनको पलटकर उनके स्थान पर नये सिद्धान्तों की स्थापना करना सरल काम नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रचलित सिद्धान्तों के आधार पर अपने अपने जातीय मानव समुदायों को समुन्नत करते हुए देश को समुन्नत करने मे सहयोग देना और समाज को आगे बढाना युक्तिसगत है।

खाण्डलविप्र जाति भी अपनी वर्तमान पीढी से यही आशा किये हुए है। और आशा भी ऐसी ही है कि आज का खाण्डलविप्र जातीय समाज पूर्वापर के साथ साथ सामयिक प्रवाह के अनुसार अपने जीवन में आवश्यक सुधार करते हुए आगे बढेगा।

"परशुराम ने अपने पितामह महर्षि ऋचीक की आज्ञा से लोहार्गल में यज्ञ किया। उस यज्ञ में विश्वामित्र के मधुच्छन्दादि पचास पुत्र ऋत्विक् हुए। यज्ञ समाप्त होने पर उन ऋत्विजों को वेदी के खण्ड खण्ड कर एक एक सब को दिया गया, जिससे उनका नाम खण्डल पड़ गया। जैसाकि— "खण्डं लाति गृह्णाति इति खण्डलः। कालान्तर में यह खण्डल खाण्डल अथवा खण्डेलवाल के रूप में परिवर्तित हुआ।

उपर्युक्त वेदी के खण्डों को खरीदने वाला शुनःशेप का वंशज कोई वैश्य था। इसलिये उस वैश्य का नाम भी खण्डल हुआ। यह कथा स्कन्द-पुराण के आवन्त्य खण्ड की ३५ से ४० तक की अध्यायों में और श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्द की सोलहवीं अध्याय में मिलती है।

इसके अतिरिक्त मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषियों की उत्पत्ति स्थिति का उल्लेख महाभारत, शतपथ ब्राह्मण, विमल संहिता, तैत्तरेयारण्यक, ऐतरेयारण्यक, देवी भागवत और पद्म पुराण आदि में भी है किन्तु स्कन्द पुराणोक्त रेवा खण्डान्तर्गत महेन्द्राचल महात्म्य के प्रकरण में इन ऋषियों की कथा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। स्कन्द पुराणान्तर्गत इस कथाभाग को खाण्डल-विप्र जाति की उत्पत्ति पुस्तक अथवा वंशावली माना जाता है। वैसे तो यह उत्पत्ति पुस्तक "वंशावली" स्कन्द पुराणान्तर्गत आवन्त्य खण्ड (रेवा-खण्ड) में महेन्द्रगिरि महात्म्य प्रकरण की ३५ से ४० तक की अध्यायों में संगृहीत है। फिर भी यहां यह लिखदेना उपयुक्त होगा कि खण्डलोत्पत्ति नामक पुस्तक का स्वतंत्र अस्तित्व भी है। "वंशावली के नाम से प्रसिद्ध इस खण्डलोत्पत्ति नामक पुस्तक का उल्लेख स्कन्द महापुराण की अनुक्रमणिका में मिलता है। बंगला विश्वकोष में इसके स्वतंत्र अस्तित्व का उल्लेख है। प्रचलित "वंशावली" भी खण्डलोत्पत्ति के नाम से ही प्रसिद्ध है। जो

पुस्तक हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुई हैं उनमें भी इस "वंशावली" का नाम खण्डलोत्पत्ति या खाण्डलोत्पत्ति अथवा खण्डेलवाल ब्राह्मणों की उत्पत्ति ही मिलता है।

इस "वंशावली" का सर्वप्रथम प्रकाशन पण्डित रामजीलालजी माटोलिया कोटकपूरा निवासी ने करवाया था। उसमें क्रमश सम्पूर्ण पुस्तक न थी। आज तक सम्पूर्ण खण्डलोत्पत्ति अर्थात् "वंशावली" कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई। प्रामाणिक गवेषणा के साथ यहा उसका उल्लेख उपयुक्त होगा।

यहा यह लिखना अनुचित न होगा कि स्वतन्त्र रूप से प्रचलित खण्डलोत्पत्ति पुस्तक आज स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड (आवन्त्य खण्ड) में ही उपलब्ध है। आज कल जो खण्डलोत्पत्ति नाम से उपलब्ध पुस्तिका है और जिसे पिछले लेखकों ने "वंशावली" का रूप दिया है वह भी रेवाखण्ड का आश्रय लिये हुए है। अत रेवाखण्डोक्त छै अध्यायों के रूप में ही उसका उल्लेख उपयुक्त होगा।

खण्डलोत्पत्ति

स्कन्दपुराणे रेवा (आवन्त्य) खण्डान्तर्गतमहेन्द्राचलमहात्म्ये
पञ्चत्रिंशोऽध्याय

गौरमुख उवाच—

मुने! त्वत्त श्रुत सर्वमृषीणा धर्मशालीनाम्।
धर्मं भगवदासक्ति सर्वेषा प्रीतिमद्भुतम् ॥ १ ॥

मुने! मैंने आपसे धर्मशील ऋषियों का धर्म और भगवान में आसक्ति उत्पन्न करने वाला, प्रीतिकर उनका अद्‌भुत चरित्र श्रवण किया ॥ १ ॥

कथं वैरमभूद्‌ब्रह्मन्! विश्वामित्रवसिष्ठयो।
तदह श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदाम्वर ॥ २ ॥

ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षे ! विश्वामित्र और वसिष्ठ का वैर कैसे हुआ ! यह मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

देवल उवाच--

इदमेव महाभाग ! पृष्टो देव्या महेश्वरः ।
तदहं तेऽभिधास्यामि यदुक्तं प्रभुणा शिवाम् ॥ ३ ॥

महाभाग ! देवी पार्वती ने भी महेश्वर शङ्कर से यही प्रश्न किया था । भगवान शङ्कर ने देवी पार्वती को जो कुछ कहा था वही मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३ ॥

एकदा पार्वती देवी महेशं कृपयान्वितम् ।
पप्रच्छ परया भक्त्या देवदेवमथाव्ययम् ॥ ४ ॥

एक वार देवी पार्वती ने देवाधिदेव, अव्यय, कृपासागर महादेव से परमभक्ति पूर्वक पूछा ॥ ४ ॥

पार्वत्युवाच—

देवदेवमहादेव सर्वज्ञ जगदीश्वर ।
भवतः श्रोतुमिच्छामि विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ ५ ॥
कस्माद्धेतोर्महायुद्धं महतोस्तपनिष्ठयोः ।
बभूव धर्मपरयोस्तत्सर्वं वद तत्त्वतः ॥ ६ ॥

सर्वज्ञ जगदीश्वर देवाधिदेव महादेव ! महान् तपस्वी और धर्मपरायण विश्वामित्र और वसिष्ठ में महायुद्ध क्योंकर हुआ ! यह मैं आपसे सुनना चाहती हूँ, आप मुझे यह भली प्रकार बतलाइये ॥ ५ ॥ ६ ॥

देवल उवाच—

एवं देव्याः वचः श्रुत्वा जगाद जगदीश्वरः ।
यथाभूतं च तत्सर्वं शृणु त्वं विप्रसत्तम ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण ! इस प्रकार देवी पार्वती का वचन सुनकर जगदीश्वर शङ्कर ने जो कथा उसे सुनाई वह यथाभूत कथा तुम भी सुनो ॥ ७ ॥

महादेव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तयोर्युद्धस्य कारणम् ।
विश्वामित्रोथ राजर्षि संजात कुशिकान्वये ॥ ८ ॥
ऋचीकवरतो देवि ! महदूर्जो बभूव ह ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठो महामति ॥ ९ ॥

देवि ! विश्वामित्र और वसिष्ठ के युद्ध का कारण बतलाऊँगा । सुनो । राजर्षि विश्वामित्र कुशिक के वंश में उत्पन्न हुये थे ॥ ८ ॥

देवि ! वे ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ और महा बुद्धिमान विश्वामित्र ऋषि ऋचीक के वरदान से अत्यधिक उर्ज्जस्वल हुए ॥ ९ ॥

(विश्वामित्र को यहा राजर्षि और कुशिक वंशज माना है । इसका पूर्ण विवेचन "विश्वामित्र के प्रकरण में" यथास्थान कर दिया गया है । यह कथाभाग ज्यों के त्यों ही रक्खा गया है किन्तु इस कथाभाग में जो सन्देहास्पद स्थल हैं उनका समीक्षात्मक विवेचन तत्तत्स्थलों पर कर स्पष्टीकरण कर दिया गया है ।)

वसिष्ठस्याश्रमं देवि ! जगाम क्वचिदाप्लुत ।
नत्वा वसिष्ठ ब्रह्मर्षि पृष्ट सर्वमनामयम् ॥ १० ॥
सर्वं ममास्ति कुशलं राजर्षे ! तव प्रश्नत ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेर्नृपसत्तम ॥ ११ ॥
तूष्णीं प्रत्युजगामासौ स्वाश्रमं कुपिताशय ।
तपश्चकार मतिमान् ब्रह्मर्षित्वमुपेयितुम् ॥ १२ ॥

देवि ! किसी समय विश्वामित्र वसिष्ठ के आश्रम में गये । उन्होंने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को नमस्कार कर कुशल प्रश्न पूछा ।

उत्तर में वसिष्ठ ने कहा— राजर्षे आपके प्रश्नानुसार मैं सब प्रकार से कुशल हूँ । वसिष्ठ के " राजर्षि " सम्बोधन को सुनकर नृपश्रेष्ठ विश्वामित्र सक्षोभ चुपचाप अपने आश्रम में चले गये और ब्रह्मर्षित्व प्राप्त करने के लिये

तपस्या करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

तपः सम्पन्न एवासौ पुनस्तत्र गतः सुधीः ।
दृष्ट्वा ब्रह्मर्षिमुख्यस्तमुवाच समुपस्थितम् ॥ १३ ॥

तप से सम्पन्न होकर विश्वामित्र फिर वसिष्ठ के आश्रम में गये । ब्रह्मर्षि मुख्य वसिष्ठ ने विश्वामित्र को उपस्थित देखकर कहा ॥१३॥

राजर्षे ! कुशलं ब्रूहि तपोनिष्ठस्य मानसम् ।
श्रुत्वोवाचाथ ब्रह्मर्षेः राजर्षिप्रवरो वचः ॥ १३ ॥

राजर्षे ! कहिये, आपका तपोनिष्ठ मन सकुशल है ! ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का यह वचन सुनकर राजर्षि विश्वामित्र ने कहा ॥ १४ ॥

भगवन् विप्रस्य भूपस्य को भेदो ब्रह्मजन्मनोः ।
तच्छ्रुत्वा प्राह ब्रह्मर्षिः राजर्षिं प्रति सादरम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मन् ! ब्रह्म से उत्पन्न ब्राह्मण और क्षत्रिय में क्या भेद है ! यह सुनकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने राजर्षि विश्वामित्र से सादर कहा— ॥ १५ ॥

ब्राह्मणो मुखतो जज्ञे विराजो भुजतो नृप !
अतो भेदो महानासीद् ब्राह्मणस्य नृपस्य च ॥ १६ ॥

ब्राह्मण मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुआ है, अतः ब्राह्मण और क्षत्रिय में महान् भेद हुआ था और है ॥ १६ ॥

विश्वामित्रस्ततः प्राहः श्रुत्वा तन्महर्षेर्वचः ।
ब्रह्मन्नेतच्छ्रुतं पूर्वैः सर्वे शूद्राः जनाः स्मृताः ॥ १७ ॥

महर्षि वसिष्ठ के उपर्युक्त वचन को सुनकर विश्वामित्र ने फिर कहा— ब्रह्मन् ! हमने पूर्वजों से सुना है कि पहिले सभी लोग शूद्र थे ॥ १७ ॥

संस्था द्विजातितां यान्ति विप्राः स्युर्वेदधारणात् ।
ब्राह्मणाः ब्रह्मतत्त्वज्ञा एवमुचुश्च पूर्वजाः ॥ १८ ॥

" संस्कृति और समाज द्वारा संस्थापित सांस्कारिक संस्था द्वारा मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता है । वेद धारण करने वाले मनुष्य विप्र कहलाते हैं

और ब्रह्मतत्त्व को जानने के कारण ब्राह्मण कहलाते हैं" ऐसा पूर्वज कह गये हैं ॥ १८ ॥

तस्मान्न ब्राह्मणो जातो जन्मना ब्रह्मवित्तम ।
अतश्चनावयोर्भेद कुतो गर्वस्तवापि हि ॥ १९ ॥

इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण जन्म से ही ब्रह्मवेत्ता उत्पन्न नहीं हुए। इसीलिये तुम में और मुझ में कोई भेद नहीं है। तुम्हें ही यह गर्व कहा से हुआ ॥ १९ ॥

महादेव उवाच—

इति तस्य वच श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तम. ।
वसिष्ठ कुपित दृष्ट्वा विश्वामित्रो महामति ॥ २० ॥
तूष्णीं समुत्थितस्तस्मात्स्वाश्रमं प्रत्यगात्सुधी ।
श्रावयामास पुत्रेभ्यो यद्वृत्तमभूत्पुरे ॥ २१ ॥

विश्वामित्र का यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ क्रोधित हो गये। वसिष्ठ को सक्रोध देखकर बुद्धिमान विश्वामित्र चुपचाप वहा से उठकर अपने आश्रम मे चले गये । वहा उन्होंने अपने पुत्रों को सारा हाल कह सुनाया ॥ २० ॥ २१ ॥

स्वय जगाम सर्वस्व त्यक्त्वा सस्पर्द्धया वशी ।
तपश्चकार माहेन्द्रे ऋचिकाश्रमसन्निधौ ॥ २२ ॥

जितेन्द्रिय विश्वामित्र स्पर्द्धा के कारण वसिष्ठ को जीतने की इच्छा से सर्वस्व त्यागकर ऋचीक ऋषि के आश्रम के निकट माहेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने लगे ॥ २२ ॥

तस्यैतत्पुत्रशतकं श्रुत्वा तस्य पराभवम् ।
दर्शिता निर्जगामाय वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ॥ २३ ॥

विश्वामित्र के सौ पुत्र अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिये वसिष्ठ के आश्रम की ओर चले ॥ २३ ॥

दूरात्कोलाहलं चक्रुश्छिन्दि भिन्धीति वादिनः ।
वसिष्ठोऽपि समाकर्ण्य तेषां वै निष्ठुरं वचः ॥ २४ ॥
सौरभेयीं नन्दिनीं च संबोध्येतीदमब्रवीत् ।

विश्वामित्र के उन पुत्रों ने दूर से ही "मारो, काटो, "मारो, काटो" इस प्रकार का कोलाहल करना प्रारम्भ किया। वसिष्ठ ने उनके कठोर वचनों को सुन सुरभिसुतानन्दिनी को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहना प्रारंभ किया— ॥ २४ ॥

वसिष्ठ उवाच—

जहि ह्येतान् महाभागे विद्विषो धर्मदूषिणः ॥ २५ ॥

महाभागे ! इन धर्मदूषक शत्रुओं को मार डालो ॥ २५ ॥

एवं महर्षिणा प्रोक्तमाकर्ण्याशु च नन्दिनी ।
तदैवोत्पादयामास तालजंघादिकान्बहून् ॥ २६ ॥

इस प्रकार महर्षि का वचन सुनकर नन्दिनी ने शीघ्र ही वहां बहुत-से तालजंघादि राक्षसों को उत्पन्न किया ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा तान् समुद्भूतान् वसिष्ठः क्रोधमूर्च्छितः ।
सजगाद तदा सर्वाँल्लेलिहानान्महासुरान् ॥ २७ ॥

क्रोध मूर्च्छित वसिष्ठ ने सद्य उत्पन्न हुए, जीभ लपलपाने वाले उन महासुरों को देखकर कहा ॥ २७ ॥

वसिष्ठ उवाच—

रे रे सर्वान् कौशिकेयान् विश्वामित्रसमुद्भवान् ।
हन्यतामसुराः शीघ्रं पापिष्ठान्धर्मविद्विषः ॥ २८ ॥

अरे असुरो ! विश्वामित्रोत्पन्न धर्म के शत्रु कौशिकेयों को शीघ्र ही मार डालो ॥ २८ ॥

वसिष्ठवचनं देवि ! शिरस्याधाय सत्वरम् ।
युयुधुस्ते परशुभिः खड्गैः शूलैस्तथाम्बिके ! ॥ २९ ॥

देवी अम्बिके ! वसिष्ठ की आज्ञा शिरोधार्य कर उन राक्षसों ने शीघ्र ही परशु, खड्ग और शूलों से युद्ध करना प्रारभ करदिया ॥ २६ ॥

नियुद्धं सुचिर तेपा कौशिकै सह दारुणम् ।
अस्त्रै शस्त्रैर्महाघोरैर्मुष्टिभिर्मर्मवेधिभि ॥ ३० ॥
दन्ताघातैश्च पट्टिशैरसिभिर्दारुणैरभूत् ।
तेषा शस्त्रप्रहारैश्च मृता राजन्यबालका ॥ ३१ ॥

भयंकर अस्त्र शस्त्र और मर्मभेदी मुष्टिकाओं से उन राक्षसों का घोर युद्ध बहुत देर तक कौशिकेयों के साथ चलता रहा । दन्ताघात, पट्टिश प्रयोग और तलवारों से वह युद्ध अत्यधिक दारुण हुआ । उन राक्षसों के शस्त्र प्रहारों से वे क्षत्रिय बालक मारे गये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

तत्र युद्धे मृताञ्छ्रुत्वा विश्वामित्र स्वबालकान ।
भृशमुद्विग्नहृदयो हरिं सस्मार दुर्मना ॥ ३२ ॥

विश्वामित्र वहा वसिष्ठ के आश्रम मे राक्षसों द्वारा युद्ध मे मारे गये अपने पुत्रों का दु खद समाचार सुनकर अत्यन्त उद्विग्न हुए । वे दु खित चित्त से हरि का स्मरण करने लगे ॥ ३२ ॥

असुराश्चापि त नत्वा वसिष्ठ मुनिसत्तमम् ।
प्रार्थयामासु त देवि ! भोजन च बुभुक्षिता ॥ ३३ ॥

देवी ! युद्ध से विरत होकर भूखे राक्षसा ने नमस्कार पूर्वक वसिष्ठ से भोजन की याचना की ॥ ३३ ॥

असुरा ऊचु—

ब्रह्मन् ! बुभुक्षिता सर्वे भोक्तु देहि कृपानिधे।
वय ते शरण याता दीनास्त्व पातुमर्हसि ॥ ३४ ॥

कृपानिधे ब्रह्मन् ! हम भूखे हैं । आप हमे भोजन दीजिये । हम दीन आपकी शरण मे आये हैं । आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

इति तेषा वच श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तम ।

वसिष्ठ उवाच—

भक्षन्तु मातरं मूढ़ां यतोवश्चाजनिस्तथा ॥ ३५ ॥

इस प्रकार उन राक्षसों का वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने कहा-तुम अपनी मूर्खा माता को खा डालो जिसने तुम्हें उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भोक्तुमारेभिरेऽसुराः ।

मातरं भक्षितां दृष्ट्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ३६ ॥

वसिष्ठ की आज्ञानुसार राक्षसों ने अपनी जननी को ही खाडाला । मातृभक्षण देखकर मुनि वसिष्ठ बहुत कोधित हुए ॥ ३६ ॥

यान्तु सर्वेऽसुराः दूरं म्लेच्छत्वं च महीतले ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा तालजंघादयोप्यलम् ॥ ३७ ॥

तदारभ्य महादेवि ! म्लेच्छास्ते च गताः क्षितौ ।

वसिष्ठश्च तथैवासीत्पूर्ववद्ध्यानतत्परः ॥ ३८ ॥

वसिष्ठ ने कहा— सारे असुर यहां से दूर हो जाँय और वे पृथ्वी पर म्लेच्छत्व को प्राप्त हों। इस प्रकार वसिष्ठ के शापसे वे तालजंघादि असुर उसी समय से पृथ्वी पर म्लेच्छत्व को प्राप्त हुए और वसिष्ठ फिर पहले के समान ही ध्यान परायण होकर तपस्या में संलग्न हुए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

ऋषिभिर्बोधितः सोपि पुनश्चैतन्यतां गतः ।

संचिन्तयन्स्वमनसि विधास्येहं च वात्रिकी ॥ ४० ॥

इति निश्चित्य मनसा तपसे कृतनिश्चयः ।

सद्यो जगाम माहेन्द्रमृचीकस्याश्रमाश्रितः ॥ ४१ ॥

ऋषियों द्वारा उपचार होने पर विश्वामित्र की मूर्छा दूर हुई । उन्होंने पुनः चैतन्य लाभ किया । फिर उन्होंने अपने मनमें वात्रिकी सृष्टि रचने का विचार किया । वात्रिकी सृष्टि का दृढ़ विचार कर तपस्या करने के विचार से वे शीघ्र ही ऋचीकाश्रम के आश्रयभूत महेन्द्र पर्वत पर चले गये ॥ ४१ ॥

* * *

षट्त्रिंशोऽध्याय

देवल उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य गिरीशस्यापि पार्वती ।
पुन पप्रच्छ सा देवी विश्वामित्रतपोबलम् ॥ १ ॥

भगवान् शंकर के उपर्युक्त वचन को सुनकर उस देवी पार्वती ने फिर विश्वामित्र के तपोबल के विषय में पूछा ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच—

भगवन् देवदेवेश ! विश्वामित्रो महामुनि ।
किं चकार तत सोपि तपसा तोषयन्हरिम् ॥ २ ॥

देवदेवेश भगवन् ! इसके बाद तपसे भगवान हरि को संतुष्ट करने वाले उस महामुनि विश्वामित्र ने क्या किया ? ॥ २ ॥

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि ! विश्वामित्रस्य धीमत ।
चरित महदाश्चर्यं यच्चकार तपोबलात् ॥ ३ ॥

देवेशि ! बुद्धिमान विश्वामित्र का महदाश्चर्य जनक चरित्र जो उसने अपने तपोबल से उत्पन्न किया, उसे सुनो ॥ ३ ॥

माहेन्द्र समुपागम्य तपस्तेपे दृढासन ।
पंचसहस्र गते काले ब्रह्मा तत्र समागत ॥ ४ ॥

माहेन्द्र पर्वत पर जाकर विश्वामित्र ने दृढ़ासन से तपश्चर्या की। पांच सहस्र वर्ष बीतने पर उनके पास ब्रह्माजी गये ॥ ४ ॥

वर ब्रूहि महाभाग ! यत्ते मनसि वर्तते ।
विधातुर्वचनं श्रुत्वा नेत्रोन्मित्य महातप ॥ ५ ॥
ननाम दण्डवद्भूमौ ब्रह्माणं जगदीश्वरम् ।
उवाच मधुरा वाणीं मोहापन्नो महामुनि ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—"महाभाग ! तुम्हारे मन में जो इच्छा हो सो वर

मांगो।" ब्रह्मा के उपर्युक्त वचन सुनकर महातपस्वी विश्वामित्र ने आँख खोल पृथ्वी पर दण्डवत् पड़ कर जगदीश्वर ब्रह्मा को नमस्कार किया। फिर मोहापन्न चित्तवाले महामुनि विश्वामित्र ने मधुर वाणी से कहना प्रारंभ किया ॥ ५ ॥ ६ ॥

विश्वामित्र उवाच—

सर्वस्वं भवता दत्तं न किंचिदवशिष्यते।
तथापि भगवन् याचे मृतानां पुनरुद्भवम् ॥ ७ ॥

भगवन्! आपने मुझे सब कुछ दिया है। कुछ बाकी नहीं रहा। फिर भी मैं मृतकों के पुनरुद्भव की याचना करता हूँ ॥ ७ ॥

तथास्त्विति समादिश्य जगामाशु पितामहः।
ब्रह्मणो वरमासाद्य सवृत्ति सृष्टिमातनोत् ॥ ८ ॥

'तथास्तु' कहकर पितामह शीघ्र ही चले गये। ब्रह्माजी द्वारा वर प्राप्त कर विश्वामित्र ने सवृत्तिसृष्टि का विस्तार किया ॥ ८ ॥

आदौ वृत्ति समुत्पाद्य पश्चात्सृष्टिं च वार्क्षिकीम्।
चकार भूयसीं भद्रे! श्रुत्वा धाता समागतः ॥ ९ ॥

सर्व प्रथम वृत्ति का उत्पादन कर बाद में बहुत-सी वार्क्षिकी सृष्टि का निर्माण किया, जिसे सुनकर ब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥

किं करोषि मुने! चात्र विधिलोपमनर्थकम्।
न दृष्टं न श्रुतं तात! द्रुमेभ्यो मानुषोद्भवः ॥ १० ॥

तातमुने! यहां यह क्या कर रहे हो! विधिलोप अनर्थमूलक है। वृक्षों से मानव की उत्पत्ति अदृष्टपूर्व है ॥ १० ॥

बहवस्त्वद्विधा आसन् तपोनिष्ठाः महर्षयः।
केनापि नो कृतः सर्गो वार्क्षिको मुनिसत्तमः ॥ ११ ॥

मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे जैसे बहुत-से तपोनिष्ठ महर्षि होगये हैं किन्तु किसी ने भी वार्क्षिकी सृष्टि से मनुष्यों को उत्पन्न नहीं किया ॥ ११ ॥

त्वमेवास्मिन्महाभाग ! प्रवृत्तो भवसि कथम् ।
एतत्पितामहस्यापि वाक्यं भावार्थगर्वितम् ॥ १२ ॥
प्रोवाच महेशानि विश्वामित्रो महातपः ।

"महाभाग ! तुम्हीं इसमें कैसे प्रवृत्त होरहे हो !"

पार्वती ! पितामहका यह सार युक्त वचन सुनकर महान् तपस्वी विश्वामित्र ने कहा—

मदीया आत्मजा नष्टा वसिष्ठेनाभिमानिना ॥ १३ ॥
तस्याह मतिमाछिद्य सुखित्स्या भगवन्विधे ।
तेन गोयोनिना सृष्टास्तालजंघाद्योऽसरा ॥ १४ ॥
तस्माद्बहुविधा सृष्टिं वृक्षेभ्योऽहं सृजाम्यलम् ।
विधातापि वचस्तस्य चाकर्ण्यैवाब्रवीदिदम् ॥ १५ ॥

"अभिमानी वसिष्ठ ने मेरे पुत्रों को मार डाला है !"

"भगवन् विधे ! मैं उसकी बुद्धि का अपहरण कर सुखी हूंगा । उसने गोयोनि द्वारा तालजंघादि असुरों का सृजन किया है !"

"इसलिये मैं भी वृक्षों से नाना प्रकार की सृष्टि का निर्माण कर रहा हूँ !" ब्रह्माजी यह सुनकर बोले ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच—

जंगमाज्जंगमो वत्स जातः खलु जडाज्जड ।
एष एव विधिश्चात्र विधिलोपस्ततोऽन्यथा ॥ १६ ॥

वत्स ! निश्चय ही जंगम से जंगम और जड से जड की उत्पत्ति होती है । यही विधिका विधान है । अन्यथा वैध क्रिया का लोप होजाता है ॥ १६ ॥

तस्मात्त्वमत्र विधिवत्त्वं शक्तोऽपि मा कुरु ।
ममाज्ञया भरद्वाजमिदानीं याहि सुव्रत ॥ १७ ॥

सुव्रत ! इसलिये तुम यहां विधिवत कार्य करने में समर्थ होते हुए भी ऐसा मत करो । मेरी आज्ञानुसार तुम अभी भरद्वाज के आश्रम में चले

जाओ। वहां तुम्हरा शोक दूर होकर मनोकामना पूर्ण होगी ॥ १७ ॥

एवमाभाष्य धातापि वसिष्ठस्याश्रमं गतः ।
तयोर्बहुतिथं देवि ! विद्वेषोऽभून्महेश्वरि ! ॥ १८ ॥

इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी भी वसिष्ठ के आश्रम में चले गये। देवी महेश्वरि ! विश्वामित्र और वसिष्ठ का वैर एक दीर्घ काल तक रहा ॥ १८ ॥

ब्रह्मणो वचनात्सोपि तीर्थराजे मुनिं प्रति ।
जगाम दुर्मना देवि ! भरद्वाजं मुनीश्वरम् ॥ १६ ॥

देवि ! ब्रह्माजी के वचनानुसार वह ऋषि विश्वामित्र दुःखितचित्त होते हुए भी तीर्थराज में मुनीश्वर भरद्वाज के पास गये ॥ १६ ॥

ज्ञात्वा मुनिवरस्तस्य मनसागमनकारणम् ।
ससर्ज मानसान् दिव्यान् शतसंख्यमितान् सुतान् ॥ २० ॥

मुनिवर भरद्वाज ने मन से ही विश्वामित्र के आगमन का कारण जान कर सौ दिव्य मानसपुत्रों की सृष्टि की ॥ २० ॥

सुशीलांश्च सुरूपांश्च गुणवन्तो विचक्षणान् ।
सर्वान्संबोधयामास ऋषेरागमकारणम् ॥ २१ ॥

वे मानसपुत्र सुशील, सुरूप, गुणवान और चतुर थे। उन सब को भरद्वाज ने ऋषि विश्वामित्र के आने का कारण बतला दिया था ॥ २१ ॥

तत्काले च समायातो विश्वामित्रो महामुनिः ।
ननाम ब्रह्मणः पुत्रं भरद्वाजं मुनिं तदा ॥ २२ ॥

उसी समय महामुनि विश्वामित्र वहां पहुँचे। उस समय उन्होंने वहां पहुँचकर ब्रह्मा के पुत्र भरद्वाज को नमस्कार किया ॥ २२ ॥

विनयावनतश्चासौ बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ।
भरद्वाजोपि तं दृष्ट्वा सुम्लानमुखपंकजम् ॥ २३ ॥
आसनं च ददौ तस्मै बहुमानपुरस्सरम् ।
पप्रच्छ कुशलं तस्य ह्यादरेण महामुनिः ॥ २४ ॥

विनयावनत विश्वामित्र बद्धाञ्जलि होकर भरद्वाज के सामने खड़े हो गये। महामुनि भरद्वाज ने उनके मुख कमल को अत्यधिक म्लान देखकर आदरपूर्वक उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। फिर प्रेमपूर्वक कुशल प्रश्न पूछा ॥ २३ ॥ २४ ॥

सोऽपि श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कौशिकः शोकविह्वलः ।
वसिष्ठजनितं सर्वं कथयामास विस्तरात् ॥ २५ ॥

शोकविह्वल कौशिक विश्वामित्र ने मुनि भरद्वाज का वचन सुनकर वसिष्ठ के आश्रम में घटी हुई घटना विस्तार पूर्वक कह सुनाई ॥ २५ ॥

भरद्वाजोऽपि सर्वज्ञो मोहमग्नं ददर्श तम् ।
बोधयामास वाक्येन यथा कालानुसारिणा ॥ २६ ॥

सर्वज्ञ भरद्वाज ने उस विश्वामित्र को मोह के वशीभूत देखा और उसे सामयिक उपदेश द्वारा सान्त्वना प्रदान की ॥ २६ ॥

ऋषिरुवाच—

सर्वज्ञोसि महाबुद्धे ! सर्वं दैवकृतं त्विदम् ।
न कोपि सृजते जन्तून् न कोपि मारणे क्षमः ॥ २७ ॥

महाबुद्धे ! तुम तो सर्वज्ञ हो। यह सब दैवकृत है। न कोई प्राणी को उत्पन्न करता है और न कोई मारने में समर्थ है। केवल दैव ही प्राणी की उत्पत्ति और मारण में समर्थ है ॥ २७ ॥

स एव सृजते लोकान् स एव मारणे क्षमः ।
इति ज्ञात्वा महातेजा किमर्थं द्वेष्टुमर्हसि ॥ २८ ॥

"दैव ही लोकों का सृजन करता है और वही उनको मारने में समर्थ है।" तेजस्विन् ! यह जानते हुए आप दूसरे से द्वेष करने योग्य नहीं हैं ॥ २८ ॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं महर्षे कौशिकस्तदा ।
त्यक्त्वा शोकं च मोहं च द्वेषं च परमं जगाम ॥ २९ ॥

सर्वं विधिवशं ज्ञात्वा कालाधीनं महत्तरम् ।
ननाम परमं तत्त्वं ज्ञात्वा गन्तुं समुद्यतः ॥ ३० ॥

इस प्रकार महर्षि भरद्वाज मुनि का वचन सुनकर उसी समय कौशिक विश्वामित्र ने शोक मोह और शत्रुओं के प्रति उत्पन्न द्वेष को त्यागकर सब कुछ विधि के वश जान, महत्व को कालाधीन मान परमतत्त्व को नमस्कार किया और चलने को उद्यत हुए ॥ २९ ॥ ३० ॥

भरद्वाजस्ततो दृष्ट्वा गन्तुमुद्योजितं मुनिम् ।
उवाच मधुरं वाचं विश्वामित्रं महामुनिम् ॥ ३१ ॥

मुनि विश्वामित्र को जाने के लिये तैयार देखकर महामुनि भरद्वाज ने मधुर वाणी से कहा—॥ ३१ ॥

भरद्वाज उवाच—

विश्वामित्र महाभाग ! शृणु मत्परमं वचः ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते मोहात्सद्य सुखमवाप्नुयात ॥ ३२ ॥

महाभाग विश्वामित्र ! मेरा श्रेष्ठ वचन सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य शीघ्र ही मोह से छुटकारा पाता है और तत्काल सुख को प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

इमे शतमिताः पुत्राः मानसाः मम धीयुताः ।
त्वदर्थे च मया धीमन् ! सम्यग् संभाविताः किल ॥ ३३ ॥

बुद्धिमन् ! मेरे ये सौ मानस पुत्र बुद्धिमान हैं । इनको मैंने तुम्हारी सेवा के लिये नियुक्त किया है ॥ ३३ ॥

पुत्रीभूतास्तवैते हि तारयन्ति भवार्णवात ।
अतो नय महाभाग ! भवन्मोहापनुत्तये ॥ ३४ ॥

महाभाग ! ये तुम्हारे पुत्र होकर संसार सागर से तारने वाले होंगे । इसीलिये आप अपने मोह को दूर करने के लिये इन्हें अपने साथ लेजाइये ये आपके पुत्र शोक को दूर करने के साथ साथ पुत्राभाव भी दूर करेंगे और आपमें सदा पितृभाव रक्खेंगे ॥ ३४ ॥

यशो विस्तारयिष्यन्ति भवद्भूम्या तु निर्मलम् ।
अतो भवान्प्रतिगृह्णातु सर्वान् गुणसमन्वितान् ॥ ३५ ॥

ये आपका निर्मल यश पृथ्वी पर फैलायेंगे। इसीलिये आप इन सब गुणवानों को ग्रहण कीजिये ॥ ३५ ॥

एतैरेव महामोहो न भूय पुनराव्रजेत् ।
विचरस्व यथाकाल सर्वत्र सुखमावह ॥ ३६ ॥

इनकी उपस्थिति में आपको पुन मोह नहीं सतायेगा। आप इच्छानुसार सर्वत्र विचरण करते हुए सुख प्राप्त करें ॥ ३६ ॥

इति तद्वचन श्रुत्वा विश्वामित्रो जहर्ष ह ।
प्रणम्य परमप्रीत्या साकं तैराश्रम ययौ ॥ ३७ ॥

इस प्रकार भरद्वाज का वचन सुनकर विश्वामित्र प्रसन्न हुए। भरद्वाज को प्रेमपूर्वक प्रणाम कर वे उन मानसपुत्रों सहित अपने आश्रम को चले गये ॥ ३७ ॥

गच्छन् मार्गेषु मतिमान् सर्वान्मधुरया गिरा ।
मुमोह परया प्रीत्या सर्वां मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥

मार्ग में चलते हुए बुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने उन सबको मधुर वाणी और प्रेम से अपनी ओर आकृष्ट कर मोहित कर लिया ॥ ३८ ॥

तदारभ्य तु ते सर्वे मधुच्छन्दादि विश्रुता ।
मुनिस्तेषा तु सर्वेषामेकैकावसरे पुन ॥ ३९ ॥
सस्कार च यथायोग्य कारयामास सादरात् ।
पाठयामास तान् वेदान् सागोपागविधानत ॥ ४० ॥

उसी दिन से वे मधुच्छन्दादि नाम से प्रसिद्ध हुए। मुनि विश्वामित्र ने समय समय पर एक एक का यथायोग्य सस्कार किया। उन्हें सागोपाग विधान से वेद पढाया जिससे वे समस्त शास्त्र और कलाओं में पारंगत होगये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

तदैव ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा सर्वगुणान्वितान् ।
प्रददुर्दुहितास्तेभ्यो रूपलावण्यशालिनी ॥ ४१ ॥
पतिव्रतपराः देवि ! गृहकर्मरताः सदा ।
एकीभूता सदैवात्र विचरन्ति महीतले ॥ ४२ ॥

देवि ! जब वे ऋषिकुमार युवा हुए तो उन्हें सर्वगुणसम्पन्न देखकर आसपास के सभी ऋषियों ने अपनी सुन्दरी कन्यायें उन्हें ब्याह दीं । वे कन्यायें पतिपरायणा और गृह कार्यों में दक्ष थीं । वे मधुछन्दादि ऋषि संगठित होकर सदा पृथ्वी पर विचरण करते थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तेनैव सहिता देवि ! मुनिना धर्मशालिना ।
मेनिरे पितृवद्भक्त्या तमपि पितृवत्सलाः ॥ ४३ ॥

देवि ! वे मधुछन्दादि मानसपुत्र धर्मशील मुनि विश्वामित्र के साथ ही रहते थे। वे पितृवत्सल पितृभक्ति के कारण उस ऋषि का बहुत आदर करते थे ॥ ४३ ॥

स चापि मुनिशार्दूल आत्मवत् प्रतिपालयन् ।
एवं तेषां च देवेशि ! प्रीत्या कालो गतो महान् ॥ ४४ ॥

देवेशि ! मुनिशार्दूल विश्वामित्र आत्मवत् उनका पालन करते थे । इसप्रकार प्रेम से रहते हुए उनका बहुत समय बीत गया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का परिवार फिर धन, जन की समृद्धि से परिपूर्ण होगया । यद्यपि मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषि उनके दत्तक पुत्र थे परन्तु उन्होने कभी इस बात की शिकायत नहीं की। उभय पक्ष सन्तुष्ट थे ।

एवं ते कथितं सर्वं मुन्योर्वैरस्य कारणम् ।
किं पुनः-पृच्छसे भद्रे ! तत्सर्वं कथयाम्यहम् ॥ ४५ ॥

भद्रे ! इस प्रकार मुनियों के वैर का कारण तुम्हें बतला दिया है। अब और तुम क्या पूछना चाहती हो! वह भी पूछो, मैं तुम्हें बतलाऊंगा ॥ ४५ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्याय

गौरमुख उवाच—

मुने धर्मभृता श्रेष्ठ सर्वज्ञ करुणार्णव ।
तेषा तु चरित्त सर्वं भविष्य कथयाऽधुना ॥ १ ॥

सर्वज्ञ, करुणासागर, धर्मधुरीणों मे श्रेष्ठ मुने ! अब उन मधुच्छन्दादि ऋषियो का भावी चरित्र भी बतलाइये । १ ॥

देवल उवाच—

गौरमुख महाभाग ! सर्वं वच्मि तवाग्रत ।
श्रुत्वा शिवमुखाद्गौरी पप्रच्छ पुनरेव तत् ॥ २ ॥

महाभाग गौरमुख ! तुम्हें सब कुछ बतलाता हूँ । भगवान शकर के मुख से उपर्युक्त कथा सुनकर गौरी पार्वती ने फिर पूछा ॥ २ ॥

गौर्युवाच—

पुन पृच्छामि देवेश ! विश्वामित्रस्य धीमत ।
सुपुत्रस्य कथ जातत् चरितं परिवर्तितम ॥ ३ ॥

देवेश ! मैं फिर पूछती हूँ कि अच्छे पुत्रो वाले बुद्धिमान विश्वामित्र का चरित्र क्योंकर परिवर्तित हुआ ! ॥ ३ ॥

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोहं जगदीश्वर ।
इत्याकर्ण्य वचो विद्वान् सर्वं तस्मात्रवीन्मिम् ॥ ४ ॥

जगदीश्वर ! वह सब वृतान्त मैं आपसे सुनना चाहती हूँ । यह सुनकर विद्वान शकर ने पार्वती को सारा वृतान्त कह सुनाया ॥ ४ ॥

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि महाभागे ! विश्वामित्रस्य धीमत ।
चरित्र महदाश्चर्यं देवविस्मापनं प्रिये ॥ ५ ॥

महाभागे, प्रिये, दे[illegible] [illegible]मान विश्वामित्र का अद्भुत और देवताओं का चकित करने वाला [illegible] ॥

एकदा च हरिश्चन्द्रो वारुणेष्टिं चकार ह ।
तत्र देवगणाः सर्वे महर्षिप्रवरास्तु ये ॥ ६ ॥
वरुणाद्याः लोकपालाः शक्तिभिः सहिताः प्रिये !
समाहूताः समायताः सर्वे तत्र महाक्रतौ ॥ ७ ॥

प्रिये ! एक वार राजा हरिश्चन्द्र ने वारुणेष्टि यज्ञ किया था । वहां उस महायज्ञ में समस्त देवगण, महर्षि प्रवर, वरुणादि लोकपाल, अपनी अपनी शक्तियों सहित निमंत्रित होकर आये ॥ ६ ॥ ७ ॥

वसिष्ठश्च कुलाचार्यो विश्वामित्रस्तथागतः ।
अन्ये च मुनयस्तत्र ऋषयश्च द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥
आगता, वहवो देवि ! तस्मिन् क्रतुवरे किल ।

देवि ! कुलाचार्य वसिष्ठ और विश्वामित्र तथा अन्य ऋषि मुनि और वहुत-से द्विज श्रेष्ठ उस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारे ॥ ८ ॥

अजीगर्तात्मध्यमः पुत्रः क्रीतो राज्ञा च वारुणः ॥ ९ ॥
शुनःशेपो महादेवि ! तं चकार पशूत्तमम् ।

महादेवि ! राजा ने अजीगर्त नामक ब्राह्मण से उसके मध्यम पुत्र को वरुण को वलि देने के लिये खरीदा और उसे श्रेष्ठ वलिपशु बनालिया ॥ ९ ॥

वसिष्ठो जुहुयात्तत्र मंत्रैश्चामलवर्णकैः ॥ १० ॥

उस यज्ञ में वसिष्ठ ने शुद्ध मंत्रोच्चारण पूर्वक हवन किया ॥ १० ॥

तं ररक्ष महादेवि ! विश्वामित्रो महातपा ।
वरुणः सगणस्तृप्तो देवाश्चेन्द्रादयस्तथा ॥ ११ ॥

महादेवि ! उस यज्ञ में वलिदान हुए शुनःशेप की रक्षा महातपस्वी विश्वामित्र ने की । वरुण अपने गणों सहित तृप्त हुआ और इन्द्रादि देवता भी तृप्त होगये ॥ ११ ॥

विश्वामित्रकृतं तत्र न ज्ञातं केनचित् क्वचित् ।
देवाः स्वर्गं ययुः सर्वे सगणाः सपुरोधासः ॥ १२ ॥

इस यज्ञ में प्रच्छन्न रूप से शुन शेप की रक्षा करने वाले विश्वामित्र के इस रक्षात्मक कार्य को किसी ने नहीं जाना। समस्त देवगण अपने अपने गण और पुरोहितों सहित स्वर्ग को चले गये ॥ १२ ॥

वरुणोऽपि ययौ धाम सुतृप्त सगणो महान्।
विप्रेभ्योऽपि धनं दत्वा राजा सुखमवाप स ॥ १३ ॥

अपने गणों सहित भली प्रकार तृप्त हुआ महान् वरुण अपने स्थान को चला गया। वह राजा हरिश्चन्द्र भी ब्राह्मणों को धन देकर सुखी हुआ ॥ १३ ॥

शुन शेपो न दग्धोऽसौ स्वर्गं नैव जगाम स।
हरिश्चन्द्रो महाराजा वरुण तोषयन्मुदा ॥ १४ ॥
आत्मानं मोचयेद्रोगाद्रोगिन तस्य शापत।

बलिदान हुआ शुनःशेप जला नहीं था और वह स्वर्गगत भी नहीं हुआ। वरुण के शाप से रोगी हुए महाराजा हरिश्चन्द्र प्रसन्नता पूर्वक वरुण को सन्तुष्ट कर रोग से मुक्त होगये ॥ १४ ॥

जिग्मिषूंश्च ऋषीन्दृष्ट्वा विश्वामित्रो महातपा ॥ १५ ॥
अवतार्य महाकाशात् शुन शेप मुनीश्वर।
दर्शयामास तान्सर्वान् महात्म्य मुनिसत्तमान ॥ १६ ॥

ऋषि लोगों को जाने के लिये उद्यत देखकर महातपा मुनीश्वर विश्वामित्र ने उन श्रेष्ठ मुनियों के सामने अपना महत्त्व प्रकट करते हुए शुन शेप को आकाश से उतार कर दिखाया ॥ १५ ॥ १६ ॥

ददृशुर्मुनय सर्वे महच्चित्रमिदं सताम्।
सात्मज सययौ तस्माद्राज्ञा स च नमस्कृत ॥ १७ ॥

सज्जनों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले विश्वामित्र के इस कार्य को सभी मुनियों ने देखा। विश्वामित्र राजा का अभिवादन स्वीकार कर अपने पुत्रों को साथ लेकर चले गये ॥ १७ ॥

तमानीय महाभागे सर्वाश्चाकथयत्सुतान् ।
शृणुध्वं वो महाभागाः मदीय वचनं सुता ॥ १८ ॥

महाभागे ! शुनःशेप को अपने आश्रम में लाकर विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से कहा—"महाभाग पुत्रो ! मेरा वचन सुनो— ॥ १८ ॥

श्रुत्वापि च तथा वत्साः पालयध्वं वचो मम ।
एष वै भवतां ज्येष्ठः पालयन्तु मुदा सदा ॥ १६ ॥

प्यारे पुत्रो ! मेरे वचन को सुनकर इसका पालन भी करना । यह शुनःशेप तुम्हारा ज्येष्ठ होगा, तुम इससे ज्येष्ठ के समान ही व्यवहार करना ॥ १६ ॥

महादेव उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य बभूवुर्विकलाः भृशम् ।
परस्परं समालयोक्य नैवोचुर्मुवि दृष्टयः ॥२० ॥

महर्षि विश्वामित्र का यह वचन सुनकर वे अत्यधिक विकल हुए । उन्होंने एक दूसरे को देखकर कुछ नहीं कहा, केवल नीची दृष्टि करली ॥ २० ॥

पुनश्च तांश्च समाबोध्य जगाद मुनिपुंगवः ।
कथं नोचुः महाभागाः किं वो मनसि वर्तते ॥ २१ ॥

मुनिश्रेष्ट विश्वामित्र ने फिर उनको सम्बोधित करते हुए कहा—"महानुभावो ! आप बोल क्यों नहीं रहे हो ! तुम्हारे मन में क्या विचार है !" ॥ २१ ॥

पुनरेवमृषेर्वाक्यात्पंक्तिद्वयमभूत्तदा ।
पंचाशत पूर्वपंक्तौ परपंक्तौ तथैव च ॥ २२ ॥

फिर ऋषि के उसी प्रश्न को सुनकर वे मानसपुत्र दो पंक्तियों में विभक्त होगये । पचास पहली पंक्ति में और पचास दूसरी में विभक्त थे ॥ २२ ॥

पूर्वपंक्तिस्थिताः ज्येष्ठाः न ते तज्जगृहुर्वचः ।
तेषां नामानि सर्वाणि क्रमात्ते कथयाम्यहम् ॥ २३ ॥

पूर्वपंक्ति में स्थित ज्येष्ठ मानसपुत्रों ने ऋषि का कहना नहीं माना। उन सब के नाम अब मैं तुम्हें क्रमश बतलाता हूँ॥ २३॥

प्राग्जातास्तु ये देवि! तस्माज्ज्येष्ठाश्च तेऽभवन्।

देवि! पहले उत्पन्न होने के कारण वे ज्येष्ठ कहलाते थे।

लोहितो मुद्गरो धीरो हेममाली च तुण्डिल ॥ २४॥
प्रतापो धनभृत् धीमान् कुञ्जरो लोभनो विभु ।
मण्डूको मधुरालापी वैयघ्रो विपहा कृप ॥ २५॥
कपोली मदनो मायी दन्तुरो भूपरोऽमर ।
नरोत्तमो मृगो रामो वनमाली मृगप्रिय ॥ २६॥
पद्मासन पद्ममाली रुक्ममाली धनी सुधी ।
नकुलो नवलो लुब्धो नल विद्याधरो कवि ॥ २७॥
जम्बुप्रियो विशालाक्ष केशवो भीमदर्शन ।
महाशनो मिताहारो रन्धनो रमणोऽध्वरि ॥ २८॥
निविधो वामनो मौञ्जी पूर्वपंक्तिविभूषणा ।

१ — लोहित, २ — मुद्गर, ३ — धीर, ४ — हेममाली ५ — तुण्डिल, ६ — प्रताप, ७ — धनभृत, ८ — धीमान् ९ — कुञ्जर, १० — लोभन, ११ — विभु, १२ — मण्डूक, १३—मधुरालापी, १४ — वैयघ्र, १५—विपहा, १६ — कृप, १७ — कपोली, १८ — मदन, १९ — मायी, २० — दन्तुर, २१ — भूपर, २२—अमर, २३ — नरोत्तम, २४ —मृग, २५—राम, २६—वनमाली, २७ — मृगप्रिय, २८ — पद्मासन, २९ —पद्ममाली, ३०—रुक्ममाली, ३१ — धनी, ३२ — सुधी, ३३ — नकुल, ३४ — नवल, ३५ — लुब्ध, ३६ — नल, ३७— विद्याधर, ३८— कवि, ३९— जम्बुप्रिय, ४० — विशालाक्ष, ४१ — केशव, ४२ — भीमदर्शन, ४३ — महाशन, ४४ — मिताहार, ४५ — रन्धन, ४६ — रमण,

३७ — अध्वरि, ४८ — निषिध, ४९ — वामन, ५० — मौजी

इस पंक्तिद्वय में उपर्युक्त ऋषि प्रथम पंक्ति में थे ॥ २४ — २८ ॥

न ते वै जगृहुस्तस्य वचनं भीमकर्मणः ॥ २९ ॥

इन ऋषियों ने उस भीमकर्मा विश्वामित्र का आदेश स्वीकार नहीं किया ॥ २९ ॥

अवमानं तथात्मानं मन्यमानो महामुनिः ।
शशाप कुपितो देवि ! ज्येष्ठान्पंचाशतांस्तदा ॥ ३० ॥

महामुनि विश्वामित्र ने इसे अपनी अवज्ञा मानी। उन्होंने क्रोधित होकर पचास बड़ों को शाप देदिया ॥ ३० ॥

भर्त्सयामास तान्सर्वान् क्रोधात्प्रस्फुरितेन्द्रियः ।
म्लेच्छत्वं यान्तु भो मूढाः यूयं धर्मवहिष्कृताः ॥ ३१ ॥

क्रोध से विश्वामित्र की इन्द्रियां फड़कने लगी। उन्होंने उन पचास बड़ों को झिड़कते हुए कहा— अरे मूर्खो ! तुम सर्वधर्मवहिष्कृत होकर म्लेछ हो जाओ ॥ ३१ ॥

मातुर्पितुर्गुरोराज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमताम् ।
अन्नदातुर्मातुलस्य नाज्ञां कुर्वन्ति ये जनाः ॥ ३२ ॥
ते त्याज्याः सर्वदा लोकैरभाष्या, मानवैः सदा ।
अतो मत्पुरतो यान्तु म्लेच्छत्वं भुवि निर्भरम् ॥ ३३ ॥

माता, पिता, गुरु, राजा, ज्येष्ठ भ्राता, बुद्धिमान, अन्नदाता और मामा की आज्ञा न मानने वाले त्याज्य हैं। लोगों को उनसे कभी भाषण न करना करना चाहिये। अतः तुम लोग मेरे सामने से चले जाओ। तुम पृथ्वी पर निर्भर होकर म्लेच्छाचरण करो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति तद्वचनाद्देवि ! सद्यो म्लेच्छगतिं गताः ।
मुनिश्चापि तदा देवि ! शोकमोहवशीकृतः ॥ ३४ ॥

देवि ! मुनि के उपर्युक्त वचनानन्तर तत्काल वे म्लेच्छों की गति को

प्राप्त हुए। उस समय मुनि विश्वामित्र भी शोक और मोह के वशीभूत होगये ॥ ३४ ॥

सर्वे हाहाकृत तत्र दृष्ट्वा तस्य व्यतिक्रमम्।
अर्वाचीनास्तु ये देवि शुद्धा शापेन भूयसा ॥ ३५॥
निरीक्ष्य वदन तस्य भीता सर्वेऽवतस्थिरे।
तान्दृष्ट्वा मुनिशार्दूल वचन चेदमब्रवीत् ॥ ३६॥

उस महर्षि विश्वामित्र के विकार को देखकर सभी क्षुब्ध हुए। देवि! मानसोत्पन्न छोटे पचास उस बडे भारी शाप से शुद्ध होगये। भयभीत हुए वे महर्षि विश्वामित्र का मुँह तकते खडे रहे। उन्हें देखकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने यों कहना प्रारम्भ किया ॥ ३५॥ ३६॥

विश्वामित्र उवाच—

कथयन्तु महाभागा भवद्भिर्मनसेप्सितम्।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शापभीता महोदया ॥ ३७॥
अब्रुवन्त मत भ्राता बद्धाञ्जलिपुटा सुता।
वदन्त सर्वतो धर्ममनुजाना यथातथम् ॥ ३८॥

"महानुभावो! आप भी अपना अभिप्रेतार्थ बतलादें।" महर्षि विश्वामित्र का यह वचन सुनकर उन्नति के इच्छुक शाप से भयभीत उन ऋषियों ने ऋषि को अनुजों का कर्तव्य बतलाते हुए हाथ जोड कर कहा— ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मानसा ऊचु —

भगवन्सर्वधर्मज्ञ धर्मं वदसि मानवम्।
तत्र वर्तन्ति ये वीरास्तेषां गंगा पदेपदे ॥३९॥

भगवन्! आप सर्व धर्मज्ञ हैं। आप मानव धर्म का उपदेश करते हैं। आप द्वारा उपदिष्ट धर्म का जो आचरण करते हैं उनको पद पद पर गङ्गा लाभ होता है ॥ ३९ ॥

न ते तद्गृह्णन्ति ते मूढाः नरकं यान्ति रौरवम् ।
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राताथ ज्ञानदः ॥४०॥
रक्षकश्चान्नदाता च गुरवस्ते पराः स्मृताः ।
तेषां वाक्यं न मन्यन्ते ते यान्ति नरकं ध्रुवम् ॥४१॥

जो आप द्वारा उपदिष्ट धर्म को ग्रहण नहीं करते हैं वे मूर्ख रौरव नरक में जाते हैं। माता, पिता, बड़ा भाई, ज्ञान देने वाला; रक्षक, अन्नदाता और अन्य गुरुजनों की अवज्ञा करने वाले निश्चय ही नरक में जाते है ॥४०॥४१॥

त्वमस्माकं पिता माता गुरुश्चार्थप्रदो नृप ।
त्वदाज्ञां पालयिष्यामो येन श्रेयो भवेत्तु नः ॥४२॥

आप हमारे माता, पिता हैं। आप धनदाता हैं। हम आपकी आज्ञा का पालन करेंगे जिससे हमारा कल्याण होगा ॥४२॥

अयं ज्येष्ठतरोऽस्माकं भवद्भिर्निश्चितः किल ।
श्रुत्वा मुनिवरस्तेषां वृद्धानां सम्मतं वचः ॥४३॥
धर्म्यं न्याययुतं लोके कर्तुः श्रेयस्करं महत् ।
प्रहृष्टवदनो भूत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥४४॥

"आप द्वारा निश्चित यह शुनःशेप निश्चय ही हमारा ज्येष्ठ होगा।" मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र उनका वृद्धसम्मत, धर्म और न्याययुक्त, करने में श्रेयस्कर वचन सुनकर प्रसन्न मुद्रा में बोले— ॥४३॥४४॥

मुनिरुवाच—

भवद्भिः कथितं सर्वं धर्मयुक्तं त्विदं महत् ।
पितुराज्ञां परां मत्वा कुर्वन्ति कर्मचात्मनः ॥४५॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा परत्र मुक्तिमाप्नुयुः ।

आप लोगों ने यह महान् धर्म से युक्त वचन कहा है। पिता की आज्ञा को सर्वश्रेष्ठ मानकर जो लोग अपने कार्यों में प्रवृत्ति करते हैं, वे इस लोक

में सुख भोग कर परलोक मे मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४५ ॥

एवमुद्दिश्य माहेशि ! वर तेभ्यो ददौ मुदा ॥ ४६ ॥
वीरवन्तो भवन्तोपि पुत्रवन्तस्तथा पुन ।
यशो विस्तारयंल्लोके परा सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ४७ ॥

माहेश्वरी ! इस प्रकार का उद्देश्य सामने रखकर महर्षि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया कि—"तुम लोग, वीरों और पुत्रों से युक्त होकर लोक मे अपना यश फैलाते हुए उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त करोगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

इति दत्त्वा वर तेभ्यो गतोऽसौ तपसे वनम् ।
तेपि सर्वे तपस्तेपु मालवद्गिरिमूर्द्धसु ॥ ४८ ॥
सस्त्रीकाश्च तपोनिष्ठा उञ्छवृत्तिपरायणा ।

इस प्रकार अपने उन आज्ञाकारी पुत्रों को वरदान देकर महर्षि विश्वामित्र तपस्या करने के लिय वनमे चले गये। उनके जाने के बाद वे उञ्छवृत्ति परायण मानस ऋषि भी अपनी स्त्रियों सहित मालवद् (मालावन्त या मालखेत) पर्वत शिखर पर तपस्या करने लगे ॥ ४८ ॥

* * *

॥ अष्टत्रिंशोऽध्याय ॥

देव्युवाच—

पूर्वजानान्तु सर्वेषा नामानि मम सन्निधौ ।
त्वया च कथितान्येव श्रुतानि च मया किल ॥ १ ॥

मानसपुत्रों मे बडे पचास के नाम तो आपने मुझे बतलाये और मैं वे सुन चुकी किन्तु अब आप— ॥ १ ॥

अपरेषा तथा देव ! कथयस्व समासत ।
तेषा श्रवणमात्रेण तृप्तिर्मे जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥

देव ! छोटे अन्य मानसपुत्रों के नाम भी मुझे बतलाइये, जिनको सुनने से मेरी इस कथाविषयक तृप्ति हो सके ॥ २ ॥

महादेव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि नामानि निखिलानि च ।
पंचाशततमानां च यथा वै क्रमशोऽधुना ॥ ३ ॥

देवि ! अब मैं अवशेष पचास मानसपुत्रों के सब नाम क्रमशः बतलाता हूँ, तुम सुनो ॥ ३ ॥

मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान् ।
अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रुः कालपथस्तथा ॥ ४ ॥
कमलश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः ।
उलूको यमदूतश्च तथर्षिसैन्धवायनः ॥ ५ ॥
पर्णजङ्घश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः ।
ऋषिर्वज्रस्तथाख्यातः सालंकायन एव च ॥ ६ ॥
लीलाढ्यो नारदश्चैव तथा कूर्चामुखः स्मृतः ।
वादुलिसुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च ॥ ७ ॥
आङ्घ्रिको नैकदृक् चैव शिलायूपः सितः शुचि ।
चक्रकोमारुतन्तव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायनः ॥ ८ ॥
श्यामायनो यतिश्चैव जाबालिसुश्रुतस्तथा ।
कारीषिरथ संश्रुत्य परपौरवतन्तवः ॥ ९ ॥
महानृषिश्च कपिलः तथर्षिस्ताडकायनः ।
तथैव चोपमहनस्तथर्षिश्चासुरायणः ॥ १० ॥
मार्दमर्षिहिरण्याक्षो जंगारिर्बाभ्रवायणिः ।
भूतिविभूतिसूतश्च सूरकृत्तु तथैव च ॥ ११ ॥
अरालिर्नाचिकश्चैव चाम्पेयश्च महानृषिः ।
एते चापरश्रेणिस्थाः गुरोराज्ञाप्रवर्तिनः ॥ १२ ॥

१—मधुछन्द
२—देवरात
३—अक्षीण
४—शकुन्त
५—बभ्रु
६—कालपथ
७—क्रमल
८—स्थूण
९—उलूक
१०—यमदूत
११—सैन्धवायन
१२—पर्णजङ्घ
१३—गालव
१४—वज्र
१५—सालंकायन
१६—लीलाढ्य
१७—नारद
१८—कूर्चामुख
१९—वादुलि
२०—मुसल
२१—वक्षोग्रीव
२२—आङ्घ्रिक
२३—नैकदृक्
२४—शिलायूप
२५—चक्रक
२६—मारुतन्तव्य
२७—वातघ्न
२८—अश्वलायन
२९—श्यामायन
३०—यति
३१—जाबालि
३२—सुश्रुत
३३—कारीषी
३४—सश्रुति
३५—पौरवतन्तु
३६—कपिल
३७—ताडकायन
३८—उपसहन
३९—असुरायण
४०—मार्दमर्षि
४१—हिरण्याक्ष
४२—जंगारि
४३—बाभ्रवायणि
४४—भूति
४५—विभूति
४६—सूत
४७—सुरकृत
४८—अराति
४९—नाचिक
५०—चाम्पेय

दूसरी श्रेणिमें उपर्युक्त गुरु की आज्ञा मानने वाले पचास मानसोत्पन्न मधुच्छन्दादि ऋषि थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यान्यपि महामाये ! नामानि कर्मजानि च ।
सन्ति तेषां वरारोहे ख्यातानि भुवि सर्वतः ॥ १३ ॥

वरारोहे महामाये ! इन ऋषियों के और भी कर्मज नाम हैं जो पृथ्वी पर सर्वत्र विख्यात हैं ॥ ३ ॥

देवल उवाच—

महेशवचनं श्रुत्वा पार्वती शिववल्लभा ।
पप्रच्छ परया भक्त्या तेषां नामानि सादरात् ॥ १४ ॥

शिववल्लभा पार्वती ने भगवान शिव का वचन सुनकर सादर भक्ति पूर्वक उनके कर्मज नामों का वृतान्त पूछा ॥ १४ ॥

देव्युवाच—

भगवन् श्रोतुमिच्छामि नामानि कर्मभि· सह ।
तेषान्तु विप्रमुख्यानां कथयस्व समासतः ॥ १५ ॥

भगवन् ! मैं इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों के कर्मज नाम सुनना चाहती हूँ अतः मुझे बतलाइये ॥ १५ ॥

इति श्रुत्वा वचो विप्र ! पार्वत्याः भगवान् हरः ।
कथयामास सर्वाणि कर्माणि च महात्मनाम् ॥ १६ ॥

विप्र ! भगवान शंकर ने पार्वती के उपर्युक्त वचन को सुनकर उन महात्माओं का चरित्र चित्रण किया ॥ १६ ॥

महादेव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि चेतिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥ १७ ॥

देवि ! सुनो । मैं तुम्हें पुरातन इतिहास बतलाऊंगा, जिसके श्रवण मात्र से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

त्रेतायाः प्रथमे भागे ऋचीकोऽभून्महातपाः।
तस्यासीद्ब्रह्मवर्चस्वी यमदग्निर्मुनिर्महान् ॥ १८ ॥

त्रेताके प्रथम भाग में ऋचीक नामक बडेभारी तपस्वी हुए हैं। उनके पुत्र यमदग्नि भी महान् मुनि थे ॥ १८ ॥

तस्य पत्नी महाभागा रेणुका नाम नामतः।
रूपलावण्यसंयुक्ता पतिव्रतपरायणा ॥ १८ ॥

यमदग्नि की महाभागा पत्नी का नाम रेणुका था। वह रूप लावण्य संयुक्ता और पतिव्रत परायणा थी ॥ १८ ॥

तस्याश्चत्वार एवासन् पुत्राश्चाग्निमुखोपमाः।
तेषामवरजो धीरो नारायणकलायुतः ॥ १९ ॥
पितुः प्रियतरो नित्यं पितृसेवापरायणः।
नित्यं पर्यचरत्तातं मातरं च तथाविधम् ॥ २० ॥

उसके अग्निमुख के समान तेजस्वी चार पुत्र थे। उनमे छोटा अत्यन्त धीर और नारायण-कलासे युक्त था। पितृसेवापरायण वह अपने पिता को अत्यन्त प्यारा था। वह नित्य माता पिता की सेवा करता था।

एकदा सा महाभागा ऋतुस्नानार्थमाययौ।
नर्मदा रजनिशेषे चैकाकी च तपस्विनी ॥ २१ ॥

एक बार महाभागा रेणुका प्रातः नर्मदा के तट पर ऋतुस्नान के लिये अकेली ही गई ॥ २१ ॥

तत्र स्नाता महादेवि ! निर्मलैर्वारिभिर्मुदा।
दृष्ट्वा सा महदाश्चर्यं महत्कौतूहलं प्रिये ॥ २२ ॥

प्रिय महादेवी ! वहां नर्मदा के निर्मल जल में स्नान कर आश्चर्य जनक कौतूहल को देखकर — ॥ २२ ॥

निममर्दष्टि सा तत्र ददर्श पतिकौतुरम्।
रेवाया दक्षिणे कूले रावणो नाम राक्षसः ॥ २३ ॥

यज्ञार्थं तत्र संभारं संचयामास हर्षितः ।

उसने नीची दृष्टि कर पति का कौतुक देखा । नर्मदा के दक्षिण तट पर रावण नामक राक्षस ने यज्ञ के लिये सामग्री इकट्ठी की ॥ २३ ॥

अर्जुनोपि समायातस्तत्रैव भुजसहस्रवान् ॥ २४ ॥

नारीभिश्चैव बहुभिर्जले क्रीडयितुं प्रिये ।

सोपि तत्र महाभागे क्रीड़ां चक्रे यथाविधाम् ॥ २५ ॥

महाभागे, प्रिये ! सहस्र भुजाओं से युक्त अर्जुन भी स्त्रियों सहित जल क्रीड़ा के लिये वहीं आगया । उसने भी यथाविधि जल क्रीड़ा की ।

तस्य सहस्रभुजानान्तु तुंगात्सम्पातनादपि ।

जलोत्सारमभूत्तत्र तेनैव यज्ञ-संभरः ॥ २६ ॥

प्लावितस्तत्क्षणादेवि ! ततो रुष्टो दशाननः ।

दष्टोष्टपुटः सोपि सहस्राऽर्जुनसाह्वयत् ॥ २७ ॥

देवि ! अर्जुन की हजारों भुजाओं के ऊपर नीचे गिरने से जल का निरोध होगया जिससे रावण की यज्ञ सामग्री जलमग्न होगई । उससे रावण क्रोधित हुआ । उसने होठ काटते हुए सहस्रार्जुन को ललकारा ॥ २६ ॥ २७ ॥

भर्त्सितो बहुभिर्वाक्यैः रावणेनार्जुन किल ।

तदैव चार्जुनो रुष्टो बबन्ध च दशाननम् ॥ २८ ॥

रावण ने नाना वाक्यों से अर्जुन की भर्त्सना की । रावण की भर्त्सना से अर्जुन रुष्ट होगया । उसने रावण को बान्ध लिया ॥ २८ ॥

नीत्वा स्वभवनं देवि ! नारीभिश्च ययौ मुदा ।

सापि गत्वा गृहं बाला विलम्बाद्भयविह्वला ॥ २९ ॥

अर्जुन रावण को अपने घर लेगया । वह प्रसन्नमन अपनी स्त्रियों सहित चला गया । वह रेणुका भी देरी के कारण डरती हुई अपने घर गई ।

तामायान्तीं समालोक्य मुनिः क्रोधसमाश्रितः ।

शंकमानः परेणात्र व्यभिचारमभूत्ततः ॥ ३० ॥

उसको आती हुई देखकर मुनि यमदग्नि क्रोधित हुए। उन्होंने सोचा, अवश्य कहीं व्यभिचार हुआ है॥ ३०॥

नारीणां नैव विश्वासः कर्तव्यो धीमता क्वचित्।
स्त्रियो वदन्ति सस्नेहं हन्तुमिच्छन्ति ता सदा॥ ३१॥

बुद्धिमान आदमी को स्त्रियों का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि ये जिससे प्रेमपूर्वक भाषण करती हैं उसीको मारना चाहती हैं॥ ३१॥

इत्येव मनसा देवि! चिंतयित्वाब्रवीत्सुतान्।
रे रे पुत्रा मदीयं च वचनं कुरुतानिशम्॥ ३२॥
परपुरुषरता ह्येषा स्वच्छन्दचारिणी।
अभ्याति विलम्बेन कालर्नाकान्तोऽधुनार्चने॥ ३३॥
तस्मादेनां महाभागा घ्नन्तु यूयं ममाज्ञया।

देवि! इस प्रकार अपने मन में सोचकर ऋषि यमदग्नि ने अपने पुत्रों से कहा—अरे महाभाग पुत्रो! तुम हमेशा मेरे वचन का पालन करो। यह परपुरुषरता और स्वैरिणी है। इसके देरी करने के कारण ही पूजा का समय टल गया अतः तुम मेरी आज्ञा से इसको मारडालो॥ ३२॥ ३३॥

जनकस्य वचः श्रुत्वा न ते मजगृहुः सुताः॥ ३४॥

पिता का वचन सुनकर भी उन पुत्रों ने उसका पालन नहीं किया॥ ३४॥

ततश्चुकोप विप्रर्षिर्यमदग्निर्महातपाः।
तत्रैवागतवान् रामो कन्दमूलफलैर्युतः॥ ३५॥

अपने पुत्रों द्वारा हुई अवज्ञा से महान् तपस्वी यमदग्नि अत्यन्त क्रोधित हुए। उसी समय कन्दमूलफल लेकर परशुराम वहां पहुँच गये॥ ३५॥

दृष्ट्वा पुत्रवरं सोपि प्रोवाच मुनिपुंगवः।
रे तात जहि सर्वांस्त्वं ममाज्ञाविमुखान्सुतान्॥ ३६॥
स्वमात्रा सहितान्नूनं येन श्रेयो भवेत्तव।
इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सशस्त्र्य जघान ह॥ ३७॥

अपने श्रेष्ठपुत्र परशुराम को देखकर मुनिश्रेष्ठ यमदग्नि ने कहा—"पुत्र मेरी अवज्ञा करने वाले मेरे इन पुत्रों को अपनी माता सहित मारडालो जिसमें तुम्हारा कल्याण होगा।" पिता का यह वचन सुनकर परशुराम ने तत्काल सब को मारडाला ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा घोरतरं तस्य कर्म चापि सुतस्य तत्।
हर्षशोकयुतः श्रीमानुवाच ह्यात्मनः सुतम् ॥ ३८ ॥

अपने पुत्र के उस घोरतर कर्म को देखकर हर्ष और शोक से युक्त श्रीयुक्त यमदग्नि ऋषि ने अपने पुत्र परशुराम से कहा—॥ ३८ ॥

यमदग्निरुवाच—

त्वमेव वत्स धन्योऽसि पितुराज्ञामपीपलः।
वरं वरय भद्रं ते यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ३९ ॥

वत्स! तुम्हीं धन्य हो। तुमने पिता की आज्ञा का पालन किया है। तुम मन वाञ्छित वर मांगो। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३९ ॥

तच्छ्रुत्वा पितुरादेशं वव्रे वरमनुत्तमम्।

राम उवाच—

वरं ददासि यत्तात सर्वास्त्वं जीवयाधुना ॥ ४० ॥

पिता की आज्ञानुसार परशुराम ने उपयुक्त वर की याचना की। उन्होंने अपने पिता से कहा—तात! यदि वर देते हो तो इनको अभी जीवित कर दीजिये ॥ ४० ॥

तदा सुतवचो देवि! यमदग्निर्महातपा।
श्रुत्वा संजीवयामास सहमात्रा सुतान्त्वरा ॥ ४१ ॥

देवि! महातपा यमदग्नि ने अपने पुत्र का वचन सुनकर अपने पुत्रों को उनकी माता सहित तत्काल जीवित कर दिया ॥ ४१ ॥

परस्परं समालोक्य पप्रच्छुर्निजमातरम्।
किमम्बे च त्वया दृष्टं सत्यं वा स्वप्नमेव वा ॥ ४२ ॥

तत्सर्वं कथ्यतां भद्रे यत्ते मनसि रोचते ।

जीवित हुए यमदग्नि के उन पुत्रों ने परस्पर एक दूसरे को देख कर अपनी माता से पूछा—कल्याणकारिणी मात ! क्या यह सत्य था ? अथवा स्वप्न था ? आप अपने मनोगतभाव हमें बतलाइये ॥ ४२ ॥

तच्छ्रुत्वा चाब्रवीद्रामो भद्रं वो भवतात्सदा ॥ ४३ ॥

ननाम पितरौ भ्रातॄन्तस्थौ तत्राग्रत सुधी ।

यह सुनकर परशुराम ने कहा—आपका सदा कल्याण हो । इसके बाद उन्होंने अपने माता पिता और भाइयों को प्रणाम किया । फिर वे उन सबके सामने खड़े होगये । ॥ ४३ ॥

यमदग्निर्कनीयासं सुतमाघ्रायमूर्द्धनि ॥ ४४ ॥

उवाच परमप्रीत सर्वेषां किल शृण्वताम् ।

महर्षि यमदग्नि ने अपने छोटे पुत्र परशुराम का सिर सूंघकर प्रसन्नता पूर्वक सबको सुनाते हुए कहा— ॥ ४४ ॥

शृणु वत्स महाभाग वचनं धर्मसंयुतम् ॥ ४५ ॥

महाभाग पुत्र ! तुम धर्म-युक्त वचन सुनो ॥ ४५ ॥

नैव पूर्वकृत तात न करिष्यन्ति चापरे ॥

पितृभ्रातृस्वसृस्त्रीणां पुत्राणां मातुलस्य च ॥ ४६ ॥

वधं विप्रगवां राज्ञो गुरूणां बालस्य च ।

कर्त्तारो नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४७ ॥

पुत्र ! पहले किसीने किया नहीं और अन्य करेंगे नहीं । पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, मातुल विप्र, गौ, गुरु राजा और बालकों का वध करने वाले यावच्चन्द्र दिवाकर नरक में जाते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

त्वया चात्र कृत तात मातृभ्रातृवधं सुत ।

तस्मात्त्वया विधातव्य भूम्या पर्यटनं मुदा ॥ ४८ ॥

प्यारे पुत्र ! तुमने माता और भाइयों का वध किया है । अत तुम्हें

प्रसन्नता पूर्वक पृथ्वी का पर्यटन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

देवेभ्यो यजनं वत्स पितॄणां श्राद्धतर्पणम् ।
तदा त्वं मोक्ष्यसे तात पापादस्मान्नसंशयः ॥ ४९ ॥

प्यारे वत्स ! जब तुम देवताओं के लिये यजन और पित्रेश्वरों के लिये श्राद्धतर्पण करोगे तभी इस पाप से छुटकारा पा सकोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥

एवं संशिक्षितो राम ऋषिणा परधार्मिणा ।
चकार विधिवत्सर्वं यथाकालानुसारतः ॥ ५० ॥

इस प्रकार अत्यधिक धार्मिक ऋषि यमदग्नि द्वारा उपदिष्ट परशुराम ने समयानुसार सभी कुछ विधि पूर्वक सम्पन्न कर अपने पिता की आज्ञा का पालन पूर्ववत् किया ॥ ५० ॥

ननाम पितरौ ज्येष्ठाञ्जगाम क्षितिमण्डलम् ।
परिक्रान्ता हि रामेण सप्तद्वीपवती मही ॥ ५१ ॥

परशुराम ने अपने माता पिता और भाइयों को प्रणाम किया, फिर वे पृथ्वी पर्यटन के लिये निकल गये । उन्होंने सात द्वीपों वाली पृथ्वी की परिक्रमा की ॥ ५१ ॥

पद्भ्यां ददर्श धर्मज्ञ ह्यधःशायी फलाशनः ।
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि विष्णोरायतानि च ॥ ५२ ॥

धर्मज्ञ परशुराम ने जमीन पर सोते हुए, पैदल भ्रमण करते हुए, तीर्थ क्षेत्र और प्रधान प्रधान मन्दिरों के दर्शन किये ॥ ५२ ॥

यमदग्निर्महाभागो गतो देवालयं प्रति ।
चकार नैत्यिकं तत्र माध्यं सन्ध्यादिकं महत् ॥ ५३ ॥

महानुभाव यमदग्नि ने देव मन्दिर जाकर नैत्यिक कार्यों को सम्पन्न किया ॥ ५३ ॥

* * *

॥ एकोनचत्वारिंशतमोऽध्याय ॥

देव्युवाच—

भगवन्वर्णयाशु त्व राम किंकृतवान्कुत ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवत परमात्मन ॥ १ ॥

भगवन् ! शीघ्र बतलाइये कि परशुराम ने कहा क्या किया ? परशुराम का समस्त चरित्र उत्कृष्ट आत्मायुक्त आपसे सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

शिव उवाच—

सर्वं तवाग्रे ह्येतद्य यामदग्न्यकृत च यत् ।
वर्णयामि महाभागे शृणु त्व प्राणवल्लभे ॥ २ ॥

महाभागे प्राणवल्लभे ! जो कुछ परशुराम ने किया उसका समस्त वृतान्त मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥

एकदा स महामाये भ्रमयित्वा महीमिमाम् ।
मालावन्तं जगामासौ लोहार्गलसमन्वितम् ॥ ३ ॥

महामाये ! एक बार परशुराम समस्त पृथ्वी पर घूमकर लोहार्गल से युक्त मालावन्त पर्वत पर गये ॥ ३ ॥

तत्र दृष्ट मुनिं शान्तमृचीकं लोकविश्रुतम् ।
पितामह स्वकीयं च ब्राह्मे ह्यृषिसत्तमम ॥ ४ ॥

वहा लोहार्गल युक्त माला पर्वत पर उन्होंने अपने पितामह, ब्रह्मपरायण ऋषिश्रेष्ठ लोक विश्रुत शान्त मुनि ऋचीक को देखा ॥ ४ ॥

ननाम विधिवद्भक्त्या हर्षेण च परिप्लुत ।
सोपि राम परिष्वज्य चाङ्कमारोप्य सत्वरम् ॥ ५ ॥
प्रेमवारिपरिस्नातमजिघ्रन्छिरसि, तत ।
पप्रच्छ कुशलं सर्वं स्वात्मजाना महामुनि ॥ ६ ॥

सहर्ष परशुराम ने विधिपूर्वक महर्षि ऋचीक को प्रणाम किया । महर्षि ऋचीक ने भी आलिंगन पूर्वक परशुराम को अपनी गोदी मे बैठाकर

प्रेमाश्रु वहाते हुए उनका सिर सूंघा फिर इन्होंने अपने आत्मीय जनों का कुशल प्रश्न पूछा ॥ ५ ॥ ६ ॥

रामोपि सकलं तस्मै वर्णयामास यत्कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा विमना सोपि वभूव मुनिसत्तमः ॥ ७ ॥

परशुराम ने जो कुछ किया था वह सब अपने पितामह को बतला दिया, जिसे सुनकर मुनिश्रेष्ठ ऋचीक खिन्न होगये ॥ ७ ॥

ततः पौत्रं मुनिश्रेष्ठो यज्ञकर्तुमुपादिशन् ।
प्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थं वैष्णवं मखमारभत् ॥ ८ ॥

मुनिश्रेष्ठ ऋचीक ने अपने पौत्र परशुराम को यज्ञ करने का आदेश दिया । परशुराम ने भी प्रायश्चित्त की शुद्धि के लिये विष्णुयाग का प्रारंभ किया ॥ ८ ॥

इन्द्रादयः सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
शक्तिभिस्सहितास्तत्र स्वाजग्मुः स्वपुरोहिताः ॥ ९ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रादि समस्त देवगण अपनी अपनी शक्तियों को साथ ले पुरोहितों सहित उस यज्ञ में पधारे ॥ ९ ॥

मारीचं कश्यपं देवि ! ह्याचार्यमुपकल्पयत् ।
वसिष्ठमपि चाध्वर्यं ब्रह्माणमृषिशृंगिकम् ॥ १० ॥
होतारं कौशिकं भद्रे भरद्वाजं सभासदम् ।
अन्यानपि महादेवि ! ऋत्विजस्तत्रवासिनः ॥ ११ ॥
विश्वामित्रप्रियास्ते च मधुछन्दादि संज्ञका ।
तत्रैवाश्रमिणो भूत्वा तिष्ठन्ति सर्वदा प्रिये ॥ १२ ॥

महादेवि पार्वती ! उस यज्ञ में मरीचि के पुत्र कश्यप को आचार्य, वसिष्ठ को अध्वर्य, शृंगी ऋषि को ब्रह्मा, कौशिक को होता, भरद्वाज को सभासद और विश्वामित्र के प्यारे पुत्र मधुछन्दादि ऋषियों को जो सदा वहीं आश्रम बनाकर रहते थे—ऋत्विज बनाया गया ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

रामो धर्मभृता श्रेष्ठो यजमानोऽभवन्मुदा ।
यस्य यद्विहित कर्म तत्तत्कर्म समारभेत् ॥ १३ ॥

धर्मधारियों मे श्रेष्ठ परशुराम सहर्ष यजमान हुए । जिसके लिये जो काम विहित था उसने उसको प्रारभ कर दिया ॥ १३ ॥

समाप्ते क्रतुराजेत्ववभृथस्नानमाचरेत् ।
देवा सर्वे गता स्वर्गं भागं मुक्त्वा मुदान्विता ॥ १४ ॥

उस यज्ञ के समाप्त होने पर परशुराम ने अवभृथ स्नान किया । समस्त देवगण सहर्ष अपना अपना भाग लेकर स्वर्ग को चले गये ॥ १४ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव गता सर्वे समर्चिता ।
ऋत्विजो बहुधन नीत्वा स्वाश्रमान्मुदिता गता ॥ १५ ॥

समर्चित ऋषि मुनि अपने अपने स्थानों को चले गये । ऋत्विज लोग भी बहुत-सा धन लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने आश्रमों को गये ॥ १५ ॥

ब्रह्मादिभ्यो दिश सर्वा विदिशाश्चापि साम्प्रतम् ।
क्रमात्तेभ्यो ददौ राम कश्यपाय तु मध्यमाम् ॥ १६ ॥
महीमेव विभज्यैव सर्वा सर्वविदो ददौ ॥ १७ ॥

अब परशुराम ने ब्रह्मादि को पृथ्वी की दिशा और विदिशायें क्रमश देदी तथा कश्यप को पृथ्वी का मध्यम भाग देदिया । इस प्रकार सर्वज्ञ परशुराम ने सबको सब कुछ दे डाला ॥ १६ ॥ १७ ॥

तत्रस्था ऋत्विजो ये च भरद्वाजस्य मानसा ।
न ते सजगृहुर्देवि ! धन च बहुविस्तरम् ॥ १८ ॥

देवि ! वहीं के निवासी महर्षि भरद्वाज के मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों ने पर्याप्त धन भी दक्षिणा मे नहीं लिया ॥ १८ ॥

तत्र रामोप्यभूद्देवे ह्युदासीनो भयातुर ।
संवर्णिता समाहूता सर्वे यज्ञविदो द्विजा ॥ १६ ॥

निमंत्रिता न गृह्णन्ति यज्ञवैयर्थ्यकारकाः ।
तस्मादेतान्ददाम्यद्य यज्ञसाफल्यकारणे ॥ २० ॥

भद्रे ! उस समय भयातुर परशुराम उदासीन होगये । उन्होंने सोचा । वरण किये हुए, सभी द्विज यज्ञ विधान के वेत्ता, निमंत्रित हैं । ये दक्षिणा नहीं लेते, इससे यज्ञ विफल होता है अतः यज्ञ को सफल करने के लिये आज इनको दक्षिणा अवश्य दूंगा ॥ १९ ॥ २० ॥

एवं विचार्यमाणः स कश्यपं विनिवेदयेत् ।
तच्छ्रुत्वा कश्यपो धीमान्नृषींश्चैव समाह्वयत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार विचारकर परशुराम ने कश्यप से निवेदन किया । परशुराम का वचन सुनकर बुद्धिमान कश्यप ने उन मधुछन्दादि ऋषियों को बुलाया ॥ २१ ॥

उवाच मधुरं धीमान् धर्मयुक्तं सभासदाम् ।

बुद्धिमान कश्यप ने सभासदों के बीच में मधुर वाणी से धर्मयुक्त वचन कहा ।

कश्यप उवाच—

शृणुध्वं मम सर्वज्ञा वचनं केशवप्रियः ॥ २२ ॥
ब्राह्मणाः मुखतो जाताः वर्णानां गुरवोऽनिशम् ।
प्रतिगृह्णन्ति ते दानं प्रतियच्छन्ति तेपि च ॥ २३ ॥

सर्वज्ञ महानुभावो ! केशव प्रिय मेरा वचन सुनो । ब्राह्मण भगवान के मुख से उत्पन्न हुए हैं और वे सदा ही वर्णों के गुरु हैं । वे दान लेते हैं और देते भी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्ये तु दानिनो वर्णाः न प्रतिग्राहिणोपि ते ।
अयमेव महीपालो विप्राणां कुलपोषकः ॥ २४ ॥
अतो गृह्णन्तु धर्मज्ञा यदयं श्रद्धया ददेत् ।
नो वा तस्मै करं विप्राः प्रतियच्छन्तु भूमिजम् ॥ २५ ॥

अन्य वर्णत्रय तो केवल दान देने वाले है, लेने वाले नहीं। यह राजा ब्राह्मण कुल का पोषक है। इसलिये आप लोग इसके द्वारा श्रद्धापूर्वक प्रदत्त याज्ञिकी दक्षिणा को ग्रहण करो। आप लोग तो धर्म को जानने वाले हैं, अन्यथा फिर इसको भूमिकर दो ॥ २४ ॥ २५ ॥

महादेव उवाच—

एवं ते बोधिता भद्रे! कश्यपेन महात्मना।
गृह्णीमोऽत्र नय तात यत सम्प्रेरको भवान् ॥ २६ ॥

भद्रे पार्वती! इस प्रकार महात्मा कश्यप द्वारा प्रबुद्ध उन ऋषियों ने कहा—जब आप हमें प्रेरणा प्रदान करते हैं तो हम यज्ञ की दक्षिणा ग्रहण कर लेंगे ॥ २६ ॥

नेत्राभ्यां बोधितो रामस्तत्क्षणे स तु हर्षित।
दृष्ट्वा रामोऽवशिष्टां तां वेदीं स्वर्णमयीं शुभाम् ॥ २७ ॥
चतुरस्रां समानाङ्गीं नानारत्नैर्युतां तदा।
जग्राह परशुं तीक्ष्णं वेदीखण्डानचीकरोत् ॥ २८ ॥

कश्यप द्वारा नेत्र संकेत पाकर उस समय परशुराम परम प्रसन्न हुए। उस समय परशुराम ने चारों ओर से समान नाना रत्नों से युक्त सुन्दर स्वर्णमयी वेदी को अवशिष्ट देखकर अपना परशु उठाया और उस वेदी के टुकडे करडाले ॥ २७ ॥ २८ ॥

दशव्यायामविस्तीर्णां सर्वतः समभागिकाम्।
नवोत्सेधां समामाद्य खण्ड खण्ड पृथक् पृथक् ॥ २९ ॥

दश चालिस लम्बी चौडी सर्वत्र समान नूतन निर्मित उस वेदी के अलग अलग खण्ड कर दिये गये ॥ २९ ॥

सप्तखण्डान्पुरा कृत्वा पुनश्चैकं तु सप्तधा।
एकोनपचाशततमा खण्डा स्युश्चात्र शोभना ॥ ३० ॥

उस वेदी के पहले सात खण्ड किये गये, फिर एक एक के सात सात खण्ड

किये गये। इस प्रकार उस वेदी के कुल उनचास सुन्दर खण्ड होगये (१×७ =७, ७×७=४९)

एकस्मै भागमेकं च ददौ रामस्तु पूजिते।
एकस्य नैव संशिष्टो भागश्चैकतरस्तदा ॥ ३१ ॥

परशुराम ने यथाविधि पूजित एक एक को एक एक खण्ड देदिया किन्तु उस वेदी के उनचास ही खण्ड हुए थे वे ऋषि सख्यामें पचास थे अतः एक ऋषि को देने के लिये वेदी-खण्ड न बचा ॥ ३१ ॥

तदा सर्वैः कृता चिन्ता किंकृतं धर्मनाशनम्।
एवं चिन्तातुरान्दृष्ट्वा ह्यासीद्वागशरीरिणी ॥ ३२ ॥

उस समय सभी ने चिन्ता प्रकट की कि-'क्या यह धर्म नाश होगा !' इस प्रकार उन सबको चिन्तातुर देखकर आकाशवाणी हुई ॥ ३२ ॥

वृथा खिद्यथ भो विप्राः पूज्योयं वश्च सर्वदा।
भविष्यति महाभागा नाम्ना चैव तु खण्डलः ॥ ३३ ॥

महाभाग विप्रो ! आप लोग व्यर्थ ही दुखी होते हो। यह अवशिष्ट आप सबका सदा पूज्य होगा और इसका नाम भी खण्डल ही होगा ॥ ३३ ॥

तेपि सर्वे ततः क्षोण्यां खण्डलाः स्युर्द्विजोत्तमाः।
येन क्रीताश्च ते खण्डाः सोपि वैश्यस्तु खण्डलः ॥ ३४ ॥

इसके बाद वे समस्त द्विजोत्तम पृथ्वी पर खण्डल नाम से विख्यात हुए और जिस वैश्य ने उन खण्डों को खरीदा वह भी खण्डल कहलाया ॥ ३४ ॥

अस्यैव वैश्यवर्यस्य पूज्याश्चैते तु सर्वदा।
नावमान्या कदा तेपि तस्य श्रेयपरिप्सव ॥ ३५ ॥

वे द्विजोत्तम खण्डल उस खण्डक्रेता वैश्य के लिये सदा पूज्य हैं। उसे उनका कभी अपमान न करना चाहिये क्योंकि वे उसका कल्याण चाहने वाले है ॥ ३५ ॥

शुनःशेपो विजातीयस्ततो जाताः विजातयः।

शुनःशेप त्रिजातीय था अतः त्रिजातियां उत्पन्न हुईं।

तेषामपि महा पूज्या खण्डला द्विजसत्तमाः ॥ २६ ॥

अतस्तेषां महा श्रेयो भविष्यति युगे युगे ॥

उन त्रिजातियों के लिये भी द्विज श्रेष्ठ खण्डल महा पूज्य हैं। इससे उनका युग युग में कल्याण होगा।

एष ते खण्डला देवि! विख्याता ब्राह्मणा भुवि ॥ ३७ ॥

जामदग्न्येस्तु ते पूज्या यज्ञपाटे प्र पूजने ।

देवि! इस प्रकार वे ब्राह्मण पृथ्वी पर खण्डल नाम से विख्यात हुए। यज्ञ में वे परशुराम के पूज्य थे ॥ ३७ ॥

यज्ञजातानि नामानि तेषां सन्ति बहूनि च ॥ ३८ ॥

तानि सर्वाणि ते देवि! कथितानि मया शृणु।

देवि! उनके यज्ञजात नाम भी बहुतसे हैं। ये नाम अब मैं तुम्हें बतलाऊंगा। सुनो ॥ ३७ ॥

* * *

॥ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

महादेव उवाच—

शृणु नामानि सर्वे ते तेषान्तु कर्मजानि च ।

मया प्रकाशिता देव कन्दर्पो भूमिकर्म जात ॥ १ ॥

देवी पार्वती तुम्हारा कल्याण हो। इन मानसोत्पन्न बहुविध कर्मजन्य ऋषियों के कर्मज नाम मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ १ ॥

विश्वामित्रस्यिदात्रे च भरद्वाजमनेऽङ्गरा ।

सर्वज्ञा चतुरात्मा सर्वे वेदज्ञा यज्ञतत्पराः ॥ २ ॥

भरद्वाज मानसोत्पन्न थे परि विश्वामित्र को पाले थे। वे सर्वज्ञ, चतुर, सब वेद को जानने वाले और यज्ञ में तत्पर थे ॥ २ ॥

मठालयो वटाहारः श्रोत्रियस्सामरस्तथा ।
ज्योतिर्विदो रणोद्वाही विल्ववान् विल्व एव च ॥ ३ ॥
कुञ्जवाट् सेवधिश्चौलो मण्डगिरः सुन्दरोपि च ।
झपनाव्यश्चरुस्थाली गोधूलीयोथ गोरसः ॥ ४ ॥
कुकुंनादो भूमरश्च वटोधा कच्छवानिति ।
शिवोद्वाही च शुभगे भट्टीवानथ गोवलः ॥ ५ ॥
वशीवान् मंगलहरो वृगोलो वोचीवानथ ।
गुञ्जावाटः प्रवालश्च हूचरो नवहालकः ॥ ६ ॥
वांठोलिकश्च शुभगे पिप्पलः श्मश्रुलोपि च ।
त्रिवारी च पराशालो वट्टवान् वनशाचिकः ॥ ७ ॥
भूमरट्टंकहारी च ग्रजमेधाथ डिण्डिमः ।
निधानीयो दर्भशायी निष्ठुरो व्यवहारकः ॥ ८ ॥
शाकुनश्च विभाजीयः सिंहोटकस्तथैव च ।
एते चात्मविदः सर्वे शिलोञ्छपरिजीविनः ॥ ९ ॥

१—मठालय (माठोलिया)
२—वटाहार (वुढ़ाढ़रा)
३—श्रोत्रिय (सोती)
४—सामर (सामरा)
५—ज्योतिर्विद् (जोशी)
६—रणोद्वाही (रणावा)
७—विल्ववान् (वीलवाल)
८—विल्व (वील)
९—कुञ्जवाट् (कुँजावड़ा)
१०—सेवधि (सेवदा)
११—चौल (चोटिया)
१२—मण्डगिर (मण्डगिरा)
१३—सुन्दर (सुन्दरिया)
१४—झपनाव्य (झखनाड़िया)
१५—चरुस्थाली (रून्थला)
१६—गोधूलीय (गोधला)
१७—गोरस (गोरसिया)
१८—कुकुनाद (कुक्कुलोदा)
१९—भूमर (भूभरा)
२०—वटोधा (वटोठिया)
२१—कच्छवान् (काछवाल)
२२—शिवोद्वाही (सोड़वा)

२३—भट्टीवान् (भाटीवाडा)	३७—पराशाल (पराशला)
२४—गोवल (गोवला)	३८—घट्टवान् (घाटवाल)
२५—वशीवान (वंशीवाल)	३९—वनशायिक (वणमिया)
२६—मगलहर (मगलिहारा)	४०—मूर्भर (मुरटिया)
२७—धूगोल (दुगोलिया)	४१—टकहारी
२८—वोचीवान् (वोचीवाल)	४२—अजमेधा (अजमेरिया)
२९—गुञ्जानाट (गुञ्जानडा)	४३—डिंडिम (डीडवाणिया)
३०—प्रनाल (परनाल)	४४—निधानीय (निटाएया)
३१—हूचर (हूचरिया)	४५—दर्भशायी डाभडा, (डावस्या)
३२—नवहालक (नवहाल)	४६—निष्ठुरा (खडभडा, निठुरा)
३३—वाठोलिक (वांठोलिया)	४७—व्यवहारक (बोहरा)
३४—श्मश्रुल (मुछावला)	४८—निमाजीय (वाटएा)
३५—पीप्पल (पीपलवा)	४९—शाकुनि (शकुन्या)
३६—त्रिवारी (तिवाडी)	५०—सिंहोटक (सिंहोटा)

ये समस्त ऋषि आत्मवेत्ता और शिलोञ्छवृत्ति परायण थे।

तेपुस्ते तप उत्कृष्टं द्वापरान्ते महेश्वरि ।
तत खण्डान्समादाय पत्निभि सह संस्थिता ॥ १० ॥

महेश्वरि ! यज्ञसमाप्ति के बाद उस सोने की वेदी के खण्ड लेकर उन मानसोत्पन्न मधुछन्दादि ऋषियों ने अपनी पत्नियों सहित रहते हुए द्वापर के अन्त में उत्कृष्ट तप किया ॥ १० ॥

इति ते कथित देवि ! विश्वामित्रवसिष्ठयो ।
वैर वै क्रमश सर्वं यथाजात महात्मनो ॥ ११ ॥

देवि ! जिस प्रकार विश्वामित्र और वसिष्ठ में शत्रुता हुई थी वह समस्त वृतान्त मैंने तुम्हें क्रमश बतला दिया है ॥ ११ ॥

हरिश्चन्द्रस्य यज्ञ च परशुरामकथा शुभा ।

संक्षेपतो महाभागे ! यज्ञं चाप्यहमब्रुवम् ॥ १२ ॥
इति ते कथितं देवि ! किमन्यं श्रोतुमिच्छसि ।

महाभागे देवि ! हरिश्चन्द्र के यज्ञ की कथा, परशुराम की कथा तथा उसके यज्ञ की कथा मैं बतला चुका हूँ अब तुम और क्या सुनना चाहती हो ॥ १२ ॥

एवं श्रुत्वा तदा देवि ! शंभोर्वचनमद्भुतम् ॥ १३ ॥
प्रप्रच्छ विनया सापि पुनरेव हरं मुदा ।

इस प्रकार का भगवान शंकर का अद्भुत वचन सुनकर विनयावनता देवी पार्वती ने पुनः प्रसन्नता पूर्वक पूछा ॥ १३ ॥

पार्वत्युवाच—

भगवन्न मया ज्ञातो नाम्ना चार्थस्तु कर्मजः ॥ १४ ॥
तस्मात्त्वमत्र विख्याहि यथाज्ञानं भवेन्मम ।

भगवन् ! मैंने उपर्युक्त मानस ऋषियों के कर्मज नाम तो जान लिये किन्तु उन कर्मज नामों का अर्थ नहीं जाना । अतः आप उनके कर्मज नामों की व्याख्या कीजिये जिससे मुझे ज्ञान हो सके ॥ १४ ॥

इति देव्या समापृष्टो महादेवो महेश्वरः ॥ १५ ॥
उवाच सत्वरं तस्यै नामार्थं क्रमशो द्विज ।

द्विज ! इस प्रकार देवी पार्वती द्वारा पूछे जाने पर महेश्वर शंकर ने शीघ्र ही क्रमशः उन ऋषियों के नामों की व्याख्या उस देवी को बतलाई ॥ १५ ॥

महादेव उवाच—

शृणु भद्रेः समासेन तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥ १६ ॥
यस्य श्रवणमात्रेण नामार्थो बुध्यते त्वया ।

भद्रे ! सुनो । मैं उन ऋषियों के कर्मज नाम समासपूर्वक बतलाता हूँ । जिनके सुनने से तुम्हें नामार्थ का ज्ञान हो जायगा ॥ १६ ॥

यादृक् कर्म कृत येन तादृक् तन्नाम विश्रुतम् ॥ १७॥

जिसने जैसा कार्य किया उसका वैसा ही नाम प्रसिद्ध होगया ॥ १७॥

१ — माठोलिया

मठमालयमासाद्य जजाप जगदीश्वरम् ।
अतो माठालयो भूमौ ब्राह्मण ख्यातिमागत ॥ १८ ॥

मठ नामक स्थान में बैठकर जो जगदीश्वर का जप किय करता था, वह ब्राह्मण पृथ्वी पर मठालय (माठोलिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ १८ ॥

मठालय का माठोलिया रूप समय पाकर बना हुआ है। लोक मे अन्य परिवर्तनों के समान शाब्दिक परिवर्तन भी होते रहते हैं, इसी के अनुसार प्रारंभ का मठालय समय पाकर माठालया और फिर माठोलिया रूप में परिवर्तित हो गया।

२ —बढाढरा

वटकोल समाहृत्य चाहारमनुकल्पयेत् ।
ततस्तस्य समाह्वान वटाहारमिति स्थितौ ॥ १९ ॥

बडबंटे (बरगद के फल) इकट्ठे कर जो ऋषि भोजन करता था, उसे लोग वटाहार (बढाढरा) कहने लग गये ॥ १ ॥

उञ्छवृत्ति परायण ऋषियों मे कन्दमूल खाने का जो प्रचलन था, उसके अनुसार ऋषि लोग स्वेच्छानुसार कन्दमूल भक्षण का चुनाव करते थे।

३ — श्रोत्रिय (सोती)

विप्रेभ्योपि ददौ धीमान् वेदान् साङ्गाननुक्रमात् ।
पाठयित्वा ततो विप्र श्रोत्रियो विश्रुतिं गत ॥ २० ॥

जो बुद्धिमान विप्र छहों अगों सहित अध्यापन द्वारा ब्राह्मणों को वेद ज्ञान प्रदान करता था वह श्रोत्रिय (सोती) के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ २० ॥

४ — सामरा

देवै सह सदा यस्य व्यवहार प्रवर्तते ।

सामरः स तु विख्यातः स्वर्गे वा क्षितिमंडले ॥ २१ ॥

जिस विप्र का लेनदेन देवताओं के साथ रहा करता था, वह स्वर्ग और पृथ्वी मण्डल में सामर (सामरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ २१ ॥

५ — जोशी

ज्योतिर्विदाम्वरो धीरो यज्ञवेलां ददावथ ।

ज्योतिषीति समाख्यातो देवविप्रसभासु यः ॥ २२ ॥

ज्योतिर्विदों में श्रेष्ठ जो विप्र यज्ञ वेला का मुहूर्त देने वाला था, वह देव विप्र सभाओं में ज्योतिषी (जोशी) के नाम से विख्यात हुआ ॥ २२ ॥

एक दीर्घकाल से आर्य हिन्दू समाज में ज्योतिषियों के लिये जोशी शब्द का व्यवहार प्रचलित है। इसी आधार पर ज्योतिर्विद् अथवा ज्योतिष मर्मज्ञ का गोत (सासन या अवटंक) जोशी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

६ — रणवा

रणमुद्वहते योऽसौ यज्ञघ्नैर्दैत्यपुंगवैः ।

यज्ञसंरक्षणायैव रणोद्वाही प्रथां गतः ॥ २३ ॥

जो यज्ञ नाशक दैत्य पुंगवों से युद्ध कर यज्ञ की रक्षा करता था, वह ऋषि रणोद्वाही (रणवाह अथवा रणवा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ २३ ॥

ऋषि समाज में आत्मरक्षण के लिये शस्त्र ग्रहण करना उपयुक्त समझा जाता था। यह श्लोक इसकी पुष्टि करता है।

७ — बीलवाल

सुपक्वानि च विल्वानि यज्ञार्थं संहृतानि च ।

विल्ववानथ स ख्यातो ब्राह्मणेषु द्विजोत्तमः ॥ २४ ॥

जो द्विजोत्तम पके हुए बिल्व फल इकट्ठे कर यज्ञ के लिये लाया करता था, वह ब्राह्मणों में विल्ववान् (बीलवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ २४ ॥

८ — बील

विल्वमाला च शिरसि गले च भुजयोरपि ।

बिल्वमूले स्थितो योऽसौ तस्माद्बिल्व इति श्रुत ॥ ६ ॥

जो सिर, गले और भुजाओं में बिल्व की मालायें धारण करता तथा जो बिल्व के नीचे बैठा करता था, वह इसी कारण बिल्व (बील) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ २५ ॥

६ — कुंजवाड

लतागृहं समाश्रित्य जजाप परमं जपं ।
कुञ्जवाडिति विख्यातो ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम ॥ २६ ॥

लतागृह में बैठकर जिसने उत्कृष्ट जप किया, वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण कुञ्जवाट् (कुञ्जवाड) नाम से विख्यात हुआ ॥ २६ ॥

ऋषि लोग प्रकृति प्रेमी होते थे। उनका बौद्धिक विकास प्रकृति के सान्निध्य से ही होता था। वे लोग लता कुंजों में ही जीवन बिताते थे।

१० — सेवदा

ररक्ष सेवधिं द्रव्यमृषीणां परमाज्ञया ।
तस्मात्स सेवधिर्नामा विख्यातो भुवि ब्राह्मण ॥ २७ ॥

जो ऋषियों की आज्ञानुसार यज्ञीय धन की रक्षा किया करता था, वह ब्राह्मण पृथ्वी पर सेवधि (सेवदा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ २७ ॥

११ — चोटिया

शिखा वृद्धतरा यस्य सर्वांगे लुलिता परा ।
तस्माच्चौल इति ख्यातो भुसुरो भुवि मंडले ॥ २८ ॥

बड़ी भारी चोटी जिसके सारे शरीर पर पड़ी रहा करती थी, वह ब्राह्मण पृथ्वी मंडल में चौल (चोटिया) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ २८ ॥

१२ — मण्डगिरा

मण्डमागिरते नित्यं दन्तहीनो द्विजोत्तम ।
ततो मण्डगिलः ख्यातः सर्वदा भुवि मण्डले ॥ २६ ॥

जो द्विज श्रेष्ठ दन्त हीन होने के कारण प्रति दिन चावलों का माड

पिया करता था, इसी कारण वह पृथ्वी मण्डल में मण्डगिल (मंडगिरा नाम से विख्यात हुआ ॥ २६ ॥

१३ — सुन्दरिया

सुन्दरस्तुन्दिलो योऽसौ त्रिवल्या परिशोभते ।
तेनैव सुन्दरो भूमौ विख्यातो विप्रसत्तमः ॥ ३० ॥

जिस श्रेष्ठ ब्राह्मण की तोंद त्रिवली से सुशोभित थी वह इसी कारण पृथ्वी पर सुन्दर (सुन्दरिया) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३० ॥

१४ — झखनाड़ा

झषनर्तनमालोक्य परमानन्दमात्मनः ।
यो मेने मनसा धीमान् झषनाट्य इति स्मृतः ॥ ३१ ॥

जो बुद्धिमान् ब्राह्मण मछलियों का नृत्य देखकर अपने मन में आनन्द का अनुभव करता था, वह झषनाट्य (झखनाड़ा) नाम से स्मरण किया गया ॥ ३१ ॥

१५ — रून्थला

चरुस्थाली करे कृत्वा प्रजपन्मंत्रमुत्तमम् ।
अजोहवोत्तदा वन्हौ चरुस्थालीति विश्रुतः ॥ ३२ ॥

जो चरुस्थाली को हाथ में लेकर उत्तम मंत्र जपता हुआ अग्नि में आहुतियां दिया करता था वह चरुस्थाली (रून्थला) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥

१६ — गोधला

गोधूली समये नित्यं यो भुनक्ति महामतिः ।
स तद्व्रतप्रभावेण गोधूलिख्यातिमागतः ॥ ३३ ॥

जो महामति गोधूलि वेला में भोजन किया करता था, वह उस व्रत के प्रभाव से नियम पूर्वक व्रत निभाने के कारण गोधूली (गोधला) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३३॥

१७ — गोरसिया

गोतक्रं यः पिबेन्नित्यमन्यदन्नं न भक्षयेत् ।
गोरस इति ख्यातो विप्रः पुण्येन कर्मणा ॥ ३४ ॥

जो नित्य केवल गोतक्र (गाय की छाछ) पिया करता था और दूसरा अन्न नहीं खाता था, वह विप्र अपने पुण्य कर्म से गोरस (गोरसिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३४ ॥

१८ — झुन्झुनाद

यज्ञस्यान्ते च यो नित्यं सामवेदं स्वरान्वितम् ।
धुनोति ब्राह्मणः श्रीमान् झुन्झुनाद इतीरितः ॥ ३५ ॥

यज्ञ समाप्ति पर जो सस्वर सामवेद का गान करता था, वह झुन्झुनाद (झुन्झुनादा) नाम से पुकारा जाने लगा ॥ ३५ ॥

१९ — भूमरा

भूगर्तान्यत्र कुत्रापि दृष्ट्वा भरति यः सदा ।
भूमरः स तु विख्यातः सर्वत्र सुखदो द्विजः ॥ ३६ ॥

जहां कहीं पृथ्वी में गढ्ढों को देखकर जो सदा उनको पाट देता था, सर्वत्र सुख देने वाला वह द्विज भूमर (भमरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३६ ॥

२० — वटोटिया

वटमूलमुपाश्रित्य नैत्यकं कुरुते तु यः ।
वटोघा वै समाख्यातो भूसुरेषु निरन्तरम् ॥ ३७ ॥

जो बरगद के नीचे बैठकर नित्य कर्म करता था, वह निरन्तर भूसुर वर्ग में वटोघा (वटोटिया अथवा वट ओटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३७ ॥

२१ — फाग्रवाल

फल्गुमाश्रित्य वेदांस्तु जुहुयान्मंत्रसंयुतम् ।

कक्षावानिति सर्वत्र विख्यातः ऋषिपुङ्गवः ॥ ३८ ॥

जो वेदी के कोने में बैठकर मंत्रोच्चारण पूर्वक आहुति दिया करता था, वह ऋषिश्रेष्ठ सर्वत्र कक्षावान् (काछवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ ३८ ॥

२२ — शिवोद्‌वाही (मोड़वा)

शिवमुद्वहते कण्ठे नित्यं भक्त्या मुनिमर्हान् ।
शिवोद्वाहीति लोकेस्मिन् तेन ख्यातो विदाम्वरः ॥ ३६ ॥

जो महामुनि भक्ति पूर्वक नित्य कण्ठ में शिवजी को धारण करता था, वह शिवोद्वाही (मोड़वा) नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ३६ ॥

२३ — भाटीवाड़ा

भट्टस्य रूपमास्थाय युध्यते यो निरन्तरम् ।
तेनैव भूतले ख्यातो भाटीवानिति पंडितः ॥ ४० ॥

योद्धा का रूप धारण कर जो निरन्तर युद्ध किया करता था वह पण्डित भाटीवान् (भाटीवाड़ा) नाम से पृथ्वी तल पर विख्यात हुआ ॥ ४० ॥

२४ — गोवला

गाः पालयति यः स्नेहान्नित्यं धर्मपरायणः ।
तासामेव बलो यस्य गोवलः कथितो द्विजैः ॥ ४१ ॥

जो प्रेमपूर्वक धर्मपरायण होकर नित्य गौओं का पालन करता था और जिसके गौओं का वल ही प्रधान था वह द्विजों द्वारा गोवल (गोवला) नाम से पुकारा गया ॥ ४१ ॥

२५ — वशीवाल

वशीकृत्य जनान् सर्वान् वर्तते क्षितिमण्डले ।
तत्प्रभावात् समाख्यातो वशीवानिति भूतले ॥ ४२ ॥

जो सब जनों को वश में कर निवास करता था, वह उसी प्रभाव से पृथ्वी पर वशीवान् (वशीवाल अथवा वंशीवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥

२६ — मगलहारा

मनसा वचसा नित्य सर्वेषामभिवाञ्छति ।
मगलाहरति योऽसौ तस्मान्मगलहारक ॥ ४३ ॥

मन और वाणि से जो सब का भला चाहता था और मब का मंगल करता था, वह मगलाहर (मगलहारा) नाम से विख्यात हुआ । ॥ ४३ ॥

२७ — वोचीवाल

अवोचद्यज्ञशालाया धर्मान्धर्मात्मक कवि ।
तस्मादसौ च विख्यातो वोचीवानिति नामत ॥ ४४ ॥

जो क्रान्तकर्मा धर्मात्मा ऋषि यज्ञशाला मे धार्मिक उपदेश दिया करता था, वह इसी कारण वोचीवान् (वोचीवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४४ ॥

२८ — धुगोलिया

दिवो गोलमथालम्ब्य वर्णित व्योमविस्तरम् ।
तस्मादत्र समाख्यातो ध्रुगोल इति विद्वर ॥ ४५ ॥

खगोल का अवलम्बन कर जिसने खगोल का विस्तार पूर्वक वर्णन किया, इसी कारण वह ज्ञानियों मे श्रेष्ठ धुगोल (दुगोलिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४४ ॥

ऋषियो मे नाना प्रकार की गवेषणायें करने का प्रचलन था । इस अवटंक के प्रवर्तक ऋषि ने भी खगोल का प्रामाणिक अनुसन्धान किया था ।

२९ — गुञ्जवाडा

गुञ्जावितानमादाय वटस्य परितो बुध ।
तत्र चोवास यो धीरो गुञ्जावाट इति श्रुत ॥ ४६ ॥

जो विद्वान् गुञ्जा के लता कुञ्जों को वट पर चढाकर उनके नीचे निवास किया करता था, वह गुञ्जावाट (गुञ्जावडा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ४६ ॥

३० — परवाल

प्रवालगौरवर्णश्च प्रवालैश्चैव मण्डितः ।
प्रवालमालयोपेतः प्रवालः स च कथ्यते ॥ ४७ ॥

जो ऋषि प्रवाल के समान गौर वर्ण था और जो प्रवालों से विभूषित और प्रवाल मालाधारी था, उसका नाम लोगों ने प्रवाल (परवाल) रक्खा ॥ ४७ ॥

३१ — हूचरा

हूहू नामानमाहूय चानयद्यज्ञवेश्मनि ।
चारयामास गान्धर्वं तस्माद्धूचरको द्विजः ॥ ४७ ॥

यज्ञगृह में हूहू नामक गन्धर्व को बुलाकर जो गान्धर्व वेद का गायन करवाया करता था, वह द्विज (हूचरिया) नाम ने प्रसिद्ध हुआ ॥ ४८ ॥

३२ — नवहाल

जाम्बूद्रुममयं नूत्नं हलं जग्राह यो द्विजः ।
चकर्ष याज्ञिकीं भूमिं नवहाल प्रथां गतः ॥ ४९ ॥

जिसने जामुन का नया हल बना कर यज्ञ की भूमि को जोता, वह ब्राह्मण नवहाल नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ४९ ॥

३३ — वांठोलिया

यज्ञवाटमुपागम्य ह्यलिखन् स्थण्डिलं तु यः ।
जजाप परमं जापं तेन वांटोलिकः स्मृत ॥ ५० ॥

जो यज्ञ की वेदी में रंग भरा कर गायत्री का जप किया करता था, उसको लोग वांठोलिक (वांठोलिया) कहते थे ॥ ५० ॥

३४ — पीपलवा

अश्वत्थमूलमासाद्य तस्यैव फलमत्ति यः ।
पिप्पलवानिति ख्यातो भूमौ विप्रवरस्ततः ॥ ५१ ॥

पीपल के पेड़ की जड़ों में बैठकर जो पीपल के ही फल खाया करता

था, वह विप्रवर पिप्पलवान (पीपलवा) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ५१ ॥

३५ — मुछावला

श्मश्रुभिर्युसमाच्छन्नो वर्तते यज्ञमण्डले ।
श्मश्रुलो हि समाख्यात. समुद्रान्तर्गतो भुवि ॥ ५२ ॥

दाढी मूँछों से जिसका मुँह ढका रहता था, वह ऋषि द्वीपों मे श्मश्रुल (मुछावला) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५२ ॥

३६ — तिवाडी

त्रिद्वारं समागम्य जजाप जननीं श्रुतिम् ।
त्रिवारीति च लोकेस्मिन् विख्यातिमधुना गत ॥ ५३ ॥

जो तीन द्वार का मकान बनाकर उसमे गायत्री जपा करता था, वह इस लोक मे त्रिवारी (तिवाडी) के नाम से विख्यात हुआ ॥ ५३ ॥

३७ — पराशला

पराशार्थं च यो लाति यस्मात्कस्माद्धन बहु ।
तत पराशलो विप्रो विख्यातो भुवनत्रये ॥ ५४ ॥

जो ऋषि समिधा सचय के लिये इधर उधर से पर्याप्त धन लाया करता था, वह लोकत्रय मे पराशल (पराशला) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५४ ॥

३८ — घाटवाल

घट्टमाश्रित्य कुण्डस्य भारत्या मत्रमुज्जपन् ।
घट्टवानिति विप्रेश सर्वत्र विदितो ह्यभूत् ॥ ५५ ॥

जो यज्ञवेदी के किनारे बैठकर सरस्वती का जप किया करता था, वह सर्वत्र घट्टवान (घाटवाल) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५५ ॥

३९ — वणसिया

वने च निवसन्यो वै मन्त्र च द्वादशात्मकम् ।
जजाप परया भक्त्या वानस्थो विश्रुतो भुवि ॥ ५६ ॥

जो वन में निवास करता हुआ द्वादश अक्षरात्मक "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्र का जप किया करता था, उसको वनाश्रय (वणासिया अथवा वनखायिक) नाम से पुकारते थे ॥ ५६ ॥

४० -- सिंहोटा

सिंहपृष्ठसमारूह्य भगवत्याः प्रसादतः ।
सर्वत्राटति यो धीमाँस्ततः सिंहोटकः स्मृतः ॥ ५७ ॥

जो बुद्धिमान ऋषि भगवती के प्रसाद से सिंह पर चढ़कर सर्वत्र घूमा करता था, वह सिंहोटक (सिंहोटका अथवा सिंहोटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५७ ॥

४१ -- भुरटिया

भूर्भटं च तृणं सम्यगादाय शयनं रचेत् ।
भूर्भट इति विख्यातो बभूव धरणितले ॥ ५८ ॥

जो भरूंट घास को बिछाकर सोया करता था, वह धरणि तल पर भूर्भट (भरूंटिया अथवा भुरटिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ५८ ॥

४२ -- टंकहारी

टंकं टंकं समादाय चाहारं कुरुते सदा ।
टंकहारीति विख्यातो लोके च परमर्षिभिः ॥ ५६ ॥

जो नित्य चार चार मासे के ग्रास लेकर भोजन किया करता था, वह महर्षियों द्वारा टंकहारी नाम से विख्यात हुआ ॥ ५६ ॥

४३ — अजमेरिया

अजे ब्रह्मणि यो मेधां संयोज्य कर्म संचरेत् ।
अजमेधा महीपृष्ठे सर्वत्र विदितो ह्यभूत् ॥ ६० ॥

जो ऋषि अजन्मा ब्रह्म में बुद्धि लगा कर कर्म किया करता था, वह सर्वत्र पृथ्वी तल पर अजमेधा (अजमेरिया) नाम से विशेष रूप से विख्यात हुआ ॥ ६० ॥

४४ — डीडवाणिया

डिंडिमं च पुरस्कृत्य विचचार महीतले।
डिंडिमवानिति ख्यातो भूसुरो भूमिमण्डले ॥ ६१ ॥

जो डमरू लेकर पृथ्वी पर विचरण किया करता था, वह ब्राह्मण डिंडिमयान (डीडवाणिया अथवा डीडवाणा) नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ ॥ ६१ ॥

४५ — निठाणिया

निधनानि च भूयांसि समादाय धनेश्वरात्।
विभज्य याचकेभ्योऽसौ निधानियो हि सोऽप्यभूत् ॥ ६२ ॥

जो ऋषि कुबेर से बहुत-सा धन लाकर याचकों में बांटा करता था, वह निधानीय (निठानिणिया) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६२ ॥

४६ — डाभडा अथवा डावस्या

दर्भभारं समादाय तस्यास्तरणमाकरोत्।
तेनैव हेतुना विप्र दर्भशायीति विश्रुत ॥ ६३ ॥

जो डाभ बिछा कर सोया करता था, वह दर्भशायी (डाभडा अथवा डावस्या) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६३ ॥

४७ — खडभडा अथवा निठुरा

निष्ठुरं वचनं यस्तु वदत्येव जनेष्विह।
तन्नाम निष्ठुरो लोके बभूव परमाद्भुतम् ॥ ६४ ॥

जो ऋषि मनुष्यों के समूह में कठोर वचन बोला करता था, इसीसे वह परमाद्भुत काम करने वाला निष्ठुर (निठुर अथवा खडभड़ा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६४ ॥

४८ — बोहरा अथवा भूसुरा

व्यवहारप्रियो लोके व्यवहरति जनेष्विह।
व्यवहारीति विप्रोऽसौ सततं ख्यातिमागत ॥ ६५ ॥

व्यवहार प्रिय जो ऋषि संसार में लेन देन का व्यवहार करता था, वह विप्र निरन्तर व्यवहारी (वोहरा अथवा भूसुरा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६५ ॥

४९ — वांटणां

आयान्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा तस्मै यच्छति गो धनम् ।
तस्मात्तु विप्रो विख्यातो विभाजीति जनेषु सः ॥ ६६ ॥

जो समागत ब्राह्मण को देखकर उसे धन दिया करता था, वह विभाजी (वांटणा) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६६ ॥

शकुनानि च सर्वाणि विचचार विचारयन् ।
शाकुनीति तो लोके विख्याति गतवान्मुनिः ॥ ६७ ॥

जो मुनि समस्त शकुनों का विचार करता हुआ विचरण करता था, वह लोक में शाकुनि (शकुन्या) नाम से विख्यात हुआ ॥ ६७ ॥

विदित होता है कि जिस प्रकार आधुनिक युग में विज्ञान का अनुसन्धान किया जाता है उसी प्रकार पूर्वकाल में प्राय विषयों का अनुसन्धान होता था । उपर्युक्त श्लोक से शकुन शास्त्र के अनुसन्धान का परिचय मिलता है ।

शुनःशेपः स्वयंसिद्धो देवमानवरक्षितः ।
महदाख्यानमस्यासीच्छ्रुतं देवि ! त्वया पुरा ॥ ६८ ॥

देवि ! देवमानवों से रक्षित शुनःशेप स्वयंसिद्ध था, उसका उपाख्यान तुमने पहले सुनलिया था ॥ ६८ ॥

शुनःशेपोथ वोहराख्यस्तौनापततुरध्वरे ।
वेदीखण्डौ तदा तस्माद् वैश्यौ तौ विदितौ क्षितौ ॥ ६९ ॥

शुनःशेप और वोहरा नामक उस यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुए थे और उनको वेदी के खण्ड भी इसीलिये नहीं मिले थे । वे पृथ्वी पर वैश्य नाम से विदित थे ॥ ६९ ॥

देवल उवाच—

महादेव मुखात्सर्वं श्रुत्वा हर्षमुपागता।
प्रोवाच महामाया भवानीति भव प्रति ॥ ७० ॥

महादेव के मुख से समस्त वृतान्त सुनकर प्रसन्न हुई महामाया पार्वती ने भगवान शङ्कर से कहा ॥ ७० ॥

देव्युवाच—

सम्यगाख्यातवान्देव नामार्थमनुकम्पया।
सन्तृप्तिरधुना जाता मम नाथ तवाज्ञया ॥ ७१ ॥

देव! आपने कृपा कर कर्मज नामों की व्याख्या भली प्रकार की। नाथ! आपकी आज्ञानुसार श्रवण करने से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ ॥ ७१ ॥

देवल उवाच—

गौरमुख महाप्राज्ञ त्वयाहं पृच्छता किल।
तत्सर्वं तव सस्नेहादम्ब व तव सन्निधौ ॥ ७२ ॥

महाप्राज्ञ गौरमुख! तुम्हारे प्रश्न करने पर मैंने यह समस्त वृतान्त सस्नेह तुम्हें बतला दिया ॥ ७२ ॥

इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे महेन्द्रगिरि महात्म्ये शिवपार्वती सम्वादे वसिष्ठविश्वामित्र वैरानुभूतो परशुरामयज्ञकथने खण्डलोत्पत्तिनामचत्वारिंशतमोऽध्याय ॥ ४० ॥ समाप्ता चेय खण्डलोत्पत्ति।

गोत्र प्रवर्तक—

सब गोत्र ४२ हैं। जैसा कि मनु ने लिखा है —

शाण्डिल्यकाश्यपश्चैव वात्स्यसावर्णकस्तथा।
भरद्वाजो गौतमश्च सौकालीनस्तथापर ॥ १ ॥
कल्किपश्चाग्निवेश्यश्च कृष्णात्रेयवसिष्ठकौ।
विश्वामित्रकुशिकश्च कौशिकश्च तथापर ॥ २ ॥
घृतकौशिक मौद्गल्यागालभ्यान पराशर।

सौपायनस्तथात्रिश्च वासुकिरोहितस्तथा ॥ ३ ॥
वैयाघ्रपद्यकश्चैव जामदग्न्यस्तथापरः ।
चतुर्विंशति गोत्राणां कथिताः पूर्वपण्डितैः ॥ ४ ॥

और भी मनु ने लिखा है:—

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगौतमः ।
वसिष्ठकाश्यपागस्त्याः मुनयो गोत्रकारिणः ॥ १ ॥

धनंजयकृत धर्मप्रदीप मे गोत्रप्रवर्तकों का उल्लेख निम्न प्रकार है:—

सौकालीनकमौद्गल्यौ पराशरबृहस्पतिः ।
काञ्चनोविष्णुकौशिक्यौ कात्यायनात्रेयस्तथा ॥ १ ॥
कृष्णात्रेयः सांकृतिश्च कौडिन्यो गर्गसंज्ञितः ।
आंगिरस इति ख्यातः अनावृकाख्यः काण्वकः ॥ २ ॥
अव्यजैमिनि वृद्धाख्याः शाण्डिल्यो वात्स्य एव च ।
सावर्ण्यालभ्यान वैयाघ्रपद्याश्च घृतकौशिकः । ॥ ३॥
शक्ति काण्वायनश्चैव वासुकि गौनमस्तथा ।
शुनकः सौपायनश्च मुनयो गोत्रकारिणः ॥ ५ ॥
एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि तन्वते ॥ ६ ॥

सासन	गोत्र		प्रवर	
१ नवहाल	अङ्गिरस	गोत्र	त्रिप्रवर	अङ्गिरसवास्यगौत्तमाः
२ डीडवाणा	”	”	”	”
३ गोरस्या	”	”	”	”
४ बील	जैमिनि	गोत्र	त्रिप्रवर	जैमन्युतथ्यसांकृतयः
५ नानू-नानिया निटाण	”	”	”	”
६ पीपलवा	पराशर	गोत्र	त्रिप्रवर	पराशरशक्तिवसिष्ठाः
७ गोधला	”	”	”	”
८ मुछवाल	”	”	”	”

सासन	गोत्र	प्रवर
९ सिहोटा	कृष्णात्रेय गोत्र	त्रिप्रवर कृष्णात्रेयात्रेयवात्स्या
१० गुञ्झवाड़ा	" "	" "
११ तिवारी	" "	" "
१२ खडभड़ा (निठुरा)	घृतकौशिक गोत्र	त्रिप्रवर कुशकौशिकबन्धुला
१३ डावस्या	" "	" "
१४ भुरटिया	भरद्वाज गोत्र	त्रिप्रवर भरद्वाजकौशिकजमदग्न्य
१५ भाटीवाड़ा	भरद्वाज गोत्र	त्रिप्रवर भरद्वाजमरीचिकौशिका
१६ बीलवाल	कौशिक गोत्र	त्रिप्रवर कौशिकात्रिजमदग्न्य
१७ सोढना, शिनोयाह	" "	" "
१८ डुगोलिया	" "	" "
१९ मङ्गलहारा	गौतम गोत्र	त्रिप्रवर गौतमवासिष्ठबार्हस्पत्य
२० टङ्कहारी	" "	" "
२१ चोटिया	वसिष्ठ गोत्र	त्रिप्रवर वसिष्ठात्रिसांकृतय
२२ पराशला (भुयाल)	" "	" "
२३ मण्डगिरा	सांकृति गोत्र	त्रिप्रवर अव्यवहारात्रिसांकृतय
२४ झुञ्झवाड	" "	" "
माठोलिया	जमदग्नि गोत्र	त्रिप्रवर जमदग्न्यौर्ववसिष्ठा
शाकुनिया	" "	" "
२७ धाठोलिया	व्याघ्रपद गोत्र	त्रिप्रवर कुशकौशिकघृतकौशिका
२८ घाटवाल	" "	" "
२९ व्यवहारी (बोहरा)	" "	" "

सासन	गोत्र प्रवर
३० वोचीवाल	शाण्डिल्य गोत्र त्रिप्रवर शाण्डिल्यासितदेवला:
३१ मुन्मुणोदिया	" " " "
३२ जोशी	भारद्वाज गोत्र त्रिप्रवर भारद्वाजाङ्गिरसबार्हस्पत्य:
३३ प्रवाल (परवाल)	" " " "
३४ सोती, (लढाणियां)	कश्यप गोत्र त्रिप्रवर कश्यपाश्यारनैध्रुवा:
३५ वाटणा (सठणियां)	" " " "
३६ सेवदा ३७ सामरा	मुद्गल गोत्र पंचप्रवर और्वच्यवनभार्गव जमदग्न्याप्नुवत:
३८ मखनाड़िया	बृहस्पति गोत्र त्रिप्रवर बृहस्पतिकपिलपार्वणा:
३९ अजमेरिया	" " " "
४० वंशीवाल ४१ हूचरिया	वत्स्य गोत्र पंचप्रवर और्वच्यवनभार्गवजमद-ग्न्याप्नुवत:
४२ रून्थला	कात्यायन गोत्र त्रिप्रवर अत्रिभृगुवशिष्टा:
४३ भूभरा	" " " "
४४ वणसिया	अत्रि गोत्र त्रिप्रवर आत्र्यात्रेयशातातपा:
४५ चठोठिया	" " " "
४६ मुढाढरा	कौडिन्य गौत्र त्रिप्रवर कौडिन्यस्तिमितिकौत्सा:
४७ गोवला	गर्ग गोत्र त्रिप्रवर गार्ग्यकौस्तुभमाण्डव्या:
४८ रणवा	" " " "
४९ काछवाल	अगस्त्य गोत्र त्रिप्रवर अगस्त्यदधीचिजामदग्न्य:
५० सुन्दरिया	काण्व गोत्र त्रिप्रवर काण्वाश्वत्थदेवला:

सिंहावलोकन

समस्त भारतवर्ष मे फैली हुई खाण्डलविप्र जाति के इस इतिहास में जिन ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया गया है उनके साथ साथ कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन पर विशेष रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है। यद्यपि प्रस्तुत विषय का समावेश यथास्थान ही करने का विचार था परन्तु कतिपय कारणों से आधुनिक व्यक्तियों का परिचय एक स्थान विशेष पर देने का निर्णय पहले ही कर लिया गया था। और यह भी सोच लिया गया था कि यदि स्वभावसुलभ दुर्बलताओं के कारण कहीं कोई बात दृष्टि से ओझल होजाय तो उसके लिये भी ग्रन्थ मे स्थान सुरक्षित रहे। समस्त ग्रन्थ का सिंहावलोकन करने पर यह समझ मे आया कि प्रस्तुत ग्रन्थ में जहा जयपुरस्थ खाण्डलविप्र विद्यालय का उल्लेख हुआ है वहा उसके सस्थापक और सचालक कतिपय कार्यकर्ताओं का नामोल्लेख नहीं होपाया है। उनमे प्रमुख पंडित महादेवजी मंगलिहारा, पण्डित गगाधरजी महाराज चोटिया, पण्डित सूर्यनारायणजी सोती, वैद्यराज पण्डित गोपीनाथजी माटोलिया श्रीबलदाऊजी के मन्दिर के वर्तमान अधिपति श्री श्री १००८ श्री महन्त नारायणदासजी महाराज शास्त्री के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन महानु-भावों ने श्रीखाण्डलविप्र विद्यालय जयपुर की सेवायें विशेष रूप से की हैं अत इनका आंशिक परिचय भी ऐतिह्य के आधार पर आदरणीय है।

यहा यह लिखना अनुचित न होगा कि श्रीबलदाऊजी का मन्दिर *जयपुरस्थ खाण्डलविप्र अधिकृत मन्दिरों मे अपना प्रमुख स्थान रखता है।* वैसे तो खवासजी का मन्दिर और बोहरा राजा खुशहालीरामजी वणसिया द्वारा निर्मित गोपीनाथजी का मन्दिर भी अपनी विशेषता रखते हैं किन्तु बलदाऊजी के *मन्दिर की विशेषता का आधार* दूसरा है। इस मन्दिर का पूर्वेतिहास माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। जयपुर मे जिस समय

महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी राज्य करते थे और राजा खुशहालीरामजी वणसिया जयपुर के प्रधानमंत्री थे उस समय श्रीबलदाऊजी का यह मन्दिर गोस्वामी श्रीश्यामसुन्दरदासजी चक्रवर्ती को उक्त महाराजा की ओर से भेंट में मिला था।

आज से लगभग एक शतक पूर्व महाप्रतापी जयसा बोहरा के नाँगलगढ़ के निकटस्थ ग्राम निवारू के निवासी श्रीजयरामदासजी महाराज काछवाल ने गौड़ीय सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की और अपने प्रभाव और अध्यवशाय के बल पर श्रीबलदाऊजी महाराज के इस ताजीमी ठिकाने को आत्मशात कर खाण्डलविप्र जाति के इतिहास में एक नूतन अध्याय का प्रारंभ किया। महन्त महाराज श्रीजयरामदासजी एक प्रौढ़ धर्मोपदेशक और सफल जन नेतृत्व करनेवाले महापुरुष थे। आपने अधिकृत सम्पत्ति का उपयोग करते हुए लोककल्याण के साथ साथ आत्मकल्याण का भी सम्पादन किया।

महन्त महाराज श्री श्री १००८ श्रीजयरामदासजी के वैकुण्ठारोहण के बाद उनके उत्तराधिकारी श्री श्री १००८ श्रीवल्लभदासजी महाराज हुए जिन्होंने जयपुराधीश के दरबार में अत्यधिक प्रतिष्ठा और जयपुर नगर में पूर्ण ख्याति प्राप्त की। श्रीवल्लभदासजी महाराज का जन्म मिति श्रावण शुक्ला ४ बुधवार सं० १६४६ वि० में हुआ था। आपने अपने पूर्वजों की कीर्ति को अक्षुण्ण रखते हुए विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। वर्तमान जयपुर नरेश महाराजा सवाई मानसिंहजी ने अपने रजत जयन्ती महोत्सव पर आपको विशेष सम्मान प्रदान किया था। आपके जागीरी प्रबन्ध पाटव और देहातों के विशेष सम्पर्क से तदनुभव को ध्यान में रखते हुए भूतपूर्व जयपुर गवर्न्मेन्ट ने लेवी के सिलसिले में आपको निरीक्षक नियुक्त किया था। यद्यपि ठिकाने की ताजीम में दो ही गांव हैं परन्तु इज्जत और प्रतिष्ठा में ठिकाना अपना उच्चस्तर रखता आरहा है। मन्दिर की शिष्य परम्परा में अहमदाबाद का श्रीरणछोड़जी का मन्दिर, हिण्डौन में श्रीकेशवदेवजी का

मन्दिर, वृन्दावन मे श्रीव्रजमोहनजी और गोरे बलदाऊजी का मन्दिर और एक मन्दिर तरौली (यू पी मे भी है।

वर्तमान में श्री श्री १००८ श्री महन्त महाराज नारायणदासजी शास्त्री इस पीठ के अधिपति हैं जो जयपुरस्थ सन्त, महन्त और मठाधीशों मे तो अपना प्रमुख स्थान रखते ही हैं साथ ही जयपुर के खाण्डलविप्र बन्धुओं मे जाति हितैषी होने के कारण विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। इस ठिकाने की प्रतिष्ठा साम्प्रदायिकता के आधार पर साधुमण्डली मे भी विशेष रूप से है।

ठिकाने की सेवा में जातीय इतिहासको समर्पण पूर्वक प्रस्तुत करते समय श्रीबलदाऊजी महाराज के कृपा कटाक्ष द्वारा जो हार्दिक सहानुभूति प्राप्त हुई उसके आधार पर यही लिखना उचित है कि वस्तुत यह ठिकाना खाण्डलविप्र जाति के इतिहास में एक गौरवशाली स्थान रखता है।

ठिकाने के वर्तमान अधिकारी प्रबन्धक श्री पण्डित महादेवजी काछवाल विशेष जाति प्रेमी और सुयोग्य महानुभाव हैं। आपके प्रबन्ध पाटव से आज ठिकाना उत्तरोत्तर प्रगतिशील है और मन्दिर की प्रतिष्ठा विशेष रूप से बढती जारही है।

इसके अतिरिक्त श्रीप्रेमसुखजी ब्रह्मचारी महाराज दान्ता-रामगढ का नाम भी यहां विशेष उल्लेखनीय है। श्रीब्रह्मचारीजी महाराज ने जाति सेवा के लिये विशेष रूप से त्याग कर अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। पिछले आठ वर्ष से आप बराबर अखिल भारतवर्षीय खाण्डलविप्र महासभा, श्रीमंगलदत्त विद्यालय रतनगढ तथा तत्सम अन्य जातीय संस्थाओ की सेवा करते आरहे हैं। आपका त्याग और तपस्या अभूतपूर्व हैं।

ऊपर श्रीखाण्डलविप्र विद्यालय जयपुर के जिन प्रमुख कार्यकर्ताओं का नामोल्लेख हुआ है उनमे पण्डित सूर्यनारायणजी सोंति एक लम्बे समय से विद्यालय के मंत्रीपद पर स्तुत्य कार्य कर जाति को अनुगृहीत करते रहे हैं और आज भी उनकी सेवायें विद्यालय को समर्पित हैं। पण्डित